



ISSN : 2321-0443  
UGC Care listed Journal

75  
आज़ादी का  
अमृत महोत्सव



# ज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक पत्रिका)

अंक - 75

(जुलाई-सितंबर 2022)



वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

शिक्षा मंत्रालय

(उच्चतर शिक्षा विभाग)

भारत सरकार

COMMISSION FOR SCIENTIFIC AND TECHNICAL TERMINOLOGY  
MINISTRY OF EDUCATION  
(DEPARTMENT OF HIGHER EDUCATION)  
GOVERNMENT OF INDIA



# ज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक पत्रिका)

अंक-75

जुलाई-सितंबर 2022

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग  
शिक्षा मंत्रालय  
(उच्चतर शिक्षा विभाग)  
भारत सरकार

COMMISSION FOR SCIENTIFIC AND TECHNICAL TERMINOLOGY  
MINISTRY OF EDUCATION  
(DEPARTMENT OF HIGHER EDUCATION)  
GOVERNMENT OF INDIA

ज्ञान गरिमा सिंधु 'मानविकी और सामाजिक विज्ञान' की एक त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य है- हिंदी माध्यम से विश्वविद्यालयी एवं अन्य छात्रों के लिए मानविकी और सामाजिक विज्ञान संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक साहित्य की प्रस्तुति। इसमें वैज्ञानिक लेख, शोध-लेख, तकनीकी निबंध, शब्द-संग्रह, शब्दावली- चर्चा, पुस्तक समीक्षा आदि का समावेश होता है।

### लेखकों के लिए निर्देश-

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विषयों से संबंधित होना चाहिए।
3. लेख सरल हों जिसे विद्यालय/ महाविद्यालय के छात्र आसानी से समझ सकें।
4. लेख लगभग 2000 से 3000 शब्दों का हो।
5. प्रकाशन हेतु विस्तृत जानकारी आयोग की वेबसाइट <http://cstt.education.gov.in/> पर उपलब्ध है।

पत्रिका का शुल्क:	भारतीयमुद्रा	विदेशी मुद्रा
सामान्य ग्राहकों/संस्थाओं के लिए प्रति अंक	Rs 14.00	पौंड 1.64 डॉलर 4.84
वार्षिक चन्दा	Rs 50.00	पौंड 5.83 डॉलर 18.00
विद्यार्थियों के लिए प्रति अंक	Rs 8.00	पौंड 0.93 डॉलर 10.80
वार्षिक चन्दा	Rs 30.00	पौंड 3.50 डॉलर 2.88

वेबसाइट : [www.cstt.education.gov.in](http://www.cstt.education.gov.in)

कॉपीराइट : ©2022

प्रकाशक :

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग  
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार  
पश्चिमी खंड -7, रामकृष्णपुरम,  
नई दिल्ली - 110066

बिक्री हेतु पत्र-व्यवहार का पता :

प्रभारी अधिकारी, बिक्री एकक  
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली  
आयोग,  
पश्चिमी खंड -7, रामकृष्णपुरम,  
नई दिल्ली-110066  
टेलीफोन - (011) 20867172  
फैक्स - (011) 26105211/246

बिक्री स्थान :

प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग  
भारत सरकार,  
सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054

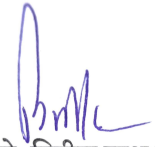
पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे संपादक मंडल की सहमति आवश्यक नहीं है।

## अध्यक्ष की लेखनी से

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा मंत्रालय(उच्चतर शिक्षा विभाग), भारत सरकार की त्रैमासिक पत्रिका “ज्ञान गरिमा सिंधु” का 75वां अंक आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अतीव हर्ष की अनुभूति हो रही है। भारत सरकार द्वारा प्रदत्त उत्तरदायित्वों का निर्वहन पूर्ण निष्ठा एवं समर्पण के साथ करना, आयोग का मुख्य ध्येय है। मुझे आशा है कि प्रदत्त जिम्मेदारियों का निर्वहन यह आयोग अपने पूर्ण समर्पण के साथ कर रहा है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के आलोक में आयोग की जिम्मेदारियों, दायरों एवं भविष्यगामी योजनाओं में निश्चितरूप से वृद्धि हुई है। अपनी भाषा में शिक्षा के मिशन में यह आयोग एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने जा रहा है। विज्ञान एवं तकनीक की प्रायः सभी अध्ययन-अध्यापन सामग्री अंग्रेजी भाषा में ही उपलब्ध हैं। अब लक्ष्य यह होगा कि सभी सामग्रियां भारतीय भाषाओं में उपलब्ध हों। बिना मानक तकनीकी शब्दावली के विज्ञान एवं तकनीक के किसी विषय का भारतीय भाषाओं में मानक अनुवाद सम्भव नहीं हो पाएगा। इस दिशा में आयोग अपने विभिन्न सहयोगी संस्थानों से निरंतर बेहतर सामंजस्य बनाने में प्रयासरत है। डिजिटल दुनिया में सभी शब्दावलियों को ऑनलाइन उपलब्ध कराना भी एक लक्ष्य है। आयोग इस दिशा में भी अपनी भूमिका निभा रहा है। दिन-प्रतिदिन इस पर कार्य किया जा रहा है। शीघ्र ही सभी शब्दावलियां ऑनलाइन उपलब्ध होंगी।

त्रैमासिक पत्रिका “ज्ञान गरिमा सिंधु” की पहुंच सभी तक हो, इसके लिए इसके सभी अंक ऑनलाइन भी उपलब्ध कराये जा रहे हैं। यह पत्रिका यूजीसी केयर सूचीबद्ध होने के कारण शैक्षणिक एवं अनुसंधान क्षेत्र में भी अहम भूमिका निभाती है। इस पत्रिका में शोधपत्रादि के प्रकाशन के लिए प्रक्रिया को पारदर्शी बनाने का भी प्रयास किया जा रहा है जिसमें शोधपत्र जमा करने से लेकर, एमएस वर्ड प्रारूप, लेख-लेखन निर्देश, कम से कम तीन समीक्षकों द्वारा निष्पक्ष समीक्षा, शोधपत्र प्रकाशन आदि सभी कार्य ऑनलाइन माध्यम से करने का प्रयास भी किया जा रहा है। इस पत्रिका को जन-जन तक पहुंचाना भी एक लक्ष्य है। इसमें सभी पाठकों से सहयोग की अपेक्षा रखते हुए अनुरोध है कि आगामी अंकों में शोधपत्रों के माध्यम से इस पत्रिका में शोधपत्रों के प्रकाशन का लाभ उठाकर इसके मिशन को सफल बनाएं।



(प्रो. गिरीश नाथ झा)

अध्यक्ष

## संपादकीय

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग), भारत सरकार द्वारा हिंदी भाषा में प्रकाशित “ज्ञान गरिमा सिंधु” का 75वां अंक सभी सुधीजनों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हर्ष की अनुभूति हो रही है।

इस अंक में शिक्षा एवं ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों को समर्पित आलोचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोधपत्र शामिल किए गए हैं। जहां एक तरफ दिव्यांग एवं वंचित की शिक्षा को समर्पित, निज भाषा में शिक्षा की अवधारणा, भारतीय ज्ञान परक शिक्षा, ग्रामीणों का सशक्तिकरण, महिला उत्थान में सरकार के प्रयास आदि से संबंधित आलोचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोधपत्र शामिल किए गये हैं वहीं दूसरी तरफ शिक्षा के बदलते माध्यमों से संबंधित संगणकीय आधारित शिक्षा के विभिन्न प्रयासों से संबंधित निबंधों को भी शामिल किया गया है।

छात्रों की शिक्षण आदतों से संबंधित लेख भी इस अंक की शोभा बढ़ा रहे हैं। प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा को भी उजागर करने के प्रयास से आयुर्विज्ञान की परम्परा, धर्मशास्त्रीय अवधानाओं के शोधों की समीक्षा, आत्मनिर्भर भारत में विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं नवाचार, कृषिविज्ञान क्षेत्रों में महिलाओं की भूमिका आदि विषयों को भी इस अंक में शामिल करके पाठकों को भारतीय ज्ञान परम्परा की पृष्ठभूमि से भी अवगत कराने का प्रयास किया गया है।

भाषाशिक्षण के लिए संगणकीय अनुप्रयोग आधारित दो लेख भी प्रस्तुत हैं। आज का युग भाषा प्रौद्योगिकी का युग है। कंप्यूटर तकनीक मानव जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित करती है। शिक्षा के क्षेत्र में भी इसने अपना एक स्थान कायम कर लिया है। संस्कृत भाषा शिक्षण के लिए निर्मित विभिन्न संगणकीय तकनीकों से संबंधित लेखों के माध्यम से भाषा से संबंधित पाठकों को एक दिशा प्राप्त होगी। कर्नाल जेल रेडियो जैसे लेख को शामिल करके जेल में बन्दियों के पसन्दीदा गानों की समीक्षा पर भी दृष्टिपात किया गया है।

पत्रिका में उत्तम सामग्री प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। पाठकों के बहुमूल्य सुझावों की अपेक्षा के साथ यह भी आशा है कि सदा की भांति यह अंक भी निश्चित तौर पर पसन्द आएगा।

डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल  
उप निदेशक

# परामर्श एवं संपादन मंडल

## प्रधान संपादक

प्रोफेसर गिरीश नाथ झा  
अध्यक्ष

## संपादक

डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल, उप निदेशक

## सहायक संपादक

श्रीमती चक्रप्रम बिनोदिनी देवी, सहायक निदेशक

## संपादन समिति

डॉ. आलोक कुमार रस्तोगी

पूर्व प्रबंधक (राजभाषा)

वित्त मंत्रालय

भारत सरकार

के.के. सिंह

पूर्व उपनिदेशक (भाषा)

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

नई दिल्ली

डॉ. सुभाष चन्द्र

सह-आचार्य

संस्कृत विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

## विषयसूची

1	औपनिवेशिक समाज में शिक्षा	डॉ. पतंजलि मिश्र	1
2	करनाल जेल रेडियो: तिनका रेडियो का बंदियो पर प्रभाव और उनकी पसंद के गाने	डॉ. वर्तिका नन्दा	6
3	भारतीय भाषायी परिदृश्य में राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020	डॉ. धर्मेन्द्र प्रताप सिंह	13
4	दिव्यांग एवं सुविधावंचित समूहों के बच्चों की समावेशी शिक्षा	डॉ. विनय कुमार सिंह	20
5	भारतीय शिक्षा पद्धति के सुदृढीकरण में संस्कृत की भूमिका	डॉ. अजय कुमार मिश्र	29
6	कृषिविज्ञान केन्द्र के शैक्षिक कार्यक्रमों में महिलाओं की सहभागिता	गौरव रानी	35
7	संस्कृतसन्धि शिक्षण के लिए सङ्गणकीय अनुप्रयोग	सन्जु एवं सुभाष चन्द्र	37
8	महिला-उत्थान के लिए भारत सरकार की नीतियां	डॉ. सुनीता पारिक	45
9	आत्मनिर्भर भारत के लिए विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं नवाचार	प्रो. दिनेश मणि	51
10	धर्मशास्त्रीय अवधारणाओं के शोधकार्यों का सर्वेक्षण	आरुषि निगम एवं सुभाष चन्द्र	58
11	स्थानीय स्वशासन और ग्रामीणों का सशक्तिकरण	डॉ. हरिनन्दन कुशवाहा	69
12	भारतीय लोकतंत्र में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता	प्रशांत कुमार ठाकुर एवं गोविन्द गौरव	80
13	कृत-शृङ्खला: एक सूचना प्रौद्योगिकी प्रणाली	सुमित शर्मा एवं सुभाष चन्द्र	87
14	प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा में गुरु का स्थान	डॉ. अमित कुमार	92
15	राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय भाषाएं	डॉ. अश्वनी	95
16	औपनिवेशिक समाज में शिक्षा	डॉ. पतंजलि मिश्र	101
17	शैक्षिक उपलब्धि के क्रम में छात्रों का अध्ययन स्वभाव	चित्ररेखा, एम. एम. रॉय एवं मीना सहरावत	107



# औपनिवेशिक समाज में शिक्षा

डॉ पतंजलि मिश्र

एसोसियेट प्रोफेसर

शिक्षा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

शिक्षा एवं समाज में अन्योन्याश्रित संबंध है। जहां एक तरफ शिक्षा परंपरा की संवाहक की भूमिका अदा करती है, वहीं दूसरी तरफ वह सांस्कृतिक परिमार्जन का साधन भी बन सकती है। उपनिवेशवाद और शिक्षा आपस में घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। किसी एक भौगोलिक क्षेत्र के लोगों द्वारा किसी दूसरे भौगोलिक क्षेत्र में उपनिवेश (कॉलोनी) स्थापित करना और यह मान्यता रखना कि यह एक अच्छा काम है, उपनिवेशवाद (Colonialism) कहलाता है। उपनिवेशवाद का अर्थ है- किसी समृद्ध एवं शक्तिशाली राष्ट्र द्वारा अपने विभिन्न हितों को साधने के लिए किसी निर्बल किंतु प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण राष्ट्र के विभिन्न संसाधनों का शक्ति के बल पर उपभोग करना। उपनिवेशवाद में उपनिवेश की जनता एक विदेशी राष्ट्र द्वारा शासित होती है, उसे शासन में कोई राजनीतिक अधिकार नहीं होता। आर्गन्सकी के अनुसार “वे सभी क्षेत्र उपनिवेशों के तहत आते हैं, जो विदेशी सत्ता द्वारा शासित हैं एवं जिनके निवासियों को पूरे राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं हैं।” वस्तुतः हम किसी शक्तिशाली राष्ट्र द्वारा निहित स्वार्थवश किसी निर्बल राष्ट्र के शोषण को उपनिवेशवाद कह सकते हैं।

उपनिवेशवाद में शिक्षा की भूमिका निर्विवाद है। ऐतिहासिक रूप से उपनिवेशों को नियंत्रित करने के प्रयासों में शिक्षा प्रणालियों का उपयोग किया जाता था और उनका दुरुपयोग किया जाता था। जब हम औपनिवेशिक शिक्षा के इतिहास को देखते हैं, तो शिक्षा को उपनिवेशवाद के लक्ष्य और उपकरण दोनों के रूप में देखा जा सकता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि औपनिवेशिक प्रभावों ने स्वदेशी शिक्षा की वैधता और विश्वसनीयता को नष्ट कर दिया। इसके साथ ही इसे औपनिवेशिक प्रयास के साथ एक 'शिक्षा' की जटिलता के साथ बदल दिया और बदल दिया। प्रसिद्ध समाजशास्त्री श्यामाचरण दुबे यह स्वीकार करते हैं कि शिक्षा के यह दोनों ही प्रकार्य महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि परंपरा की उपेक्षा यदि समाज को धुरीहीन बनाती है, तो परिवर्तन की अस्वीकृति या मंदगति सांस्कृतिक पक्षाघात प्रमाणित हो सकती है। भारत जैसे देश में शिक्षा पर एक नये तरीके से विचार करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। यह इसलिए भी जरूरी लगती है क्योंकि भारतीय शिक्षा का ढांचा एवं प्रवृत्ति दोनों ही उपनिवेशकालीन होने के साथ ही ज्ञान के विस्तार एवं सृजन में बाधक हैं। हम शिक्षा के स्वरूप पर विचार बिना मूल्यों एवं उद्देश्यों को केंद्र में रखे नहीं कर सकते हैं। “सा विद्या या विमुक्तये” से “सा विद्या या नियुक्तये” तक की यात्रा हमने उपनिवेश काल में ही की। विद्या अर्जन का उद्देश्य कब मुक्ति की चाह से नौकरी की चाह में बदल गया यह हमें पता भी नहीं चला। पावलो फ्रेरे ने कहा भी है कि “दमनकारी वास्तविकता अपने भीतर के लोगों को अवशोषित कर लेती है और इस तरह मनुष्य की चेतना को डुबो देती है” (फ्रेयर, 1970:25)।

औद्योगीकरण के आगमन और उसके परिणामी साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद ने तीन शताब्दियों तक मानव सभ्यता के इतिहास को प्रभावित किया। यह आक्रमण सत्रहवीं शताब्दी में शुरू हुआ और बीसवीं शताब्दी की शुरुआत तक जारी रहा। यह न केवल उपनिवेशों और उपनिवेशों का एक वाणिज्यिक और राजनीतिक जाल था, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक आधिपत्य का विस्तार भी था। शिक्षा के लिए उपनिवेशवाद का क्या अर्थ है? शिक्षा को लंबे समय से एक परिवर्तनकारी प्रणाली के रूप में देखा गया है जो सामाजिक असमानताओं को दूर कर सकती है और



लोकतंत्र को बढ़ावा दे सकती है। शिक्षा, इसकी प्रक्रिया और संस्थाकरण भी उपनिवेश और उपनिवेशवादी की राजनीतिक अर्थव्यवस्था से प्रभावित थे। स्वदेशी ज्ञान और जानने के तरीकों को पाशविक, गैर-प्रगतिशील और आर्थिक और सांस्कृतिक पिछड़ेपन का कारण बताया गया। फिर भी, व्यवहार में, शिक्षा भी सामाजिक पुनरुत्पादन का एक माध्यम है। औपनिवेशीकरण कोई एक घटना या निर्धारित खाका नहीं है, बल्कि सदियों से चले आ रहे औपनिवेशिक विचारों, इच्छाओं और बुनियादी ढांचे को सीखने और मिटाने की एक जटिल और संघर्षपूर्ण प्रक्रिया है। इसलिए शिक्षा के उपनिवेशीकरण के लिए ऐतिहासिक विरासतों और ज्ञान के प्रमुख स्वरूपों के पड़ताल की आवश्यकता है, साथ ही साथ यह जानना भी जरूरी है कि वह किस प्रकार कुछ समूहों, देशों या संस्कृतियों को एक दूसरे के मुकाबले श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं। जैसाकि, बिस्मार्क (2012) लिखते हैं, "...एक प्रक्रिया के रूप में उपनिवेशवाद की पारंपरिक परिभाषा है जिसके द्वारा कानूनी रूप से निर्भर क्षेत्रों ने अपनी संवैधानिक स्वतंत्रता प्राप्त की और संप्रभु राज्यों के रूप में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के विश्व स्तर में प्रवेश किया।"

लोक शिक्षा महासमिति (General Committee of Public Education) जो भारत में शिक्षा सबधी नीतियाँ बनाती थी, जिस में 10 सदस्य थे। ये सदस्य दो गुटों में विभाजित थे- एक दल प्राच्य विद्धा समर्थक दल था। जिसका नेतृत्व एच. टी. प्रिंसेप के हाथ में था। प्राच्य विद्या समर्थको ने वारेन हेस्टिंग्स और लॉर्ड मिंटो की शिक्षा नीति का समर्थन किया। उन्होंने हिन्दुओं एवं मुस्लिमों के परंपरागत साहित्य के पुनरुत्थान को अधिक महत्व दिया। इस दल के लोग विज्ञान के महत्व को स्वीकार तो करते थे, किन्तु वे इसका अध्ययन भारतीय भाषाओं में करने के पक्ष में थे। दूसरा दल था- पाश्चात्य या आंग्ल शिक्षा के समर्थको का जिसका नेतृत्व लॉर्ड मैकाले के पास था। यह दल शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी किए जाने के पक्ष में था। अंत में दोनों दलों ने निर्णय के लिए अपना विवाद गवर्नर जनरल के समक्ष रखा।

उपनिवेशवाद के संदर्भ में यदि भारतीय अनुभवों को देखा जाय तो यह स्पष्ट होता है कि गवर्नर जनरल की 'कार्यकारिणी परिषद (Executive Council) का सदस्य होने के नाते 1831 में लॉर्ड मैकाले ने अपना महत्वपूर्ण कार्यवृत्त (Macaulay's Minute) लिखा और उसे परिषद के सम्मुख रखा। उसने आंग्ल दल का समर्थन करते हुए लिखा था- 'यूरोप के एक अच्छे पुस्तकालय की अलमारी का एक कक्ष भारत और अरब के समस्त साहित्य से अधिक मूल्यवान है।' मैकाले के कार्यवृत्त को गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बेटिक ने 1835 में स्वीकार कर लिया। इस प्रस्ताव के अनुसार कंपनी सरकार को यूरोप के साहित्य का विकास अंग्रेजी भाषा के माध्यम से करना था। साथ ही, भविष्य में धन का व्यय इसी पर किया जाना था। इस संदर्भ में ध्यान देने योग्य बात यह है कि लॉर्ड मैकाले भारतीय सांस्कृति को अंधविश्वासों की खान मानते थे।

इतना ही नहीं शिक्षा का अधोमुखी निसयंदन सिद्धांत (Downward Filtration Theory Of Education) उपनिवेशवादी शिक्षा व्यवस्था को एक रोचक किन्तु दुर्भाग्यपूर्ण आयाम प्रदान करता है। 'शिक्षा समाज के उच्च वर्ग को ही दी जाए, इस वर्ग के शिक्षित होने पर शिक्षा का प्रभाव छन-छन कर जनसाधारण तक पहुंचेगा।' शिक्षा के अधोमुखी निसयंदन सिद्धांत का वस्तुतः यही अर्थ था। इस सिद्धांत का क्रियान्वयन सरकारी नीति के रूप में लॉर्ड ऑकलैंड द्वारा किया गया। बहरहाल, मैकाले ने भी इसी सिद्धांत पर कार्य किया था। सन् 1854 से पूर्व उच्च शिक्षा के विकास की गति काफी धीमी थी। लॉर्ड आर्कलैण्ड ने बंगाल को 9 भागों में बाँटा और प्रत्येक जिले में विद्यालय स्थापित किए। सन् 1840 तक इस प्रकार के 40 विद्यालय स्थापित हो चुके थे। सन् 1835 में लॉर्ड विलियम बेटिक के कार्यकाल में ही कलकत्ता मेडिकल कॉलेज की आधारशिला रखी गई और सन् 1851 में पूना संस्कृत कॉलेज तथा पूना अंग्रेजी स्कूल को मिलाकर पूना कॉलेज बनया गया। संयुक्त प्रांत (United Province) (आधुनिक उत्तर प्रदेश) के लेफ्टिनेंट गवर्नर जेम्स

टॉमसन ने सन् 1847 में रुड़की इंजीनियरिंग कॉलेज की स्थापना की। इसे आज भारत के प्रथम इंजीनियरिंग कॉलेज के रूप में जाना जाता है।

ऐसा प्रत्येक देश जो औपनिवेशिक दासता से मुक्त हुआ है, वह शिक्षा को जन-जन तक पहुँचाना चाहता है और भारत भी इसका अपवाद नहीं है। इसलिए शिक्षा के उद्देश्य का सवाल एक ज़रूरी एवं अहम् सवाल है। जूलियस कंबारेज न्येरे जो तंजानिया के एक उपनिवेशवाद विरोधी, राजनीतिज्ञ और राजनीतिक सिद्धांतकार थे, उन्होंने अपनी पुस्तक 'एजुकेशन फॉर सेल्फ रिलायंस' में यह टिप्पणी किया कि- वस्तुतः हम सबने इस बात पर मंथन करना बंद नहीं किया कि हमें शिक्षा की आवश्यकता क्यों है, इसका प्रयोजन क्या है। "यद्यपि स्कूलों में निर्धारित पाठ्यक्रम के बारे में इधर विभिन्न प्रकार की टीका टिप्पणी होती रही है। हमने शिक्षा की इस मूलभूत प्रणाली को कभी संदेह की दृष्टि से नहीं देखा। जो हमें स्वतंत्रता के समय विरासत मिली थी।" मुक्ति और विकास के लिए शिक्षा पर न्येरे के विचार पाउलो फ्रेयर के विचारों के अनुरूप हैं। 'उजामा' के दर्शन पर आधारित एक समतावादी, समाजवादी समाज के निर्माण के लक्ष्य से मुक्ति के लिए शिक्षा के सिद्धांतों को जोड़कर, न्येरे ने सामाजिक परिवर्तन का एक अभिनव और एक 'स्थानीयकृत' सिद्धांत प्रदान किया।

औपनिवेशिक शिक्षा-नीति वास्तव में एक व्यापक सांस्कृतिक नीति का अंग थी, जिसका उद्देश्य भारतीयों को यह महसूस कराना था कि वे सांस्कृतिक दृष्टि से पश्चिम के लोगों की तुलना में पिछड़े और असभ्य हैं। इसने भारतीयों के भाषाई, धार्मिक, प्रजातीय, जातिगत तथा जनजातीय अंतरों को उभारकर उनमें फूट डाली और उन्हें आपस में लड़ाने की कोशिश की। इन क्षेत्रों के लोग अब तक गौरव और आत्मसम्मान का जीवन जीते आ रहे थे। किन्तु, अब अचानक ही उनका सामना बंदूकों और मशीनों से लैस श्वेत लोगों से हुआ जो प्रौद्योगिकी की दृष्टि से उससे कहीं आगे थे। धीरे-धीरे यह सांस्कृतिक प्रभाव अन्य क्षेत्रों में फैलता चला गया। सम्पूर्ण प्रभाव को फ्रांज फैनन (Franz Fanon) ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'दुनिया के बदकिस्मत लोग' (The Wretched of the Earth) में 'उपनिवेशित (Colonialized) लोगों के मानस पर घातक प्रहार' की संज्ञा दी है।

मशहूर शिक्षाशास्त्री प्रोफेसर कृष्ण कुमार (1999) अपनी पुस्तक "राज समाज और शिक्षा" में लिखते हैं कि ".....सरकारी दृष्टिकोण से तो हम आजाद हैं पर हमारी सभी महत्वपूर्ण व्यवस्थाएं - जैसे प्रशासन, कानून और शिक्षा औपनिवेशिक काल की देन हैं। इनके प्रति पूरे समाज में समीक्षायी चेतना ही एक ऐसे राज्य की तलाश में मदद कर सकती है, जिसकी शिक्षायी राजनीति समतामुखी हो। वो आगे लिखते हैं, कि भारत का मध्यवर्ग शिक्षा के क्षेत्र में औपनिवेशिक परम्पराओं को तोड़ क्यों नहीं सका। यह एक बड़े सवाल के रूप में हमारे सामने है, कि ब्रिटिश राज की व्यवस्थाओं को हमने क्यों नहीं बदला। हमने कभी भी शिक्षा के तंत्र में आमूल-चूल परिवर्तन से किनारा ही किया किया। जब कभी भी बदलाव की बात उठी है, हमारी प्रवृत्ति यही रही है, कि हमने वर्तमान प्रणाली में थोड़ा बहुत संशोधन किया और मूल प्रणाली को बनाये रखा। जब लोग इतने लंबे समय तक उत्पीड़ित होते हैं, तो वे अनजान हो जाते हैं और हावी व्यवहार के खिलाफ लड़ने में असमर्थ हो जाते हैं। उत्पीड़क इस पर पनपता है और सामान्य स्थिति तक और अधिक हेरफेर करने में सक्षम होता है। इस संदर्भ में ब्लाईडेन का यह कथन अफ्रीकी देशों की उच्च शिक्षा के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है कि "हमारी सभी परम्पराएं और अनुभव एक विदेशी नस्ल से जुड़ गए हैं। हमारे पास अपनी कोई नहीं, बल्कि मालिकों की कवितायें हैं। हमारे कानों में जो गीत सुनायी देते हैं और हमारे होठों पर प्रायः जो तैरते हैं, वे वही गीत हैं, जिन्हें हम उनलोगों के मुंह से सुनते हैं, जो हमारे पीड़ा और कराह पर हमारे उपर चीखते रहते हैं। वो अपने उस इतिहास का गीत गाते हैं, जो हमारी दुर्दशा का इतिहास। वे अपनी विजय का गीत गाते हैं, जिनमें हमारे अपमानों की दास्तान लिखी हुयी है। यह हमारी बदकिस्मती है, कि उनके पूर्वाग्रहों और उनके जज्बों को हम सीख लेते हैं और यह

समझते हैं, कि हमारे अंदर भी उन जैसी ताकत और ख्वाहिशें और ताकत आ गयी है।” इस कथन को पढ़ने के बाद यह महसूस होता है, कि भारत की शिक्षा, साहित्य, समाज एवं भाषा की दशा भी अफ्रीकी देशों की दशा से कोई ज़्यादा भिन्न नहीं है। प्रोफेसर कृष्ण कुमार इसी विमर्श के सापेक्ष अपनी पुस्तक राज समाज एवं शिक्षा में यह कहते हैं कि “उन्नीसवीं सदी के अंत तक ये मूल्य पश्चिमी यूरोप के देशों के सारी दुनिया में फैले उपनिवेशों में पहुँच चुके थे। इन औपनिवेशिक समाजों में, जिनमें भारत भी शामिल था, स्थानीय संस्कृति और यूरोपीय मांस के घालमेल से एक नै मध्यवर्गीय सभ्यता ने जन्म लिया। इस सभ्यता का दार्शनिक विश्वास था कि हर व्यक्ति को प्रगति के अवसर ढूँढकर अपने परिवेश से अलग हो जाने की हरचंद चेष्टा करनी चाहिए (पृष्ठ 135)।

भारतवर्ष में परम्परानुरूप शिक्षा का एक गौरवशाली इतिहास रहा है। कालान्तर में औपनिवेशिक शिक्षा ने इसको गहरे तक प्रभावित करके इसके स्वरूप को परिवर्तित कर दिया। औपनिवेशिक भारत में शिक्षा सामाजिक-आर्थिक विकास का साधन बनने के स्थान पर विदेशी शासन की आवश्यकता की पूर्ति का साधन बन गयी। औपनिवेशिक शिक्षा का मूल उद्देश्य श्रमशक्ति पैदा करना था। इस हेतु शिक्षा के स्वरूप को ज्ञान आधारित से प्रशिक्षण आधारित बना दिया गया। शिक्षा का मूल उद्देश्य स्वतंत्र सोच को हतोत्साहित कर एक लीक पर चलने लायक बना दिया गया। यदि हम उपनिवेशकालीन शिक्षा की संरचना पर विचार करते हैं, तो पाते हैं कि उपनिवेशकालीन शिक्षा पिरामिड के आकार की थी, इसका आधार बहुत सीमित था।

अपनी पुस्तक “शिक्षा, समाज और भविष्य” में श्यामाचरण दुबे लिखते हैं, कि नये स्वतंत्र देशों के साथ एक बड़ी विडंबना यह है, कि औपनिवेशिक शक्तियों के अपने पूर्व शापित क्षेत्रों से चले जाने के बाद भी औपनिवेशिक विचारधाराएँ और कार्य पद्धतियाँ वहाँ आज तक बनी हुयी हैं। क्वामे क्रुमाह का तर्क है कि- जब हम किसी ऐसे दर्शन का अध्ययन करते हैं, जो हमारा नहीं है, तो हमें इसके संदर्भ में देखना चाहिए कि यह किस बौद्धिक इतिहास से संबंधित है और हमें इसे इसके संदर्भ में भी देखना चाहिए जिस परिवेश में वह पैदा हुआ था। इस तरह हम इसे आगे बढ़ाने में उपयोग कर सकते हैं”।

जब हम भारतीय शिक्षा में उपनिवेशी जड़ों की तहकीकात करते हैं, तो यह समझ में आता है, कि भारतीय पाठ्यपुस्तकें भी उपनिवेशी आग्रहों से मुक्त नहीं है। कमलानंद झा ने 2010 में प्रकाशित पाठ्यपुस्तकों की राजनीति में इसकी गहरी पड़ताल की है। इसके अतिरिक्त प्रोफेसर कृष्ण कुमार की पुस्तक “शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व” नामक पुस्तक के पाठ्यपुस्तकें और शैक्षिक संस्कृति नामक अध्याय में भी उपनिवेशी शिक्षा के परतों को खोलने का यत्न किया गया है। प्रोफेसर कृष्ण कुमार उपनिवेशी जड़ों की चर्चा करते हुए 1854 की वुड्स डिस्पैच की चर्चा करते हैं और यह प्रतिपादित करते हैं कि किस प्रकार शिक्षा के स्वरूप को नौकरशाही प्रणाली ने गहरे तक प्रभावित किया। वो बताते हैं कि ‘ब्रिटिश काल में ही भारत में व्याप्त सामाजिक- आर्थिक और सांस्कृतिक स्थितियों में इन नीतियों ने जो कार्यात्मक अर्थ ग्रहण किया, उसी में ही पाठ्यक्रम की संस्कृति का उदय हुआ। इन स्थितियों की विवेचना आसान नहीं है। उपनिवेशिकों ने यहाँ की अर्थव्यवस्था और बाद में यहाँ की संस्कृति पर नियंत्रण बनाने के लिए जो तरीके अपनाएँ, वो और भी जटिल थे।

इसका कारण यह था कि उपनिवेशीकरण के प्रति भारत की प्रतिक्रिया का स्वरूप, यहाँ अनेक अंतर्विरोध उपजे और उनसे वर्गीय हिटन एवं सांस्कृतिक रुझानों का उदय हुआ। .... उपनिवेशी शिक्षा का मतलब था कि उसका लाभ लेने वाले अपने आपको और अपने समाज को उपनिवेशकों की दृष्टि से देखेंगे, और वे अपने आपको इस रूप में देखना छोड़ देंगे कि वे नए ज्ञान की रचना करने समर्थ हैं।

उपनिवेशी शिक्षा की मुख्य प्रयोगशाला बंगाल रही है। इस संदर्भ में परमेश आचार्य ने अपनी पुस्तक “देशज शिक्षा औपनिवेशिक विरासत और जातीय विकल्प” पुस्तक में विस्तार से लिखा है। वे कहते हैं, कि चार्ल्स ग्रांट, सी ई ट्रेवेल्यान, और टी.बी. मैकाले भारत में शिक्षा के संस्थापक थे जो इसे ब्रिटिश स्वार्थ के बरकरार रखने का जरिया समझते थे। वे कहते हैं, कि भारत में अभी भी अंग्रेजी शिक्षा का इतिहास ठीक से नहीं लिखा गया है। तथाकथित बंगाल नवजागरण का सिद्धांत अंग्रेजी शिक्षा सम्बंधित हमारी दृष्टि को धुंधला बना दे रहा है। यह आम समझ है कि अंग्रेजी शिक्षा अंग्रेज शासकों द्वारा देसी क्लर्क तैयार करने के लिए लागू की गयी थी, सिर्फ आंशिक रूप से सही है, यह पूर्ण या प्रमुख सच्चाई नहीं है। ....भारत में अंग्रेजी शिक्षा का शुरुआती मकसद औपनिवेशिक हित बरकरार रखना था। हालांकि उपनिवेशवाद के साथ दंभ का जुदा होना कोई आश्चर्य की घटना नहीं है।

यदि तत्कालीन सन्दर्भों की पड़ताल की जाय तो राष्ट्रीय शिक्षा नीति के विजन में यह अंकित है कि “राष्ट्रीय शिक्षा का विजन भारतीय मूल्यों से विकसित शिक्षा प्रणाली है, जो सभी उच्चतर गुणवत्ता शिक्षा उपलब्ध कराके और भारत को वैश्विक ज्ञान महाशक्ति बनाकर भारत को एक जीवंत और न्यायसंगत ज्ञान समाज में बदलने के लिए प्रत्यक्ष रूप से योगदान करेगा।

## संदर्भ सूची

1. एडवर्ड विल्मोट ब्लाइडेन (1887) क्रिश्चिएनिटी इस्लाम एंड दि नीग्रो रेस, चेस्पीके न्यूयार्क।
2. कृष्ण कुमार (1999), राज, समाज और शिक्षा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. न्येरेरे, जे. (1982) "एजुकेशन फॉर सेल्फ-रिलायंस", ए. बाब्स फाफुनवा और जे. यू. एसिकु (सं.) अफ्रीका में शिक्षा: एक तुलनात्मक अध्ययन, लंदन: जॉर्ज एंड अनविन।
4. नकरुमाह, के. (1964) कॉन्सिन्सिज्म: फिलॉसफी एंड आइडियोलॉजी फॉर डीकोलोनाइजेशन एंड डेवलपमेंट विद पार्टिकुलर रेफरेंस टू द अफ्रीका रिवाल्युशन : न्यूयार्क मंथली रिव्यू प्रेस।
5. फ्रेयर, पी. (1970). उत्पीड़ितों की शिक्षाशास्त्र, सीबरी प्रेस।

## करनाल जेल रेडियो: तिनका रेडियो का बंदियों पर प्रभाव और उनकी पसंद के गाने

### डॉ. वर्तिका नन्दा

**सार-** हरियाणा की जेलों में रेडियो की शुरुआत 2021 में हुई। इस राज्य में कुल 19 जेलें हैं, जिनमें से 7 जेलों में रेडियो लाया जा चुका है। इन 19 जेलों में करीब 24,500 बंदी निरुद्ध है। भारत में पहले जेल रेडियो का जन्म 2013 में तिहाड़ जेल परिसर में हुआ जो दक्षिण एशिया का सबसे बड़ा जेल परिसर है। इस शोध पत्र की शोधार्थी जेल रेडियो के जन्म की साक्षी रहीं और बाद में देश में जेल रेडियो लाने में सक्रिय रहीं। यह शोधपत्र तिनका मॉडल ऑफ प्रिजन रिफॉर्मर्स के तहत जेलों में रेडियो पर सुनाये जा रहे गीतों और उसके प्रभावों का आकलन करने का एक प्रयास है। शोध के केंद्र में हरियाणा की जिला जेल, करनाल को रखा गया है। इसके लिए अक्तूबर से दिसंबर, 2021 के बीच आंकड़े लिए गए।

### प्रस्तावना

हरियाणा की जेलों का पहला जेल रेडियो जिला जेल, पानीपत में स्थापित किया गया था। जेल रेडियो के पहले चरण में तीन जेलों- जिला जेल पानीपत, जिला जेल फरीदाबाद और केंद्रीय जेल अंबाला को चुना गया। दूसरे चरण में 4 जेलों को चुना गया। ये जेलें हैं- जिला जेल रोहतक, जिला जेल करनाल, केंद्रीय जेल हिसार-1 और जिला जेल गुरुग्राम। तीसरे चरण में जिला जेल सोनीपत, कुरुक्षेत्र, झज्जर, यमुनानगर, सिरसा और जींद को शामिल किया गया। इस तरह से भारत में पहली बार किसी राज्य की 19 में से 8 जेलों में रेडियो लाया गया और चार जेलों में रेडियो लाने की तैयारी के साथ राज्य की दो तिहाई जेलें रेडियो को लेकर सबल हो गईं।

### करनाल जेल की पृष्ठभूमि:

विद्यालय जिला जेल करनाल, हरियाणा की एक ऐतिहासिक जेल है। इसकी स्थापना 1870 में हुई। इसकी आधिकारिक क्षमता 2434 बंदियों की है, लेकिन औसतन इस जेल में लगभग 1800 पुरुष बंदी और 60 महिलाएं बंदी होती हैं। जेल में कुल 34 बैरक हैं।

### शोध की विधि

इस शोध के लिए 150 बंदियों को चुना गया। इनमें 120 पुरुष और 30 महिलाएं थीं। करनाल जेल की 34 बैरकों में से 16 पुरुष बैरकों और 2 महिला बैरकों के बंदियों को इस शोध के लिए चुना किया गया। बंदियों में 90 सजायाफ्ता बंदी और 60 विचाराधीन बंदी हैं। जनवरी 2021 में इस जेल में कुल 1671 बंदी और उनके साथ 10 बच्चे भी थे। इनमें कुल सजायाफ्ता बंदी- 360 (324 पुरुष, सजायाफ्ता महिला बंदी- 36), कुल विचाराधीन बंदी- 1311 (विचाराधीन पुरुष बंदी- 1122, विचाराधीन महिला बंदी- 189) थे। इनमें दो तिहाई से ज्यादा बंदी अपेक्षाकृत कम आयु के थे और जेल से बाहर जाकर काम करने की बेहतर स्थिति में थे।

उम्र	संख्या
20 - 30	64

30 – 40	42
40 – 50	29
50 से अधिक	15
कुल बंदी	150

### शोध में शामिल किए गए बंदियों की उम्र - 29 दिसम्बर, 2021

इन बंदियों से जानकारी साक्षात्कार और प्रश्नावली के माध्यम से ली गई जो कि मात्रात्मक और गुणात्मक- दोनों प्रकार की थी। आंकड़ों की संबंधित जानकारी के लिए जेल प्रशासन से मदद ली गई।

जिला जेल, करनाल में जेल रेडियो का ऑडीशन

7 मार्च, 2021 को हरियाणा की 4 जेलों के लिए ऑडिशन आयोजित किया गया। इस चरण में करीब 80 बंदियों ने ऑडिशन दिया। इनमें कुल 26 बंदियों को चुना गया, जिनमें से 10 करनाल जेल में हैं। अकेले करनाल से ही महिलाओं का चुनाव हुआ। इनमें 5 महिलाएं और 5 पुरुष हैं। इनके नाम हैं- सोनिया दहिया, ज्योति, शिक्षा, आरती, सोनिया चौधरी, अमित, वीरेंद्र, दिनेश, विवेक भारती और मुकेश। एक अन्य बात यह रही कि कुछ बंदियों ने जेल के इस रेडियो को अपना सिर्फ इसलिए पसंद किया था क्योंकि वे किसी तरह से अपने खाली समय को काटना चाहते थे।

#### 1. ऑडीशन के मुख्य बिंदु

ऑडीशन करते हुए दो बातों पर खास ध्यान दिया गया- उन लोगों को जेल रेडियो से जोड़ा जाए जिनका इससे पहले रेडियो से कोई ताल्लुक नहीं था। दूसरा, ऐसे बंदी टीम में लिए जाएं, जो रेडियो से समय को काटने के लिए नहीं, बल्कि किसी ठोस मकसद के साथ जुड़ें। बाद में यह साबित भी हुआ कि जिन बंदियों में अपनी जिंदगी को नए सिरे से लिखने की जिद थी, उनके काम का तरीका और उनमें अपने बर्ताव को लेकर सुधार की बेहतर गुंजाइश थी।

#### 2. जेल रेडियो की ट्रेनिंग

जेल के रेडियो की ट्रेनिंग के लिए जेल के वातावरण और जरूरतों के मुताबिक रूपरेखा तैयार की गई। बंदियों की ट्रेनिंग उप-अधीक्षक के ऑफिस में ऑनलाइन हुई। बंदियों को रेडियो जॉकी (आर.जे.) के अलावा स्क्रिप्ट और संवाद के विविध पक्षों के लिए प्रशिक्षित किया गया। सभी बंदियों को हर रोज होमवर्क दिया जाता था ताकि वे रेडियो की ट्रेनिंग के साथ गहराई से जुड़ सकें। इस ट्रेनिंग की सबसे सक्रिय बंदी, आर.जे. सोनिया चौधरी का कहना है “सर्दी की सुबह जब 6.45 पर गिनती खुलती है तो रजाई से निकलने का दिल नहीं करता पर, आजकल हमारी जो ट्रेनिंग और इंटरैक्शन चल रही है, उसकी इतनी उत्सुकता होती है कि गिनती खुलते ही मैं रजाई को अलविदा कहकर सुबह 7:30 बजे तक अपने दैनिक कार्यों से फ्री होकर वर्तिका मैडम के दिए गए कामों में लग जाती हूँ। बीच में साथी बंदी नाश्ता करवा देती है, नहीं तो उत्सुकता के चलते नाश्ता करना भी याद नहीं रहता। सुबह- शाम मिलाकर रोज 6 घंटे की ट्रेनिंग रोज चलती है पर थकान जरा नहीं होती। ट्रेनिंग के दौरान महसूस ही नहीं होता कि हम जेल में हैं। जब वापिस अपनी बैरक में आते हैं तो वर्तिका मैडम के द्वारा दिए गए कार्य को करने में समय कब बीत जाता है, पता ही नहीं चलता।”

आर. जे. अमित कुमार का कहना है "शोध के दौरान जेल की करीब आधी बैरकों (16 बैरकों) में मैंने बंदियों से गहन बात की। कुछ बंदियों को गानों के बोल से फर्क नहीं पड़ता बल्कि वो सिर्फ रिलैक्स होने के लिए सुनते हैं। कुछ लोग जिन्हें किसी अपने की याद आती है तो उन्हें ऐसे ही गानों को सुनना अच्छा लगता है। मानसिक शांति की तलाश करने वालों



को भजन और गुरबानी सुन कर आध्यात्मिक ठहराव अनुभव होता है जबकि जिंदगी में किसी अपने से चोट खाए लोग दर्द भरे गीतों को सुनकर राहत महसूस करते हैं।"

ऑडीशन और ट्रेनिंग के बाद टीम तैयार हो गई तब जेल रेडियो का स्टूडियो तैयार किया गया। जिला जेल करनाल में जेल रेडियो की शुरुआत 29 अप्रैल 2021 को हुई। यहां पहले शुरू हुआ एक घंटे का प्रसारण 25 अगस्त 2021 से रोज पांच घंटे कर दिया गया। जेल का रेडियो स्टेशन जेल के चक्कर पर है। पहले यहां एक स्टोर रूम था। जेल रेडियो के इस कमरे और इसकी बाहर की दीवार को सजाने का काम किया। उत्तम 45 साल का है, वह 2017 से जेल में है। पेंटिंग का शौक रखता है। उसके काम के लिए 2021 में तिनका-तिनका इंडिया अवॉर्ड से सम्मानित किया गया। यह अवॉर्ड भारत में जेल के बंदियों और प्रशासन को दिए जाने वाले इकलौते सम्मान हैं।

### 3. जेल रेडियो के श्रोता बंदियों पर प्रभाव

जेल रेडियो में बंदियों की सहभागिता चार तरह से होती है-

1. रेडियो जॉकी के तौर पर कार्यक्रम प्रस्तुत करने वाले बंदी
2. फरमाइश देने वाले बंदी
3. कभी-कभी कार्यक्रमों में हिस्सा लेने वाले बंदी
4. सिर्फ सुनने वाले बंदी।

इन में से जेल के रेडियो का सबसे ज्यादा उपयोग रेडियो जॉकी करते हैं। उन्हें रेडियो की वजह से अपनी प्रतिभा को प्रस्तुत करने और निखारने का मौका मिलता है, जेल के स्टूडियो में समय बिताने का अवसर मिलता है, जेल के अधिकारियों, स्टाफ और बंदियों के बीच पहचान बनती है और दूसरे बंदियों की तुलना में कुछ अतिरिक्त आज़ादी या सुविधा भी मिल जाती है। फरमाइश देने वाले बंदी रेडियो में अपना नाम सुनकर खुशी होते हैं और अपनी पसंद के कार्यक्रमों का आनंद ले पाते हैं। कभी-कभी कार्यक्रमों में हिस्सा लेने वाले बंदी रेडियो में अपनी कला का प्रदर्शन करने की तैयारी करते हैं और कभी-कभार के अपने प्रदर्शन से संतोष पाते हैं। चौथी श्रेणी वाले बंदी सिर्फ श्रोता होते हैं। इनमें से कुछ खुल कर अपनी भावनाएं व्यक्त करते हैं जबकि सीमित संख्या में कुछ बंदी किसी तरह की भावना को अभिव्यक्त नहीं करते। चूंकि जेल का रेडियो हर बैरक में सुनाई देता है, पूरी जेल रेडियो को सुनती है, भले ही सबकी प्रतिक्रियाएं अलग हों।

गौरतलब यह भी है कि ज्यादातर महिला बंदी रेडियो में कुछ नहीं करना चाहती। वे रेडियो के शो सुनती है और योगदान के नाम पर सिर्फ सलाह देती है। उनकी रेडियो जॉकी बनने में भी कोई खास दिलचस्पी नहीं है। करनाल जेल में सिर्फ एक महिला बंदी जेल रेडियो में सक्रिय रही और उसकी सक्रियता में कभी कमी नहीं आई।

### 4. जेल रेडियो पर कार्यक्रम

जेल रेडियो पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों में सूचना, शिक्षा, अध्यात्म और मनोरंजन का समावेश होता है। जेल अधिकारियों और आर.जे बंदियों के आपसी विमर्श के बाद कार्यक्रमों को तय किया जाता है। जिला जेल करनाल के रेडियो पर श्रीमद्भगवद्गीता पाठ (प्रतिदिन दो श्लोक), न्यूज़, डिबेट, लोग क्या कहेंगे, हैप्पी बर्थ-डे, लोट-पोट-बोल, किताब का कोना, जेल की रसोई, अतीत के झरोखे से, नन्ही मुस्कान, गीतांजली (फरमाइशी गीतों का प्रोग्राम), ब्यूटी टिप्स, सीख की सीढ़ी, जेल के ये दिन जैसे कार्यक्रम नियमित तौर पर चलाए जाते हैं। हर रोज सुबह शुरुआत भजन से होती है। जेल अधिकारी मानते हैं कि ऐसे कार्यक्रमों की वजह से बंदियों में ईश्वर के प्रति विश्वास बढ़ा है। सुबह नौ बजे से जेल रेडियो



पर "गीतांजली" कार्यक्रम के तहत बंदियों के मनपसंद गाने चलाये जाते हैं। कुछ बंदी तो इन गानों के बंद हो जाने के बाद भी गुनगुनाते रहते हैं। रेडियो जॉकी विशेष रूचि के साथ इस कार्यक्रम का संचालन करते हैं।

### शोध के नतीजे और जेल रेडियो पर संगीत

शोध से पता चला कि जेल रेडियो पर गीत सबसे ज्यादा सुने जाते हैं। ज्यादातर फरमाइशें लिखित तौर पर आती हैं और कुछ मौखिक रूप में भी। जेल में जन्मदिन या किसी विशेष मौके पर संबंधित गानों की फरमाइशें ज्यादा आती हैं। औसतन हर रोज 30-35 फरमाइशें जेल रेडियो में आती हैं। फरमाइशी गीतों का प्रोग्राम "गीतांजली" सबसे ज्यादा पसंद किया जाने वाला प्रोग्राम है। लंबे समय से जेल में रह रहे सजायाफता बंदी ज्यादातर "प्रेरणादायक" और "धार्मिक" गीत जबकि विचाराधीन बंदी ज्यादातर "रोमांटिक, खुशहाली भरे और रिश्तों पर आधारित" गीत सुनना ज्यादा पसंद करते हैं।

27% बंदी "रोमांटिक", 22% बंदी "रिश्तों पर आधारित" (60% बंदी "माता-पिता", 25% बंदी "दोस्ती" और 15% बंदी "भाई-बहन" या अन्य रिश्तों पर आधारित) 19% बंदी "खुशहाली भरे", 16% बंदी "उदासी भरे", 8% बंदी "धार्मिक", 5% बंदी "प्रेरणादायक" और 3% बंदी "देशभक्ति" गाने सुनना पसंद करते हैं। 44% बंदी जेल रेडियो को सुन कर "तनाव से राहत" महसूस करते हैं, 26% बंदी ऐसे हैं जो जेल रेडियो पर पसंदीदा गानों को सुनकर "अच्छा महसूस" करते हैं। 18% बंदी "अपने प्रियजन के लिए" और 12% बंदी "मनोरंजन/ समय व्यतीत" करने के लिए जेल रेडियो को सुनना पसंद करते हैं।

प्रेम	27%
रिश्तों पर आधारित	22%
खुशी	19%
उदासी	16%
भक्ति	8%
प्रेरणादायक	5%
देशभक्ति	3%

### जेल रेडियो पर सुने जाने वाले गानों के प्रकार

#### जेल रेडियो पर सबसे लोकप्रिय गायक एवं गीत

नेहा कक्कड़, कैलाश खेर, उदित नारायण, अल्का याग्निक, अरिजीत सिंह, करण औजला, गुरनाम भुल्लर, एम्मी विर्क, दर्शन रावल, गुरु रंधावा, जुबिन नौटियाल के गीत जेल रेडियो पर सबसे ज्यादा पसंद किये जाते हैं। पंजाबी गायक बच्चू मान, गुरदास मान, मास्टर सलीम, अखिल, नेहा कक्कड़, जुबिन नौटियाल, सुनंदा शर्मा, एम्मी विर्क, दिलजीत दोसांझ, गुरु रंधावा, जस्सी गिल, काका, रोशन प्रिंस और हनी सिंह के गीत ज्यादा सुने जाते हैं। जेल रेडियो पर "मिले हो तुम हमको बड़े नसीबों से, चुराया है हमने किस्मत की लकीरों से...", "काश तेरे इश्क में नीलाम हो जाऊं... आखिरी बोली तुम लगाओ तेरे नाम हो जाऊं और "तुझे मैं प्यार करूँ, और इतना प्यार करूँ के जब तलक में जीऊँ, सिर्फ तेरा इंतजार करूँ..." सबसे ज्यादा सुने जाने वाले गीत हैं।

#### जेल रेडियो का बंदियों पर प्रभाव

##### 1. जेल रेडियो का बंदियों पर प्रभाव:

जेल में रेडियो के लिए ऑडिशन, ट्रेनिंग और रेडियो के आने का सकारात्मक असर श्रोता और प्रतिभागी पर पड़ा है। आर.जे. जेल रेडियो के स्टूडियो में ज्यादा से ज्यादा समय गुजारना चाहते हैं। वे बाकी बंदियों के बेहद प्रिय बन गए हैं। रेडियो जॉकी बनने एक नई और मजबूत पहचान बन गई है। उन्हें सम्मान मिलने लगा है, कौशल विकसित हुआ है और उनमें आत्मविश्वास आने लगा है।

दुनिया के एक विशेष डिजिटल प्लेटफार्म BRUT पर 'Inside Panipat Jail's Radio Revolution' शीर्षक से एक विशेष डॉक्यूमेंट्री 9 जनवरी, 2022 को प्रसारित की गयी। इसमें जेल रेडियो के एक विशेष रेडियो जॉकी ने रिकॉर्ड पर यह बात कही थी-

“एक बार जब आप जेल में आ जाते हो तो आप अपने पेरेंट्स की सारी रेस्पेक्ट गिरा के आ जाते हो। तो वही डर था, पर जब अब घर के खुद ही बोलते हैं कि अच्छा काम कर रहा है तो खुशी-सी महसूस होती है।”

## 2. संवाद की जरूरतें :

जेल के रेडियो ने बंदियों और जेल स्टाफ की संवाद की जरूरतों को पूरा करने में बड़ी मदद की है। जेल रेडियो को वजह से जेल में लिखने और शोध करने की परंपरा विकसित हुई। जेल के रेडियो जॉकी स्क्रिप्ट को लिखने लगे। सुनने वाले बंदी भी लिख कर अपनी फरमाईश देने लगे। इससे बंदियों के संवाद की जरूरतें पूरी होने लगी और वो एक बार फिर लेखन से जुड़ गए। इससे जेल में बंदियों को कागज और कलम मुहैया होने से उनमें उत्साह आया है। अपनी पसंद के कार्यक्रम को सुनाने के लिए तिनका तिनका फाउंडेशन ने यह अनिवार्य शर्त रखी कि सभी फरमाइशें लिखित में होने पर ही स्वीकार की जाएंगी। जेल के रेडियो जॉकी स्क्रिप्ट को लिखते हैं। इससे जेल में लेखन को नवजीवन मिला है।

## 3. जेल के श्रोता, कोरोना और अवसाद:

रेडियो जॉकी के अलावा भी बाकी सभी बंदी जेल रेडियो के श्रोता ही हैं। इनसे कुछ बंदी कभी कभी जेल रेडियो पर कार्यक्रम प्रस्तुत करने जरूर आते हैं लेकिन बाकी सभी पूरी तरह से श्रोता ही हैं। इन बंदियों के लिए भी जेल का रेडियो वरदान साबित हुआ है। कोरोना में जेल का रेडियो उनका साथी बना। मुलाकात बंद होने पर अवसाद से निपटने में जेल रेडियो ने इनकी विशेष मदद की।

## 4. मानसिक स्वास्थ्य प्रभाव:

जेल रेडियो के प्रभाव से बंदियों की मानसिक सेहत पर सकारात्मक असर पड़ा है। जेल के डॉक्टर के मुताबिक जेल के रेडियो ने को किया है, वह कोई अन्य साधन कभी नहीं कर पाया।

## 5. जेल में अनुशासन:

जेल में अनुशासनहीनता और गुस्से में कमी पाई गई है। रेडियो की शुरुआत बन्दियों को तनाव से मुक्त करने तथा उनमें सुधार लाने में काफी हद तक सफल हो रहा है। जेल में आने वाले जज और डॉक्टर अपने दौर के दौरान जेल रेडियो को सुनने के लिए हर बार अतिरिक्त समय निकालते हैं। जेल अधीक्षक अमित कुमार के अनुसार – “जेल रेडियो के आने से बंदी तनावमुक्त महसूस करते हैं। संगीत के प्रभाव से जेल का वातावरण खुशनुमा बना रहता है। मानसिक रोगों और नींद न आने की दवाइयाँ लेने वाले बंदियों में काफी कमी आई है। आपसी लड़ाई-झगड़ों के मामले कम हुए हैं। जेल रेडियो ने बंदियों शांतिप्रिय बनाया है।”

## 6. महिला बंदियों की उदासी को कम करने में कारगर:

करनाल की जेल में महिलाओं के पास सिलाई मशीन पर काम करने और अंग्रेजी भाषा को सीखने से अपने एकाकीपन को काम करने का विकल्प उपलब्ध है लेकिन इसका इस्तेमाल सभी महिलाएं नहीं कर पाती हैं। समय के सदुपयोग के अन्य विकल्प नहीं हैं। हरियाणा की जेलों में मात्र चार महिला अधिकारी ही हैं। जेल रेडियो के काम का नियमित निरीक्षण एक महिला अधिकारी, जेल उप-अधीक्षक शैलाक्षी भारद्वाज का कहना है कि-

“पहले महिलाओं की दिनचर्या अपने परिवार और केस की चिंताओं में व्यतीत हो जाती थी लेकिन अब सुबह लॉकअप खुलते ही जब जेल रेडियो पर भजनों की आवाज इनके कानों में पड़ती है तो इन्हें भी आत्मिक शांति का अनुभव होता है। संगीत ने इनके मुरझा चुके दिलों पर ओस की बूंद के प्रभाव जैसा काम किया है। उदास पड़े चेहरे अब मुस्कुराने और गुनगुनाने लगे हैं।”

### 7. समाज में लौटने की संभावना:

बंदियों के परिवारों में बंदियों को फिर से अपना लेने की भावना बड़ी है। 2022 की जनवरी में जिला जेल, करनाल में आजीवन कारावास पर बंदी खुद सोनिया चौधरी का बेटा उससे मिलने करनाल की जेल पर आ पहुंचा। मां- बेटे की यह मुलाकात करीब 3 साल बाद हुई और इसकी इकलौती वजह था- जेल रेडियो। इस बारे में अमर उजाला ने 2 जनवरी, 2022 को प्रमुखता से यह खबर छापी:

(अमर उजाला) तिनका तिनका फाउंडेशन: आजीवन कारावास काट रही सोनिया को मिली पहचान तो रिश्ता तोड़ चुका बेटा भी आया मिलने, कैदियों की जिंदगी को यूँ बदल रहा रेडियो।

### 8. बंदियों के साथ जेल में रहने वाले बच्चों पर असर:

जेल के बच्चों में रेडियो पर बजाई जाने वाली धुनें खूब खुशी भरती है। इससे जेल के कठिन माहौल के बीच उन्हें आनंदित होने का मौका मिलता है। इसके अलावा जेल रेडियो पर कभी-कभी अपनी कविताएं सुनाने का जो मौका उन्हें मिलता है, उससे उनकी भाषा और संवाद में बहुत सुधार आता है।

### 9. टेलीविजन की तुलना में रेडियो बेहतर विकल्प:

जेल रेडियो आने के बाद एक बड़ा बदलाव यह है कि जिस समय रेडियो प्रसारित होता है, बंदी टी.वी. देखने के बजाय रेडियो को ही सुनना चाहते हैं। वैसे भी जेल रेडियो का कंटेंट का जेल के अंदर ही तैयार होना है। फिल्मी संगीत के रिकार्डेड कार्यक्रमों को छोड़कर बाकी सभी कार्यक्रम बंदी खुद तैयार करते हैं। ऐसे में जेल का रेडियो उनकी अपनी कला को निखारने और सबके सामने लाने का प्लेटफार्म साबित होता है। अपने साथी बंदियों की प्रतिभा से वे प्रेरित भी होते हैं।

तनाव से मुक्ति	44%
खुशी की भावना	26 %
अपने प्रिय लोगों की याद	18%
मनोरंजन/समय बिताने का साधन	12%

शोध में पाया गया कि बंदी जेल के रेडियो से निम्नलिखित तरीके से प्रभावित होते हैं।

### 10. जेल की छवि में सुधार:

मीडिया में आने वाली सकारात्मक खबरों से जेल की छवि में विशेष सुधार हुआ। जिस दिन रेडियो की कोई खबर अखबार में छपती है, बंदी उसे उत्साह से पढ़ते हैं क्योंकि जेल को लेकर सुकून देने वाली खबरें बहुत कम छपा करती हैं।

### 11. जेल रेडियो के प्रभाव से बदलते रिश्ते:

जेल रेडियो रिश्तों पर आधारित गीत अक्सर बंदियों को खोये हुए रिश्तों की कमी और उनकी गलतियों का अहसास करवाते हैं।

### निष्कर्ष

हरियाणा की जेलों में रेडियो ने पूरी भारत की जेलों के लिए एक विशेष मिसाल कायम की। इस दौरान बंदियों के लिखे और गाए सात गाने तिनका तिनका फाउंडेशन ने रिलीज किए जिसे जेल प्रशासन और जनता ने खूब सराहा। कोरोना के दौरान जेल का यह रेडियो बंदियों के लिए मानसिक संबल बना। जेलों में शोध की परंपरा कायम हुई। जिला जेल पानीपत में विशेष तिनका तिनका लाइब्रेरी बनाई गई जो जेल रेडियो के साथ वाले कमरे में है। जेल रेडियो को तिनका पॉडकास्ट में तब्दील किया गया। जेल रेडियो से जुड़ी थीम पर किताब, कविताएं और गाने लिखने का काम आगे बढ़ा। बंदी अब जेल के रेडियो में अपने नए जीवन की शुरुआत को देखने लगे हैं। 2021 में भारत के गृह मंत्रालय के तहत बी.आर.पी.डी. के वार्षिक सम्मेलन में तिनका जेल रेडियो को पहले सत्र में शामिल किया गया। BRUT ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जेल रेडियो पर एक फिल्म बनाई। नार्वे में जून 2022 में दुनिया की पहली जेल रेडियो कांफ्रेंस में हरियाणा की जेल रेडियो को विशेष महत्त्व दिया गया। (यह अध्ययन तिनका तिनका प्रिजन रिसर्च सेल के अंतर्गत किया गया। इसमें जेल के दो बंदियों – सोनिया चौधरी और अमित कुमार का विशेष सहयोग रहा। यह दोनों बंदी आजीवन कारावास पर हैं।)।

### संदर्भ

1. Karnal jail to launch in-house radio station. (2021, April 10).
2. Women's Era. (2021, April 30). Tinka Prison Research Cell Announced.
3. आजीवन कारावास काट रही सोनिया को मिली पहचान तो रिश्ता तोड़ चुका बेटा भी आया मिलने, कैदियों की जिंदगी को यूँ बदल रहा रेडियो. (n.d.). तिनका तिनका फाउंडेशन.
4. तिनका जेल रेडियो बदलेगा कैदी-बंदियों का दृष्टिकोण, लिखे इमोशनल सांग. (2021, January 7). दैनिक जागरण.
5. नन्दा, व. (2016). तिनका तिनका वासना. तिनका तिनका फाउंडेशन.
6. नन्दा, व. (2018). तिनका तिनका. मध्य प्रदेश.

# भारतीय भाषायी परिदृश्य में राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020

डॉ. धर्मेन्द्र प्रताप सिंह

हिंदी विभाग, हिन्दू महाविद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

ई-मेल : dsingh@hinducollege.du.ac.in

## परिचय एवं पृष्ठभूमि

शिक्षा एवं शिक्षा नीति की बात जब भी होगी, भाषा की चर्चा के बिना यह अधूरी मानी जाएगी क्योंकि भाषा के बिना कोई भी शिक्षा संभव नहीं है। भारत में भाषा का विषय न केवल महत्वपूर्ण है बल्कि जटिल एवं भावनात्मक भी है। भारतीय भाषाओं को प्राथमिकता देती बहुप्रतीक्षित 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020' देश की शिक्षा व्यवस्था में व्यापक बदलाव के नजरिए से तैयार की गई है। देश के विभिन्न सामाजिक संगठनों, शिक्षा-विशेषज्ञों एवं अनुसंधानकर्ताओं से विस्तृत परिचर्चा के उपरांत इसे अंतिम रूप दिया गया है, जिसका मकसद समग्र शिक्षा को बढ़ावा देना है। देश की भाषा में शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षा नीति की एक महत्वपूर्ण बिन्दु है। ब्रिटिश औपनिवेशीकरण की पूरी प्रक्रिया में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका थी। शिक्षा के भारतीयकरण का पूरा अभियान भी भाषा के माध्यम से ही सार्थक हो सकता है, राष्ट्रीय शिक्षा नीति इस दृढ़ विश्वास का प्रतिपादन करती है।

स्वाधीन भारत में शिक्षा को राष्ट्रीय अपेक्षाओं के अनुकूल बनाने की चुनौती थी। इस दिशा में राष्ट्रीय स्तर पर प्रयत्न भी आरंभ हुए। राधाकृष्णन आयोग, मुदालियर आयोग और कोठारी आयोग जैसे आयोग बने जिनकी सिफारिशों ने स्वतंत्र भारत में शिक्षा की नींव रखी। कोठारी आयोग की रिपोर्ट (1964-66) और शिक्षा नीति (1986) स्वतंत्र भारत में शिक्षा-सुधार की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल थी। इसमें स्वतंत्र राष्ट्र की अपेक्षाओं को साकार करने, शिक्षा को मूल्यपरक बनाने और भारतीय संस्कृति से जोड़ने पर तो बल था लेकिन क्रियान्वयन की स्पष्ट योजना का अभाव था। परिणामस्वरूप औपचारिक शिक्षा की संरचना में बदलाव तो हुए लेकिन क्रियान्वयन योजना के अभाव में अन्य परिकल्पित लक्ष्यों के संदर्भ में कोई महत्वपूर्ण प्रगति नहीं हो पायी जिससे उसे कार्यरूप देने में अनेक समस्याएं आयीं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षण माध्यम के रूप में भाषा संबंधित पहलुओं को प्रमुखतः 'बहुभाषावाद और भाषा की शक्ति' खंड में रखा गया है। स्वतंत्रता के बाद यह पहला राष्ट्रीय प्रयास है जब किसी शिक्षा नीति में शिक्षा के माध्यम के रूप में भाषा की शक्ति को पहचानते हुए भारतीय भाषाओं के बारे में विभिन्न प्रावधान व सुझाव समग्रता से शामिल किए गए हैं। इसकी भाषायी चिंता को इस तथ्य से भी समझा जा सकता है कि 108 पृष्ठ के इस प्रारूप में 206 बार भाषा शब्द आया है, जिनमें से 126 बार बहुवचन तो 80 बार एकवचन के रूप में। यहां बहुवचन रूप के आधिक्य का होना इस बात की ओर संकेत करता है कि किसी एक भाषा-संस्कृति की बात न करके सभी भाषाओं पर जोर दिया गया है। विगत वर्षों में भाषाओं के प्रति ध्यान न दिए जाने की आत्म-स्वीकृति इस शिक्षा नीति का प्रस्थान-बिंदु है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति की स्वीकृति के एक वर्ष के भीतर ही अनेक राज्यों के इंजीनियरिंग कॉलेजों में भारतीय भाषाओं में अध्यापन प्रारंभ होना युगांतकारी घटना है। अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद ने इंजीनियरिंग का पाठ्यक्रम आठ भाषा में तैयार करके इसके क्रियान्वयन पर ठोस कार्य प्रारंभ कर दिया है। इसी प्रकार कुछ भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान

(आईआईटी), राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान (एनआईटी) तथा मध्यप्रदेश सरकार ने चिकित्सा शिक्षा के पाठ्यक्रम को भी मातृभाषा में पढ़ाने की तैयारी कर ली है। इन अभिनंदनीय एवं अनुकरणीय प्रयासों से उम्मीद जगी है कि नयी शिक्षा नीति के जरिए शिक्षा के क्षेत्र की कमियों को घटाया या पूरी तरह खत्म किया जा सकेगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक आमूलचूल बदलाव का मार्ग सुझाती है। भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। भारत में अनेक भाषाएं हैं, जिन्हें भाषा-चिंतक भाषा और बोलियों में बांटते हैं। संविधान की 8वीं अनुसूची में 22 भाषाएं हैं। इसके अतिरिक्त बोलियों को मिलाकर 2011 की जनगणना के अनुसार 1369 भाषाएं हैं, जिसमें 121 भाषाएं 10 हजार से अधिक बोलने वालों की भाषाएं हैं। यूनेस्को के अनुसार विगत 50 वर्ष में 197 भारतीय भाषाएं लुप्त प्राय हो चुकी हैं तो अनेक और लुप्त प्राय होने की कगार पर हैं। एक भाषा के मरने से उस भाषा को बोलने वालों की सभ्यता और संस्कृति समाप्त हो जाती है। भाषा का जीवित होना उस भाषिक समाज का जीवित होना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इसे भली-भांति स्वीकार किया गया है – ‘संस्कृति के संरक्षण, संवर्धन और प्रसार के लिए हमें उस संस्कृति की भाषाओं का संरक्षण और संवर्धन करना होगा।’

### प्राथमिक-माध्यमिक शिक्षा

पहली व दूसरी कक्षा में भाषा पर जोर देने के साथ चौथी व पांचवीं के बच्चों के लेखन कौशल पर भी ध्यान देने की बात राष्ट्रीय शिक्षा नीति में की गई है। बच्चों में अपनी मातृभाषा के प्रति जागरूकता फैलाने हेतु ‘भाषा सप्ताह’ मनाने की योजना शामिल है। जब तक स्कूली शिक्षा में सुधार नहीं होगा तब तक उच्च शिक्षा व्यवस्थित नहीं हो सकती। स्कूली शिक्षा की नींव पर ही उच्च शिक्षा की इमारत खड़ी होती है। मातृभाषा में सीखना-समझना आसान होता है क्योंकि अपनी भाषा जीन में होती है। इस नीति में स्कूली शिक्षा को मातृभाषा और प्रादेशिक भाषाओं में करने तथा उच्च शिक्षा को व्यावहारिक बनाने की पहल दिखाई पड़ती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति की अनुशंसाओं के अनुसार विद्यालयी शिक्षा के स्तर पर कम से कम कक्षा पांच तक तथा जहां संभव है वहां कक्षा आठ तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए। सर्वाधिक महत्वपूर्ण रूप में विद्यालय से लेकर उच्च शिक्षा के स्तर पर पाठ्यक्रम द्विभाषी रूप में उपलब्ध कराने की बात कही गयी है। महात्मा गांधी ने भी कहा था कि हमारा बालक स्नातक, परास्नातक तक की पढ़ाई में छः वर्ष अंग्रेजी के पीछे बरबाद करता है, अगर यह समय उसके विषय पर खर्च होता है तो वह अपने विषय में अधिक सक्षम हो सकता है। अंग्रेजी माध्यम की स्कूली शिक्षा की दौड़ में यह बात प्रायः देर से समझ आती है। वैश्विक स्तर पर भाषा संबंधी अध्ययनों का भी यही निष्कर्ष है कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए। कम से कम पांचवी कक्षा तक बच्चों को मातृभाषा या किसी अन्य भारतीय भाषा में पढ़ाई के प्रावधान के द्वारा सरकार का उद्देश्य बच्चों को भारतीय भाषाओं से जोड़ना है। संस्कृत भाषा को भी विषय के तौर पर रखा गया है। एक विषय के रूप में बच्चे अंग्रेजी भी पढ़ सकते हैं और पांचवी कक्षा के बाद यदि वे चाहें तो अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाई जारी रख सकते हैं। अतः इससे बच्चों में अंग्रेजी ज्ञान में कमजोरी की संभावना नहीं है अपितु इससे बच्चे अपनी भाषा व संस्कृति से घनिष्ठ संबंध बना पाएंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में स्कूली शिक्षा में व्यापक बदलाव दिखाई पड़ेंगे। गैर हिंदी भाषी राज्यों में भाषा विवाद को समाप्त करते हुए पांचवीं या राज्य चाहे तो आठवीं तक पढ़ाई मातृभाषा में हो सकेगी। राज्य इसके बाद भी मातृभाषा में पढ़ाई जारी रख सकते हैं। विज्ञान समेत सभी विषयों की किताबें भारतीय भाषाओं में उपलब्ध होंगी। इसके अलावा ‘त्रिभाषा फार्मूला’ से भाषा चुनने का अधिकार राज्यों को दिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत 2030 तक शत-प्रतिशत बच्चों को स्कूली शिक्षा में नामांकन का लक्ष्य है। इसमें क्षेत्रीय भाषाओं में ऑनलाइन शिक्षा की पाठ्य-सामग्री तैयार करना भी एक महत्वपूर्ण लक्ष्य रखा गया है।

जनगणना के आंकड़ों के अनुसार विगत तीस-चालीस वर्षों में प्रायः बड़ी भाषाओं के बोलने वालों की संख्या कम हुई है और देश एवं उस क्षेत्र की आबादी तेजी से बढ़ी है। इस शिक्षा नीति में यह प्रावधान उचित ही है कि आठवीं अनुसूची सहित सभी भाषाओं को शिक्षण एवं अध्ययन की माध्यम भाषा के रूप में विकसित किया जाए। इस प्रक्रिया में उच्च गुणवत्ता की मुद्रण-सामग्री के निर्माण के साथ पाठ्य-पुस्तकें, वीडियो-निर्माण, नाटक, कहानी, कविताएं, कोश, उपन्यास, पत्रिकाएं, वेब-सामग्री आदि के सृजन एवं प्रसार पर जोर दिया गया है। साथ ही शब्द-संपदा को अनवरत अद्यतन करने और उनके प्रसार का प्रस्ताव है, जिससे भारतीय भाषाएं अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन जैसी भाषाओं के समकक्ष खड़ी हो सकेंगी।

मातृभाषा में न्यूनतम प्राथमिक स्तर पर शिक्षा देने की व्यवस्था बच्चों में समझ विकसित करने एवं आगे की शिक्षा हेतु क्षमता-निर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। शिक्षा मनोविज्ञान और भाषाई संवर्धन की दृष्टि से मातृभाषा में न्यूनतम कक्षा पांच तक की पढ़ाई का प्रस्ताव, 2030 तक समावेशी और समान गुणवत्ता वाली शिक्षा सुनिश्चित करना और सभी के लिए आजीवन सीखते रहने के अवसरों को बढ़ावा देना जैसे लक्ष्यों को पाने हेतु ऐसे प्रस्ताव महत्वपूर्ण हैं। लेकिन सच यह भी है कि इस रास्ते में चुनौतियां भी बहुत हैं।

देश सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की स्थिति दयनीय है। छात्र-शिक्षक अनुपात, विद्यालयों में ढांचागत सुविधाएं, प्रयोगशाला, पुस्तकालय, खेल आदि के सामानों की स्थिति दयनीय है। शिक्षकों के कौशल का एक बड़ा हिस्सा अन्य प्रबंधकीय दायित्वों, मध्याह्न भोजन आदि की व्यवस्था में चला जाता है। मातृभाषा के चिह्नांकन की स्थिति भी उन पर अतिरिक्त कार्यभार के रूप में आएगी। बहुभाषिक कक्षा का प्रबंधन भी चुनौतीपूर्ण है। सघन बहुभाषिकता वाले अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम या नागालैंड जैसे राज्यों में किसी प्राथमिक विद्यालय की एक कक्षा में मातृभाषा में शिक्षण निसंदेह बड़ी चुनौती होगी। ऐसे में भाषा शिक्षकों का समूह तैयार किए जाने पर जोर देना होगा। बचपन से ही बच्चों में कला, साहित्य, संगीत, शिल्प के साथ आगे के अध्ययन, अनुवाद, संग्रहालय प्रशासन, पुरातत्त्व, कला संरक्षण, ग्राफिक और वेब-डिजाइन में उच्च गुणवत्ता वाले विकास कार्यक्रमों का प्रस्ताव उनमें रचनात्मक क्षमता का निर्माण किए जाने की दृष्टि रोचक है। इससे वे सीधे रोजगार से जुड़ेंगे और न केवल स्थानीय संस्कृति, ज्ञान एवं भाषाओं का विकास होगा बल्कि रोजगार के नए क्षेत्र भी सृजित होंगे। इस क्रम में मानव प्रतिभा के साथ तकनीक का समुचित उपयोग करते हुए भाषाओं और उनसे जुड़े कला-संस्कृति को ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के माध्यम से संरक्षित करना होगा। इस हेतु वीडियो-निर्माण, कोश, कहानी, लोक-संगीत, नृत्य आदि माध्यम अपनाए जा सकते हैं। इस प्रक्रिया में कृत्रिम मेधा के साथ भारतीय भाषाओं को शामिल करने के प्रयास का प्रस्ताव है।

सामान्यतः यह देखा गया है कि देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों के भाषा विभाग सिर्फ साहित्य पढ़ाने में संलग्न हैं। पूरे पाठ्यक्रम की संरचना में भाषा की प्रयोजनमूलकता, भाषा-शिक्षण एवं व्यवहार, व्याकरण, कोश, भाषा-शास्त्रीय आलोचना या पाठ-विश्लेषण की प्रवृत्ति से दूरी बनाए हुए हैं। यही कारण है कि भाषा में पीएचडी किया हुआ छात्र भी उस भाषा की भाषा-वैज्ञानिक मान्यताओं, व्याकरण, वर्तनी आदि से प्रायः अनभिज्ञ रहता है। ध्यान रहे कि इन्हीं विश्वविद्यालयों में यदि विदेशी भाषा की पढ़ाई हो रही हो, तो उनमें सिर्फ साहित्य नहीं बल्कि साहित्येतर प्रसंगों एवं भाषा संरचना पर भी पर्याप्त जोर दिया जाता है।

एक तरफ शास्त्रीय भाषाओं तमिल, संस्कृत, कन्नड़, तेलुगु, मलयालम, एवं उड़िया से जुड़े संस्थाओं के अकादमिक महत्त्व को देखते हुए उनको विभिन्न विश्वविद्यालयों से जोड़ने का सुझाव है, तो पालि, प्राकृत एवं फारसी भाषा के लिए नए संस्थान बनाने पर भी जोर दिया गया है। इससे देश के कला, इतिहास एवं परंपरा आदि पर बेहतर शिक्षण एवं शोधकार्य हो सकेगा। साथ ही इसमें अनुवाद के नाम पर एक अलग संस्थान बनाने की पेशकश है जो निश्चित रूप से



भारतीय बहुभाषिकता एवं इनमें निहित ज्ञान को सामने लाने का एक बेहतर प्रयास होगा। हालांकि 2005 में स्थापित 'राष्ट्रीय ज्ञान आयोग' के सुझाव के अनुरूप 'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' पहले से कार्यरत है और इसी को एक संस्थान का रूप दिया जा सकता है, जहां न सिर्फ अंग्रेजी से भारतीय भाषाओं में बल्कि भारतीय भाषाओं से अंग्रेजी में भी अनुवाद हो। इसके साथ भारतीय भाषाओं में परस्पर व्यापक अनुवाद की पहल भी हो। इन सबके मध्य सुदूर जनजातीय भाषाओं में निहित ज्ञान-परंपरा को किसी भी रूप में कम नहीं समझा जाना चाहिए और क्योंकि राष्ट्रीय फलक पर ये भी उचित स्थान की हकदार हैं।

भारत में भाषाओं की विविधता को ध्यान में रखकर एक अत्यंत व्यावहारिक समस्या के समाधान पर भी नीति में ध्यान दिया गया है। भारत के अधिकतर राज्यों का गठन भाषा के आधार पर किया गया है परंतु जिसको आज प्रचलित भाषा में बोली कहा जाता है, वह एक ही राज्य में अनेक होती है। प्रायः जनजातीय, पहाड़ी क्षेत्र के छात्र उस राज्य की राजभाषा भी ठीक प्रकार से नहीं जानते। ऐसे में उनको वहां की स्थानीय भाषा में पढ़ाया जाए, तभी वे सही ढंग से सीख पायेंगे। इस हेतु इस नीति में शिक्षकों की नियुक्ति के लिए साक्षात्कार में स्थानीय भाषा की सुगमता का विकल्प समाहित है। ग्रामीण भारत के उत्कृष्ट छात्रों, विशेषकर कन्याओं हेतु बीएड पाठ्यक्रम के लिए विशेष छात्रवृत्ति की व्यवस्था की जाएगी जिससे ग्रामीण क्षेत्र में क्षेत्रीय भाषा में निपुण शिक्षकों की नियुक्ति हो सके।

1937 में वर्धा शिक्षा योजना की एक बैठक में शिक्षा में मातृभाषा की अनिवार्यता पर गांधी जी ने कहा था कि 'मेरी मातृभाषा में कितनी खामियां क्यों न हों, मैं इससे इसी तरह चिपटा रहूंगा जिस तरह बच्चा अपनी मां की छाती से। यही मुझे जीवनदायिनी दूध दे सकती है। अगर अंग्रेजी उस जगह को हड़पना चाहती है जिसकी वह हकदार नहीं है तो मैं उससे सख्त नफरत करूंगा। वह कुछ लोगों के सीखने की वस्तु हो सकती है, लाखों करोड़ों की नहीं।'

### त्रिभाषा-सूत्र

वर्ष 1986 की शिक्षा नीति का आग्रह था कि प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में हो। इस दृष्टि से भारतीय भाषाओं में पढ़ने-लिखने की संस्कृति के विकास की संभावना थी। परंतु दुर्भाग्य से इसकी व्याख्या और अनुपालन इस तरह से हुआ कि भारत में भाषिक दृष्टि से दोहरी शिक्षा प्रणाली विकसित हो गयी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के त्रिभाषा सूत्र को भाषा-नीति और अनुवाद-नीति के साथ-साथ भाषा प्रौद्योगिकी की दृष्टि से भी देखने की जरूरत है। शिक्षा नीति में त्रिभाषा सूत्र को लागू करने पर पुनः प्रतिबद्धता व्यक्त की गई है, क्योंकि देश के कुछ राज्य अभी तक इसका पूरा अमल नहीं कर रहे हैं। साथ ही त्रिभाषा नीति में जो दृष्टिकोण था कि उत्तर भारत के राज्य अर्थात् हिंदी भाषी राज्य के छात्र दक्षिण या अन्य राज्यों की एक भाषा सीखेंगे और अहिंदी भाषी राज्यों के छात्र हिंदी सीखेंगे। व्यावहारिक रूप से वैसा नहीं हुआ। इस हेतु इस नीति में भारतीय भाषाओं के शिक्षण को बढ़ावा देने हेतु सुझाव है कि राज्य परस्पर अनुबंध कर भाषा शिक्षकों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। इसी प्रकार कक्षा 6 से 8 तक के विद्यार्थियों को 'एक भारत-श्रेष्ठ भारत' गतिविधि में भाग लेना होगा। त्रिभाषा सूत्र के क्रियान्वयन को लेकर एक जरूरी प्रावधान यह भी किया है कि छात्रों को तीन में से दो भारतीय भाषाओं का चुनाव करना होगा।

संस्कृत अधिकांश भारतीय भाषाओं की जननी और आधार है। इस तथ्य की वैश्विक स्वीकृति है कि संस्कृत वैज्ञानिक दृष्टि से एक संपूर्ण भाषा है। वस्तुतः भारत के सांस्कृतिक वैभव का वैश्विक दिग्दर्शन कराने वाली संस्कृत की अनभिज्ञता दरअसल भारतीयता की अनभिज्ञता है। इस नीति में कहा गया है कि संस्कृत को पाठशालाओं तक सीमित न रखते हुए विद्यालयों में त्रिभाषा सूत्र के तहत एक विकल्प के रूप में स्थान दिया जाएगा। इसे पृथक् की बजाए रुचिपूर्ण एवं नवाचारी तरीकों से पढ़ाया जाएगा तथा अन्य समकालीन एवं प्रासंगिक विषयों जैसे गणित, खगोलशास्त्र, दर्शनशास्त्र, नाटक, योग

आदि से भी जोड़ा जाएगा। साथ ही शिक्षा एवं संस्कृत विषयों में चार वर्षीय बहुविषयक बी.एड. डिग्री के द्वारा मिशन मोड में पूरे देश के संस्कृत शिक्षकों को बड़ी संख्या में व्यावसायिक शिक्षा प्रदान की जाएगी।

देश के अनेक राज्यों में मातृभाषा के विद्यालयों में उच्च माध्यमिक स्तर पर विज्ञान और गणित अंग्रेजी माध्यम में पढ़ाया जा रहा है। पूर्व राष्ट्रपति एवं प्रख्यात वैज्ञानिक डॉ. ए पी जे अब्दुल कलाम से नागपुर के धरमपेठ महाविद्यालय के एक कार्यक्रम में छात्रों ने पूछा कि 'आप सफल वैज्ञानिक कैसे बने' तो जवाब में डॉ. कलाम ने बताया कि 'मैंने 12वीं तक विज्ञान, गणित सहित संपूर्ण शिक्षा मातृभाषा (तमिल) में ली है।' इस नीति में भी गणित, विज्ञान के पाठ्यक्रम द्विभाषी रूप में उपलब्ध कराने का आग्रह है। सरकार को यह भी सुनिश्चित करना होगा कि कक्षा पांचवीं तक भाषा संबंधी नियम केवल सरकारी विद्यालयों तक ही सीमित न रह जाए, बल्कि निजी विद्यालयों पर भी सख्ती से लागू किए जाए। ऐसा करने से ही हमारी शिक्षा व्यवस्था का स्वदेशीकरण हो जाएगा, अन्यथा भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देने वाला यह प्रावधान अमीर-गरीब के बीच खाई पैदा करने वाला होगा। साथ ही हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं में गणित-विज्ञान आदि की स्तरीय पाठ्य-सामग्री के अभाव को दूर करने के प्रयास भी यथाशीघ्र होने चाहिए अन्यथा ऐसे प्रावधानों का संपूर्ण लाभ भावी पीढ़ी नहीं उठा पाएगी और भारतीय भाषाएं भी पीछे छूट जाएंगी।

### उच्च शिक्षा

उच्चतर शिक्षण संस्थानों एवं शिक्षा के अधिकतर कार्यक्रमों में मातृभाषा / स्थानीय भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में उपयोग किया जाएगा। कार्यक्रमों को द्विभाषित रूप में चलाया जाए ताकि पहुंच और सकल नामांकन अनुपात दोनों में बढ़ोत्तरी हो सके। ऐसा करने वाले निजी प्रशिक्षण संस्थानों को भी प्रोत्साहित किया जाएगा। यह हमारी शिक्षा व भाषा नीति की विफलता है कि एक ओर हम आजादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं और दूसरी ओर आजादी के इतने वर्षों के उपरांत भी हम ज्ञान-विज्ञान के पाठ्यक्रमों की सामग्री मातृभाषा व क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध कराने में असमर्थ हैं। थोड़ा-बहुत जो उपलब्ध भी है वह अनुवाद मात्र है, स्तरीय नहीं। इस भाषायी दुरूहता के कारण हमारी प्रतिभाओं को सामने आने का मौका नहीं मिल पा रहा है। रवींद्रनाथ टैगोर ने भी कहा है कि 'हमने अपनी आंखें खोकर चश्मे लगा लिए हैं।' ये चश्मे विदेशी भाषाओं के हैं जो आजादी के बाद की बौद्धिक चर्चाओं में ज्यादा बंटते और लगे हुए दिखाई पड़ते हैं।

### बहुभाषिकता और अनुवाद

भारत में अनुवाद न तो कभी प्राथमिकता का विषय रहा है और न ही स्वाभाविक भाषा का विकल्प ही। भारत जैसे भाषाओं की विविधता और बहुलता वाले विशाल देश में अनुवाद एक आवश्यक कर्म होना चाहिए। इसकी कमी से हम अनेक राज्यों के अच्छे साहित्य से वंचित रह जाते हैं। 'ज्ञान की भाषा अंग्रेजी' की धारणा अर्धसत्य है पूर्ण सत्य नहीं। विभिन्न विषयों का उत्कृष्ट ज्ञान अलग-अलग भाषाओं में उपलब्ध है। विज्ञान का अधिक ज्ञान रूसी भाषा में है, दर्शन का ज्ञान जर्मन भाषा में संरक्षित है, पुरातत्व साहित्य का अधिक अच्छा ज्ञान फ्रांसीसी भाषा में है। इन सब का ज्ञान हमें चाहिये तो अनुवाद ही इसका सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम है। वैश्विक स्तर पर अच्छे ज्ञान की पुस्तक किसी भी भाषा में जैसे ही छपती है, एक माह के भीतर ही उसका जापानी भाषा में अनुवाद हो जाता है। भारत को ज्ञानवान बनाने का लक्ष्य सभी भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान को आत्मसात करने से ही पूर्ण होगा।

समय की मांग के अनुरूप 'राष्ट्रीय अनुवाद संस्थान' की स्थापना तथा अनुवाद के उच्च गुणवत्ता वाले पाठ्यक्रमों का प्रावधान इसमें शामिल है। भारत शीघ्र ही अनुवाद एवं विवेचना से संबंधित अपने प्रयासों का विस्तार कर सकेगा, जिससे विभिन्न भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में उच्चतर गुणवत्ता युक्त अधिगम सामग्री उपलब्ध हो सकेगी। इस हेतु इंस्टीट्यूट ऑफ ट्रांसलेशन एंड इंटरप्रिटेशन (आईआईटीआई) की स्थापना की जायेगी। आईआईटीआई अपने अनुवाद और व्याख्या करने के प्रयासों को सुचारु रूप से चलाने के लिए प्रौद्योगिकी का व्यापक उपयोग करेगी। देशभर में बिखरी

हुई लाखों पांडुलिपियों को एकत्रित और संरक्षित करके उनके अनुवाद तथा अध्ययन करने की प्रतिबद्धता दर्शायी गई है। इस प्रकार से सभी शास्त्रीय भाषाओं और साहित्य का अध्ययन करने वाले संस्थानों और विश्वविद्यालयों का विस्तार होगा। उन हजारों पांडुलिपियों को इकट्ठा करने, संरक्षित करने, अनुवाद करने और उनका अध्ययन करने हेतु प्रयास होगा, जिन पर अभी तक ध्यान नहीं गया है। शास्त्रीय भाषा के संस्थान अपनी स्वायत्तता को बरकरार रखते हुए विश्वविद्यालयों के साथ संबद्ध होने या उनमें विलय का प्रयास करेंगे ताकि सुदृढ़ एवं गहन बहुविषयी कार्यक्रम के हिस्से के तौर पर संकाय काम कर सकें तथा छात्र प्रशिक्षण प्राप्त कर सकें।

भारत की बहुभाषिकता से न्याय करना इस नीति की मूल आत्मा है। देखना होगा कि इसका अमल किस रूप में होता है, क्योंकि मातृभाषा पर जोर देने, त्रिभाषा सूत्र आदि नीतियां तो पहले से ही हैं, लेकिन पूर्व में उनके अनुपालन के कोई ठोस प्रयास नहीं हुए। कई बार तो भाषाई संस्थान या तो उपेक्षा के शिकार हुए या दूरदर्शी एवं कुशल नेतृत्व के अभाव में यथास्थितिवाद के शिकार होकर निहित लक्ष्य की दिशा से विपरीत चलने लगे। आगे ऐसा कुछ न हो, नीति अपने निर्धारित लक्ष्यों को पाए, अंग्रेजी आधिपत्य से मुक्ति हो और सभी भाषाएं और उनमें निहित ज्ञान समान रूप से फले-फूलें, इसी में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की परीक्षा होनी है। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि सृजनात्मकता, नवाचार, शोध आदि मातृभाषा में ही संभव है। भारतीय वैज्ञानिक सी. वी. श्रीनाथ शास्त्री ने कहा है कि 'मेरे अनुभव के अनुसार अंग्रेजी के माध्यम से इंजीनियरिंग की शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों की तुलना में भारतीय भाषाओं में पढ़े छात्र, अधिक वैज्ञानिक अनुसंधान करते हैं।' इसी भाव को स्वीकारते हुए इस नीति में प्रस्तावित 'राष्ट्रीय शोध संस्थान' में भारतीय भाषाओं में शोध हेतु जरूरी निधि का प्रावधान किया जाएगा।

वस्तुतः 1968 की कोठारी आयोग की सिफारिशें हों या 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति, दोनों ही भाषा के संदर्भ में अधिक मुखर नहीं थीं जितनी की राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 होती है। इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में भारतीय भाषाओं के संरक्षण, संवर्धन एवं विकास विस्तार के संदर्भ में आवश्यक अधिकतर बातों का समावेश किया गया है। परंतु बड़ा प्रश्न इसके क्रियान्वयन का है। इस दृष्टि से केंद्र, राज्य तथा विभिन्न शैक्षिक संस्थानों एवं सामाजिक स्तर पर इसके क्रियान्वयन की उचित दिशा एवं व्यवस्था खड़ी करनी होगी। समाज के मानस को परिवर्तित करने की ठोस योजना आवश्यक है। इस नीति में अनेक विषयों के क्रियान्वयन हेतु समय सीमा सुनिश्चित की गई है जबकि भारतीय भाषाओं के संदर्भ में क्रियान्वयन की सुनिश्चित योजना नहीं दिखाई देती। इसलिए नीति में भारतीय भाषाओं के संदर्भ में जो प्रतिबद्धता व्यक्त की गई है उसका क्रमबद्ध समय सुनिश्चित करने से ही वास्तविक क्रियान्वयन संभव हो पायेगा। यह शिक्षा नीति न केवल भारतीय भाषाओं के प्रति संवेदनशील है बल्कि भारत की भावी शिक्षा व्यवस्था और राष्ट्र के उन्नयन के लिए मार्ग प्रशस्त करने वाली नीति भी है। समग्रतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भारत के विभिन्न भाषाओं, बोलियों, कला एवं संस्कृति के संवर्धन हेतु पर्याप्त प्रावधान दिखाई पड़ते हैं। यदि इन प्रावधानों का बेहतर क्रियान्वयन हो तो सनातन संस्कृति अपने गौरवशाली अतीत को पुनः प्राप्त कर भारत को विश्व के अग्रिम पंक्ति के देशों में स्थापित करने में सफल होगी।

## संदर्भ

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (हिंदी संस्करण), 4 : स्कूलों में पाठ्यक्रम और शिक्षण तंत्र : अधिगम समग्र, एकीकृत, आनंददायी और रुचिकर होना चाहिए, 4.11, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ 19
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (हिंदी संस्करण), 22 : भारतीय भाषाओं और कला का संवर्धन, 22.4, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ 86
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (हिंदी संस्करण), 4 : स्कूलों में पाठ्यक्रम और शिक्षण तंत्र : अधिगम समग्र, एकीकृत, आनंददायी और रुचिकर होना चाहिए, 4.11, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ 19

4. <https://www.chhatrashakti.in/2022/02/21/international-mother-language-day-special-article-national-education-policy-and-indian-language-atul-kothari/>
5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (हिंदी संस्करण), 4 : स्कूलों में पाठ्यक्रम और शिक्षण तंत्र : अधिगम समग्र, एकीकृत, आनंददायी और रूचिकर होना चाहिए, 4.13, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ 20
6. <https://www.crackvacancy.com/2021/03/mahatma-gandhi-ke-hindi-bhasha-ke-liye.html>
7. <https://www.chhatrashakti.in/2022/02/21/international-mother-language-day-special-article-national-education-policy-and-indian-language-atul-kothari/>
8. सिंह, प्रो. दिलीप; भाषा का संसार, अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान और भाषा शिक्षण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ 115
9. <https://www.chhatrashakti.in/2022/02/21/international-mother-language-day-special-article-national-education-policy-and-indian-language-atul-kothari/>

# दिव्यांग एवं सुविधावंचित समूहों के बच्चों की समावेशी शिक्षा

**डॉ. विनय कुमार सिंह**

विशेष आवश्यकता समूह शिक्षा विभाग  
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्  
श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली-110016  
ई-मेल: vinay.singh303@yahoo.com

**सार-** विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चे विविध पृष्ठभूमि से आते हैं। यही विविधताएं बच्चों के अधिगम की प्रवृत्ति में भी विविधताएं लाती हैं। यद्यपि विद्यालयी शिक्षा में शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने में शिक्षकों की अहम् भूमिका होती है पर विभिन्न अपरिहार्य परिस्थितियों में स्वयं-सेवकों की सेवाएँ महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 ने स्कूली शिक्षा और जीवन भर सीखने के लिए कार्यात्मक साक्षरता और संख्यात्मकता को बढ़ावा देने के लिए स्वयंसेवकों की भूमिका के महत्व पर भी जोर दिया है। स्वयंसेवक समुदाय का कोई भी व्यक्ति हो सकता है, जो बच्चों के शिक्षा के प्रति संवेदनशील हो। स्वयं-सेवकों का चयन विद्यालय स्तर पर किया जा सकता है। स्वयं-सेवक बच्चों की शिक्षा से संबंधित अपनी सेवाएं कक्षा में, बच्चों के छोटे समूह में, सामुदायिक केन्द्र पर या बच्चों के घर जा कर प्रदान कर सकते हैं। प्रस्तुत लेख में विद्यालयी शिक्षा में स्वयंसेवकों की भूमिका, उनका चयन, कार्य-प्रणाली, परिवार व समुदाय से संपर्क इत्यादि मुद्दों पर विशेष रूप से चर्चा की गयी है। दिव्यांग व सुविधावंचित समूहों के बच्चों की शिक्षा में उनसे विशेष सहयोग अपेक्षित है। अतः यह आवश्यक है कि स्वयं सेवकों के लिए विद्यालय द्वारा बच्चों की शिक्षा से संबंधित उनसे अपेक्षित सेवाओं पर उन्मुखीकरण कार्यक्रम आयोजित किया जाए और साथ ही साथ उनके द्वारा प्रदत्त सेवाओं पर निगरानी व मूल्यांकन किया जाए। स्वयं-सेवकों द्वारा बच्चों की शिक्षा में किए गए महत्त्वपूर्ण योगदान को मान्यता दिए जाने की भी आवश्यकता है, जिससे अधिक से अधिक स्वयं-सेवक शिक्षण-अधिगम गतिविधियों में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित हों।

## प्रस्तावना

विविधता भारतीय समुदाय की पहचान है। विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चे विविध पृष्ठभूमि से आते हैं। उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, खानपान, पहनावा, भाषा, स्वास्थ्य, परिवेश इत्यादि एक दूसरे से भिन्न होता है। यही विविधताएं बच्चों के अधिगम की प्रवृत्ति में भी विविधताएं लाती हैं और उनकी अधिगम संबंधी विविधताओं को समझने में भी मदद करती हैं। वर्तमान परिस्थिति में विद्यालय और शिक्षक बच्चों के सीखने-सिखाने के डिजिटल तरीके का चयन कर रहे हैं। यद्यपि डिजिटल माध्यम से सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में कई उपकरणों, विभिन्न एप्लीकेशंस और सॉफ्टवेयर का व्यापक प्रयोग किया जा रहा है, लेकिन यह हमारे समुदाय के एक छोटे-से हिस्से तक ही सीमित है, जो मुख्य रूप से मेट्रो-शहरों और उच्च कस्बों में ही रहते हैं। प्रायः छोटे शहरों और कस्बों, ग्रामीण और दूर-दराज के क्षेत्रों में

रहने वाले बच्चों, जिसमें दिव्यांग (दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016) और वंचित समूहों के बच्चे भी सम्मिलित हैं, को आभासी शिक्षण-अधिगम में समान भागीदारी का अवसर नहीं मिल पा रहा है और उनकी एक बड़ी संख्या इस शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया से लाभान्वित नहीं हो पा रही है। इस स्थिति में बच्चों की विद्यालयी शिक्षा में स्वयं-सेवकों की भूमिका शिक्षा की गुणवत्ता के साथ समझौता किए बिना हर बच्चे की योग्यता बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण हो जाती है (कबादो, 2021, सेंटर फॉर मेंटल हेल्थ इन स्कूल्स , 2007 और 2013), हालांकि स्वयं-सेवक शिक्षकों के स्थानापन्न नहीं हो सकते हैं। बच्चों की विद्यालयी शिक्षा में स्वयं-सेवकों को शामिल करना राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में भी उल्लिखित है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 ने स्कूली शिक्षा और जीवन भर सीखने के लिए कार्यात्मक साक्षरता और संख्यात्मकता को बढ़ावा देने के लिए स्वयंसेवकों की भूमिका के महत्व पर भी जोर दिया है (राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020)।

विद्यालय में स्वयंसेवक एक सहायक के रूप में बच्चों के लिए एक स्वागत योग्य वातावरण बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं (सेंटर फॉर मेंटल हेल्थ इन स्कूल्स , 2013 और हेंडरसन और मैप, 2002)। स्वयं-सेवक कक्षा में शिक्षकों की सहायता कर सकते हैं (सेंटर फॉर मेंटल हेल्थ इन स्कूल्स, 2007, 2013)। बच्चों की शिक्षा में स्वयं-सेवकों की भूमिका का सफलतम उदाहरण गृह आधारित शिक्षा कार्यक्रम के तहत गंभीर दिव्यांगता वाले बच्चों (दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016, सेंटर फॉर मेंटल हेल्थ इन स्कूल्स 2013 और शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009) की समावेशी शिक्षा हेतु स्वयं-सेवकों की सक्रिय भूमिका, विद्यालयों में राम कृष्ण मिशन के सेवा कार्य और आदिवासी इलाकों के बच्चों की शिक्षा में समुदाय की भागीदारी इत्यादि हैं। वे शिक्षकों और विशेष शिक्षकों की देखरेख में काम करते हैं। स्वयं-सेवक-मध्यस्थ-उपागम के जरिए बच्चों को समान शैक्षिक अवसर प्रदान करने में और विद्यालय व समुदाय के बीच परस्पर सहयोग बढ़ाने की दिशा में स्वयं-सेवकों की भागीदारी मददगार साबित होंगी (कबादो, 2021 और सेंटर फॉर मेंटल हेल्थ इन स्कूल्स, 2007 और 2013)। इसके अलावा बच्चों को योजनाबद्ध तरीके से सिखाने और विभिन्न अधिगम गतिविधियों में यथोचित समायोजन में भी मदद मिलेगी। दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम-2016 में उल्लिखित दिव्यांग बच्चों को व्यक्तिगत सहायता भी दी जा सकेगी (दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 और शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009)।

विद्यालयी शिक्षा में स्वयं-सेवकों की भागीदारी पैसा, पदक, नाम या प्रसिद्धि अर्जित करना नहीं है, बल्कि यह दूसरों को एक तरह से सहायता पहुँचाना है जो बदले में स्वयं को आत्म-संतुष्टि प्रदान करता है (सेंटर फॉर मेंटल हेल्थ इन स्कूल्स, 2013)। बच्चे जो विद्यालयी शिक्षा का लाभ नहीं ले पा रहे हैं या फिर जो ऑनलाइन शिक्षा का माध्यम भी नहीं अपना पा रहे हैं, उनके लिए स्वयं-सेवकों को विद्यालयी शिक्षा के साथ जोड़ने पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

### **स्वयं-सेवक**

स्वयंसेवक समुदाय का कोई भी व्यक्ति हो सकता है। वे परिवार से, नागरिक समाज (एनजीओ, अकादमिक और वैज्ञानिक साझेदार, सामाजिक कार्यकर्ता, स्कूल के पूर्व छात्र), सरकारी और निजी सेट अप (एनएसएस, एनसीसी, पीयर एजुकेटर्स) से हो सकते हैं (कबादो, 2021)। स्वयं-सेवक के रूप में कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी भी सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक पृष्ठभूमि का हो, किसी भी लिंग का हो, जो स्वस्थ हो, अच्छा इंसान हो, जिसकी बच्चों की शिक्षा के प्रति अच्छी समझ हो, संवेदनशील हो, उसमें भाषा-कौशल हो, मिलनसार हो, शिक्षा में अनुकूलन या समायोजन के लिए तैयार हो, सीखने-सिखाने की बुनियादी योग्यता रखता हो, भले ही शिक्षण की व्यावसायिक योग्यता न हो और अपने कार्यों के प्रति सजग हो तथा 20 वर्ष से कम या 60 वर्ष से अधिक आयु का न हो। विद्यालय में या घर पर या समुदाय में बच्चों को व्यक्तिगत रूप से या समूह में सिखाने का अनुभव हो तो ज्यादा अच्छा है। स्वयंसेवा का एक और स्वरूप है -



'स्व-सहायता समूह', जहां आम जरूरतों और रुचियों वाले लोगों का एक समूह उनके मुद्दों को हल करने के लिए सहयोग करता है (मन्न-गिडिंग्स, एट अल, 2016)। ऐसे अनौपचारिक संघ अक्सर स्व-शासित होते हैं।

## स्वयं-सेवकों की पहचान

समाज की आवश्यकताओं के प्रति सजग और प्रतिबद्ध व्यक्ति जो सामाजिक कार्य करने के लिए तैयार हो, उन्हें बच्चों के माता-पिता, विद्यालय प्रबंधन समिति, शिक्षकगण, ग्राम पंचायत या स्थानीय निकायों के सदस्य या गैर-सरकारी संगठनों के माध्यम से चिह्नित किया जा सकता है (न्तेकने, 2018, चाइल्ड ट्रेड्स, 2013 और हेंडरसन और मैप, 2002) और संक्षिप्त साक्षात्कार के आधार पर चुना जा सकता है। यह वांछनीय है कि स्वयंसेवक 20-60 वर्ष की आयु सीमा के मध्य का हो, विद्यालयी व्यवस्था के मूलभूत, प्रारंभिक, मध्य और माध्यमिक स्तर के बच्चों की शिक्षा के लिए बुनियादी योग्यता रखता हो भले ही शिक्षण की व्यावसायिक योग्यता न हो। किसी बच्चे के माता-पिता, भाई-बहन और अन्य जो न केवल अपने बच्चों और रिश्तेदारों के बच्चों बल्कि दूसरों को भी शिक्षण-अधिगम में अपनी सेवाएं प्रदान करने के लिए तैयार हों (न्तेकने, 2018, चाइल्ड ट्रेड्स, 2013 और हेंडरसन और मैप, 2002), स्वयं-सेवक हो सकते हैं।

## स्वयं-सेवकों की योग्यता

स्वयं-सेवक शिक्षण अधिगम कार्यदल के सदस्य बनाए जा सकते हैं। बुनियादी स्तर के बच्चों की शिक्षा के लिए 12वीं उत्तीर्ण, और अन्य सभी स्तरों के बच्चों की शिक्षा के लिए स्कूल के विभिन्न विषयों में स्नातक प्राप्त व्यक्तियों को विद्यालय में स्वयं-सेवक के रूप में नियुक्त करने के योग्य माना जा सकता है। विद्यालय, गृह या अन्य शिक्षा केन्द्र में अनुशिक्षक के रूप में पठन-पाठन का अनुभव को वांछनीय योग्यता की तरह लिया जा सकता है।

## स्वयं-सेवकों का चयन

विद्यालय शिक्षा कार्यक्रम में स्वयं-सेवक बनने के लिए आवेदन करने और सहमति देने के लिए वांछित दस्तावेजों के साथ एक आवेदन/सहमति फॉर्म की आवश्यकता हो सकती है। विद्यालयी शिक्षा में स्वयं-सेवकों के रूप में कार्य करने के लिए अपनी सहमति देने के लिए एक निर्धारित आवेदन-पत्र में आवेदन कर सकते हैं। आवेदन-पत्र में आवेदक अपने बारे में संपूर्ण विवरण दे सकता है जैसेकि नाम, आयु, जन्मतिथि, लिंग, भाषा ज्ञान, योग्यता और शिक्षण में अनुभव (यदि कोई हो), पूरा पता, मोबाइल नं., ई-मेल आईडी, क्षेत्र-विषय में रुचि, विशिष्ट रुचि, विशिष्ट प्रतिभाओं का क्षेत्र, जिन विद्यार्थियों के साथ कार्य करना है उसके कक्षा स्तर का विवरण, जहां सेवा करना है उसका विवरण, उनकी उपलब्धता का समय, स्वयं-सेवा की विशिष्ट अवधि, ऑनलाइन/ऑफलाइन शिक्षण-अधिगम में सेवा का विवरण, स्कूल से अपेक्षा इत्यादि। आवश्यक दस्तावेजों में फोटो-आईडी प्रमाण, आवासीय पते का प्रमाण, शैक्षिक योग्यता के प्रमाण-पत्र की प्रतिलिपि, अनुभव प्रमाण-पत्र सम्मिलित किए जा सकते हैं। स्वयं-सेवकों का ऑनलाइन या ऑफलाइन संक्षिप्त साक्षात्कार शिक्षकों और स्कूल प्रबंधन के अधिकारियों के साथ बातचीत कर आयोजित किया जा सकता है। विद्यालय के प्रधानाध्यापक माता-पिता (न्तेकने, 2018 और चाइल्ड ट्रेड्स, 2013), शिक्षकों, स्थानीय निकायों, गैर-सरकारी संगठनों के सदस्यों, ग्राम-पंचायत और स्कूल प्रबंधन समिति के परामर्श से स्वयं-सेवकों के चयन कर सकते हैं (हेंडरसन और मैप, 2002)।

## स्वयं-सेवकों का अन्य हितधारकों के साथ संपर्क एवं समन्वयन

विद्यालय और विद्यालय प्रबंधन समिति स्वयं-सेवकों के साथ संपर्क करने के लिए विद्यालय में ही एक सदस्य का पहचान कर चयन करेगा जो संपर्क व्यक्ति के रूप में स्वयं-सेवकों से संपर्क कर शिक्षकों, माता-पिता और परिवार के सदस्यों के साथ समन्वय स्थापित करेगा (न्तेकने, 2018 और चाइल्ड ट्रेड्स, 2013)। स्वयं-सेवकों के साथ संपर्क व समन्वय स्थापित करने में स्कूल और विद्यालय प्रबंधन समिति से निम्नलिखित कार्य अपेक्षित है:



- स्वयं-सेवकों का यथावत् सम्मान करना, चाहे वे किसी भी पृष्ठभूमि से संबंधित हों (सेंटर फॉर मेंटल हेल्थ इन स्कूल्स, 2013)। उन्हें अपनी शिक्षण-अधिगम दल के सदस्य के रूप में स्वीकार करना और उन पर विश्वास कायम रखना।
- बच्चों की सीखने की विभिन्न आवश्यकताओं पर उन्हें संवेदनशील बनाना, उनसे अपेक्षित भूमिका के बारे में उन्हें उन्मुख करना, उनमें शिक्षण और अधिगम की बुनियादी दक्षताएं विकसित करना, बच्चों, माता-पिता और समुदाय के सदस्यों के साथ संप्रेषण-कौशल विकसित करना (कबादों, 2021, न्तेकने, 2018, चाइल्ड ट्रेड्स, 2013 और हेंडरसन और मैप, 2002) और उन्हें उनकी सेवा को स्वेच्छा से प्रदान करने के लिए तैयार करना।
- स्वयं-सेवकों से संपर्क बनाए रखना, स्वयं-सेवकों, माता-पिता और समुदाय के द्वारा की गई समीक्षाओं को स्वीकार करना (कबादों, 2021, न्तेकने, 2018 और चाइल्ड ट्रेड्स, 2013) और उन्हें हल करने के तरीकों का पता लगाना।
- सौहार्द्रपूर्ण वातावरण, शिक्षकों का खुला व्यवहार, विभिन्न मुद्दों पर चर्चा के लिए उनकी उपलब्धता और उनके निवारण के लिए तत्परता आवश्यक है।
- स्वयं-सेवकों की विशिष्ट रुचियों, कौशलों, प्रतिभाओं और दक्षताओं की पहचान करना, शिक्षण-अधिगम और मूल्यांकन से संबंधित कार्यों का विवरण प्रस्तुत करना (सेंटर फॉर मेंटल हेल्थ इन स्कूल्स, 2013), बच्चों की आवश्यकता व उपलब्धता के अनुसार उन्हें विभिन्न स्थानों जैसेकि खेत-खलिहान, घर, रहवास, कार्यस्थल पर उनकी सुविधा के अनुसार स्वयं-सेवकों को भेजना, विद्यालय व बच्चों की शिक्षा से संबंधित पूरी जानकारी, आवश्यक सहायता, निर्देश, देखरेख और सौंपे गए कार्य की निगरानी करना।
- स्वयं-सेवकों की दैनिक गतिविधियों का विवरण रखना और उनकी सेवाओं में किसी भी प्रकार के परिवर्तन (सेवा की प्रकृति या आवृत्ति) होने पर सूचनाएं देना।
- शिक्षण-अधिगम और संबद्ध क्षेत्रों से संबंधित चुनौतीपूर्ण, रोचक और प्रेरक कार्यों को प्रस्तुत कर स्वयं-सेवकों को सीखने के अवसर प्रदान करना (सेंटर फॉर मेंटल हेल्थ इन स्कूल्स, 2013)।
- स्वयं-सेवकों को बच्चों के साथ काम करने के उनके अनुभवों के बारे में अपने तरीके से रिपोर्ट करने का अनुरोध करना।

### स्वयं-सेवकों से अपेक्षाएं

स्वयं-सेवकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे बच्चों की शिक्षा से संबंधित शिक्षकों, विद्यालयों या विद्यालय प्रबंधन समिति के सदस्यों द्वारा किए गए कार्यों को कक्षा में बच्चों के छोटे समूह में, सामुदायिक केन्द्र पर या बच्चों के घर जाकर पूरा करें। वे व्यक्तिगत रूप से या जोड़े में भी यह कार्य संपन्न कर सकते हैं, परंतु एक स्थान पर दो से अधिक स्वयं-सेवक एक साथ सेवाएं न दें। उन्हें भाषा, गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, योग, कला और शिल्प, संगीत, शारीरिक शिक्षा, पर्यावरण आदि विभिन्न विद्यालयी सम्बद्ध विषयों में ऑनलाइन/ऑफलाइन कार्य सौंपे जा सकते हैं। यह मुख्य रूप से गतिविधियों, परियोजनाओं और असाइनमेंट, चर्चा, ऑडियो/विडियो, सूचना, चित्र व उपलब्ध स्थानीय संसाधनों का उपयोग करके किया जा सकता है।

### गृह-आधारित शिक्षा के लिए स्वयं-सेवकों के लिए उन्मुखीकरण कार्यक्रम का आयोजन करना

स्वयं-सेवकों के लिए विद्यालय और विद्यालय प्रबंधन समिति संबंधित विद्यालयों द्वारा प्रदान किए जाने वाले शिक्षण-अधिगम कार्य की प्रकृति से संबंधित उन्मुखीकरण की योजना बना सकते हैं। उन्मुखीकरण कार्यक्रम की प्रकृति

और आवृत्ति आवश्यकता के अनुसार भिन्न हो सकती है। यह ऑफलाइन या ऑनलाइन या दोनों माध्यमों में स्वयंसेवकों की सुविधानुसार आधे दिन से दो दिनों तक की अवधि तक के लिए अलग-अलग आयोजित किया जा सकता है, चाहे तो दिन के समय दोपहर में या शाम को ही क्यों न आयोजित किया जाए। यह कार्यदिवसों के दौरान या छुट्टियों के दिनों में भी आयोजित किया जा सकता है। यह निरंतर या बीच-बीच में आवश्यकता अनुसार साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक तौर पर या विद्यालय द्वारा स्वयं-सेवकों की सहमति से तय किया जा सकता है। यह स्वयं-सेवकों के छोटे समूह या एक बड़े समूह के लिए आयोजित किया जा सकता है (मन्न-गिडिंग्स, एट अल, 2016)। ऐसे उन्मुखीकरण कार्यक्रमों में बच्चों और माता-पिता के साथ कैसे बातचीत करें (न्तेकने, 2018, चाइल्ड ट्रेड्स, 2013 और हेंडरसन और मैप, 2002), संपर्क स्थापित करें, विश्वास बनाएं, क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए आदि विषयों के साथ-साथ शिक्षण-अधिगम संबंधी कौशल, बुनियादी विषय-सामग्री, मूल्यांकन और स्वयं-सेवा के मानवतावादी दृष्टिकोण पर मुख्यतः ध्यान दिया जाना चाहिए (सेंटर फॉर मेंटल हेल्थ इन स्कूल्स, 2010, हगर एंड ब्रुडने, 2008)। स्कूल के शिक्षक, विद्यालय प्रबंधन समिति, ग्राम-पंचायत के सदस्य, स्थानीय विशेषज्ञ, शिक्षाविद् और गैर-सरकारी संगठन, जो विद्यालयी शिक्षा और सामुदायिक विकास से जुड़े हों, को उन्मुखीकरण कार्यक्रमों में वक्ताओं के तौर पर शामिल किया जा सकता है ताकि स्वयं-सेवक उन्मुख होकर छोटी या लंबी अवधि के लिए सफलतापूर्वक अपनी सेवा दे सकें।

### **स्वयं-सेवकों की गतिविधियों की निगरानी**

स्वयं-सेवकों के कार्यों की निगरानी के कई तरीके हो सकते हैं। स्वयं-सेवक संपर्क व्यक्ति को अपनी उपस्थिति या अनुपस्थिति के बारे में सूचित कर सकते हैं। अन्यथा, बच्चों को अपने स्वयं-सेवक शिक्षकों की प्रतीक्षा करने में निराशा होगी, यदि स्वयं-सेवक बिना किसी सूचना के अनुपस्थित रहेंगे। शिक्षण-अधिगम-मूल्यांकन प्रक्रिया के दौरान स्वयं-सेवक शिक्षकों से अपने अनुभवों को साझा कर सकते हैं, जिससे शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया की गुणवत्ता में सुधार हो। माता-पिता और विद्यालय प्रबंधन समिति के सदस्य स्वयं-सेवकों द्वारा की गई गतिविधियों का ब्यौरा रख सकते हैं और यह ब्यौरा लिखित या डिजिटल (फोटो/ऑडियो/वीडियो) माध्यम में एकत्रित किए जा सकते हैं जिससे समय-समय पर आवश्यकता अनुसार स्वयं-सेवकों की सेवाओं और गतिविधियों का मूल्यांकन किया जा सके।

### **माता-पिता और परिवार के सदस्यों को सूचित करना**

स्वयं-सेवक सहायता कार्यक्रम विद्यालय में लागू करने से पहले इसके बारे में विद्यालय द्वारा, विद्यालय प्रबंधन समिति के सदस्यों के माध्यम से बच्चों के माता-पिता को सूचित (चाइल्ड ट्रेड्स, 2013) किया जाना चाहिए। स्वयं-सेवकों की सहायता लेने से पूर्व ही बच्चों के माता-पिता और परिवार के सदस्यों को स्वयं-सेवकों के बारे में संपूर्ण जानकारी, उनकी कार्य अवधि, शिक्षण-अधिगम की अवधि आदि की जानकारी प्रदान की जानी चाहिए। यदि स्वयं-सेवकों की सेवाओं में कोई बदलाव होता है, उनके द्वारा दी जाने वाली शिक्षण-अधिगम प्रक्रियाओं में कोई बदलाव होता है, तो माता-पिता और परिवार के अन्य सदस्यों को पहले से ही सूचित कर देना चाहिए।

### **बच्चों के घर पर स्वयं-सेवकों की उपस्थिति सुनिश्चित करना**

स्वयं-सेवक बच्चों और समुदाय के लिए सेवा प्रदान कर रहे हैं। स्वयं-सेवकों, बच्चों, माता-पिता और शिक्षकों के बीच का संबंध पारस्परिक सम्मान और आत्मविश्वास पर आधारित होता है। हालांकि, विद्यालय प्रबंधन समिति और माता-पिता (यदि संभव हो) के परामर्श (चाइल्ड ट्रेड्स, 2013) से ही विद्यालय द्वारा स्वयं-सेवकों की सेवा से संबंधित समय-सारणी तैयार की जानी चाहिए जिससे कि संपर्क व्यक्ति, माता-पिता/विद्यालय प्रबंधन समिति के सदस्य, स्वयं-सेवकों की उपस्थिति और उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं की प्रकृति व अवधि का ब्यौरा रख सकेंगे।

### **स्वयं-सेवकों द्वारा गृह-आधारित शिक्षा के कार्यक्रम की योजना**

संपर्क व्यक्ति, शिक्षक, स्वयं-सेवक और माता-पिता (यदि संभव हो) संयुक्त रूप से बच्चे के घर पर शिक्षण-सत्र आयोजित करने से संबंधित समय-सारिणी व संपूर्ण कार्यक्रम की योजना तैयार कर सकते हैं (न्तेकने, 2018 और चाइल्ड ट्रेड्स, 2013)। स्वयं-सेवकों की सेवाएं समय-समय पर या नियमित रूप से निर्धारित समय-सारिणी के अनुसार प्राप्त किया जा सकता है। साप्ताहिक आधार पर स्वयं-सेवकों की नियुक्ति की कार्यसूची तैयार की जा सकती है। एक स्वयं-सेवक को गृह-आधारित शिक्षण के लिए एक दिन में अधिकतम तीन बच्चे दिए जाने चाहिए। गृह-आधारित शिक्षण की कार्ययोजना वैकल्पिक दिनों के आधार पर भी बनाया जा सकता है, इसका मतलब यह है कि जिन बच्चों को आज पढ़ाया गया है उनके घर स्वयं-सेवक परसों जाएंगे। बच्चों, माता-पिता और स्वयं-सेवकों की सुविधा के अनुसार गृह-आधारित शिक्षा के लिए शनिवार या रविवार को भी शामिल किया जा सकता है और उनकी सुविधा को ध्यान में रखते हुए गृह-आधारित शिक्षा का कार्यक्रम निर्धारित किया जा सकता है।

### शिक्षण के समान अवसर, शिक्षण की गुणवत्ता और शिक्षा के साथ-साथ मूल्यांकन सुनिश्चित करना

स्वयं-सेवक व्यक्तिगत रूप से या जोड़े में बच्चों के घर जाकर या सामुदायिक केन्द्र पर या किसी सामूहिक स्थान का चयन कर सकते हैं जहां कुछ बच्चों के छोटे समूह में शिक्षण-अधिगम गतिविधियों का संचालन कर सकते हैं। स्वयं-सेवक विशेष शिक्षकों के मार्गदर्शन और निगरानी में विभिन्न गतिविधियां बच्चों के साथ संचालित कर सकते हैं। इसके लिए स्वयं-सेवकों को वास्तविक शिक्षण से पहले विषय-शिक्षकों के साथ परामर्श करना और उस विषय की विशेष विषय-वस्तु के शिक्षण और अधिगम की प्रक्रिया को समझना आवश्यक है (हगर एंड ब्रुडने, 2008)। स्वयं-सेवक बच्चों के साथ गतिविधियों को करते समय माता-पिता और भाई-बहनों की सहायता ले सकते हैं (चाइल्ड ट्रेड्स, 2013), लेकिन शिक्षण-अधिगम गतिविधियों के दौरान कई वयस्कों की भागीदारी/हस्तक्षेप कभी-कभी शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में व्यवधान उत्पन्न करते हैं। स्वयं-सेवक विषय-वस्तु को सिखाने के लिए तकनीकों का भी सहारा ले सकते हैं। वे वीडियो दिखाने के लिए मोबाइल या लैपटॉप का उपयोग कर सकते हैं या सीखने की विविध आवश्यकताओं वाले बच्चों को सीखने के समान अवसर प्रदान करने के लिए विभिन्न सॉफ्टवेयर या ऐप का प्रयोग कर सकते हैं। लेकिन जो भी शिक्षण-अधिगम सहायक सामग्री (हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर, मूर्त सामग्री, डिजिटल) का उपयोग किया जाना है उन्हें बच्चों के साथ शिक्षण-सत्र के दौरान प्रयोग में लाने से पहले विषय-शिक्षकों के साथ साझा किया जाना चाहिए ताकि उनकी प्रासंगिकता और प्रामाणिकता से आश्वासित हो जाएं। स्वयं-सेवक गतिविधियों का आयोजन करने का विकल्प चुन सकते हैं, जैसेकि शारीरिक गतिविधियां, परियोजना, भूमिका निर्वाह, नृत्य कला, परिचर्चा, कहानी बनाना, कविता, नाटक, कला या किसी भी अन्य नवीन तरीकों से बच्चों को विभिन्न अवधारणाओं को समझा सकते हैं।

बच्चे के द्वारा किए गए कार्य का विवरण- चित्र, ऑडियो, वीडियो आदि के रूप में गतिविधियों का नमूना एकत्र किया जा सकता है, जिससे उनके विकास का आकलन, गतिविधियों का मूल्यांकन और रिपोर्टिंग के लिए दस्तावेज बनाने में मदद मिलेगी। इसके लिए बच्चों के माता-पिता से सहमति ली जानी चाहिए। विषय शिक्षकों के साथ पूर्व परामर्श कर शिक्षण-अधिगम व्यक्तिगत या छोटे समूह में संचालित की जा सकती है जो अधिगम-सम्प्राप्ति को ध्यान में रखकर बनायी गई हो। बच्चों का मूल्यांकन उनके समग्र विकास को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए, न कि मात्र अकादमिक या संज्ञानात्मक क्षेत्रों के विकास पर केन्द्रित होना चाहिए। सीखने की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए एक अनुसूची या रेटिंग-स्केल को स्वयं-सेवकों के साथ संयुक्त रूप से विकसित किया जा सकता है और समय-समय पर संपर्क व्यक्ति या विद्यालय द्वारा प्रयोग कर स्वयं-सेवकों के माध्यम से शिक्षण और अधिगम की इस प्रक्रिया की गुणवत्ता परखने में सहायक होगा।

### गृह-आधारित शिक्षण-अधिगम के लिए सामग्री

गृह-आधारित शिक्षण-अधिगम में बच्चे जो सीखने के अवसरों और भागीदारी से वंचित हैं, ज्यादातर उन बच्चों को स्वयं-सेवक शिक्षण-अधिगम गतिविधियां कराने के लिए नियुक्त किए जाते हैं (कबार्दो, 2021)। स्वयं-सेवकों से यह अपेक्षित होता है कि वे शिक्षकों की निगरानी में बच्चे के घर पर शिक्षण-अधिगम के अपने कार्य का संपादन करेंगे। उन्हें एक पहचान-पत्र साथ में रखना चाहिए जिसे विद्यालय ऑफलाइन या ऑनलाइन माध्यम से जारी कर सकता है। उन्हें पाठ्य-पुस्तक, अभ्यास-पुस्तिका, स्टेशनरी-सामग्री, विषय से संबंधित सामग्री इत्यादि साथ में लेकर जाने वाले की आवश्यकता हो सकती है। विद्यालय गृह-आधारित शिक्षण-अधिगम को सुचारू रूप से संपादित करने के लिए एक किट-बैग तैयार कर स्वयं-सेवकों को दे सकता है।

### **विद्यार्थियों और परिवार के सदस्यों के साथ संपर्क करना**

बच्चे के घर जाने से पहले, स्वयं-सेवकों को विद्यालय के संपर्क व्यक्ति या शिक्षक से संपर्क स्थापित करना चाहिए। शिक्षक द्वारा आसपास के क्षेत्रों में रहने वाले विद्यालय प्रबंधन समिति के सदस्य के माध्यम से माता-पिता और परिवार के सदस्यों से संपर्क कर स्वयं-सेवकों का पूरा विवरण और उसके कार्य की समयावली के बारे में बताया जाना चाहिए।

### **सुरक्षित शिक्षण-अधिगम गतिविधियां सुनिश्चित करना**

शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 के तहत, किसी भी सीखने के माहौल में शारीरिक दंड और मानसिक उत्पीड़न को पूरी तरह से प्रतिबंधित किया गया है, चाहे शिक्षण-अधिगम गतिविधियाँ कक्षाओं में की जा रही हों, खेल के मैदान में हों, डिजिटल प्लेटफॉर्म पर हों, दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से हों या घर पर हों। अतः संपर्क शिक्षक यह आश्चस्त कर ले कि बच्चों की शिक्षण-अधिगम गतिविधियां पूरी तरह से सुरक्षित हों (सेंटर फॉर मेंटल हेल्थ इन स्कूल्स , 2007)। स्वयं-सेवकों का एक सुरक्षित वातावरण में कक्षाएं आयोजित करने हेतु उन्मुखीकरण करना भी आवश्यक है चाहे कक्षाएं विद्यालय में संचालित हो रही हों या घर पर। स्वयं-सेवकों से यह अपेक्षित है कि वे बच्चों और माता-पिता के साथ एक सौहार्द्र-पूर्ण आचरण बनाए रखें। स्वयं-सेवकों से सुरक्षित शिक्षण-अधिगम गतिविधियों के संचालन संबंधी एक लिखित व हस्ताक्षरित घोषणा-प्रपत्र भी लिया जा सकता है। स्वयं-सेवकों को यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि वे बच्चे या उसके परिवार के किसी भी सदस्य के निजी विवरण का खुलासा किसी भी परिस्थिति में न करें। बच्चे की गतिविधियों में संलिप्तता, प्रगति और उपलब्धि के बारे में अवलोकन कर उसकी जानकारी संपर्क शिक्षक, विषय-शिक्षकों और प्राधानाध्यापक के साथ साझा की जानी चाहिए। बच्चों की सुरक्षा के मद्देनजर शिक्षक की भूमिका (सेंटर फॉर मेंटल हेल्थ इन स्कूल्स , 2007) यह है कि वे नियमित रूप से बच्चे के माता-पिता से संपर्क बनाए रखें (चाइल्ड ट्रेड्स, 2013) और कक्षा या घर पर नियुक्त किए गए स्वयं-सेवकों की गतिविधियों और उनके व्यवहारों की निगरानी रखें।

### **स्वयं-सेवकों को प्रोत्साहन**

विद्यालय को चाहिए कि बच्चों की शिक्षा में स्वयं-सेवकों द्वारा किए गए महत्वपूर्ण योगदान को मान्यता दें और उन्हें प्रोत्साहित करें। स्वयं-सेवकों की सामाजिक सेवाओं की अवधि का उल्लेख करते हुए उन्हें प्रशंसा-पत्र से सम्मानित किया जा सकता है। स्वयं-सेवकों की नियुक्ति यदि बच्चों के घर पर हुई है तो ऐसे में उनको उनकी अनुमानित यात्रा-भत्ता के लिए भुगतान भी किया जाना चाहिए। हालांकि स्वयं-सेवक अवैतनिक होते हैं जो अपनी स्वेच्छा से सेवाएं प्रदान करते हैं पर सामाजिक-आर्थिक रूप से वंचित समूहों (राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 और शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009) के बच्चों से सीधे संपर्क कर उनकी शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने में उनके योगदान के लिए प्रशंसा-पत्र और प्रोत्साहन राशि का भुगतान करना उचित है। कुछ स्वयं-सेवक इस तरह की प्रोत्साहन राशि से इनकार कर सकते हैं, जिसका सम्मान किया जाना चाहिए और उनके भावनाओं की कद्र भी की जानी चाहिए। राज्य का शिक्षा-विभाग एक प्रोत्साहन राशि योजना भी बना सकता है या स्वयं-सेवकों के लिए उनके बैंक-खाते में प्रोत्साहन राशि को सीधे हस्तान्तरित भी कर

सकता है। शिक्षा-विभाग को स्वयं-सेवकों को प्रोत्साहित करने के लिए जिला और प्रखंड स्तर के शिक्षा कार्यालयों के साथ-साथ विद्यालयों के साथ भी समन्वय स्थापित करना चाहिए। इस प्रोत्साहन राशि को मजदूरी के रूप में नहीं, बल्कि मानदेय के रूप में या इनाम के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए। ऐसा प्रोत्साहन कार्यक्रम शिक्षण और अधिगम के इस कार्य में उनकी छुपी हुई दक्षताओं, प्रतिभाओं और कौशलों को प्रयोग में लाने के अवसर प्रदान करता है (हगर एंड ब्रुडने, 200४) जिससे अधिक से स्वयं-सेवक शिक्षण-अधिगम गतिविधियों में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित हों।

### निष्कर्ष

शिक्षण-अधिगम कार्यक्रम में स्वयं-सेवकों के सहयोग के बारे में समीक्षा करने के लिए स्वयं-सेवकों से प्रतिक्रिया प्राप्त करने की प्रणाली विकसित की जा सकती है। यदि स्वयं-सेवक निर्धारित अवधि के बीच में अपनी स्वयं-सेवा छोड़ना चाहते हैं तो वे इसका कारण भी बता सकते हैं। उनसे अनुरोध किया जा सकता है कि वे बिना किसी झिझक के अपनी प्रतिक्रिया सहजता से दें। स्वयं-सेवकों की नियुक्ति में और उनकी सेवाओं में सुधार के लिए उनसे सुझाव भी लिए जा सकते हैं। इसी तरह की प्रतिक्रिया माता-पिता, परिवार के सदस्यों और विद्यार्थियों (ऊपरी कक्षाओं वाले) से भी ली जानी चाहिए। इस तरह की प्रतिक्रियाएं स्वयं-सेवक सहयोगी शिक्षण-अधिगम कार्यक्रम के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। माता-पिता और विद्यार्थियों के संतुष्टि-स्तर (हेंडरसन और मैप, 2002) को समझने में भी इससे मदद मिलेगी कि क्या इस तरह के कार्यक्रम को भविष्य में संचालित रखा जाना चाहिए या उसमें आवश्यकतानुसार कुछ सुधार लाना चाहिए या पूर्णतया स्थगित कर देना चाहिए।

### संदर्भ

1. कबादो, जे. आर. (2021). पार्टीसिपेशन ऑफ स्टेकहोल्डर्स एंड स्कूल-बेस्ड मैनेजमेंट, 8, 81-९४.
2. चाइल्ड ट्रेंड्स (2013). पैरेंटल इनवोल्वेमेंट इन स्कूल्स . इंडिकेटरस ऑन चिल्ड्रेन एंड यूथ. वाशिंगटन, डीसी: ऑथर. [http://www.childtrends.org/wp-content/uploads/2012/10/39\\_Parent\\_Involvement\\_In\\_Schools.pdf](http://www.childtrends.org/wp-content/uploads/2012/10/39_Parent_Involvement_In_Schools.pdf)
3. दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम (2016). सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली।
4. न्तेकने, अ. (2018). पैरेंटल इनवोल्वेमेंट इन एजुकेशन. 10.131४0/आरजी.2.2.36330.21४४0.
5. मन्न-गिडिंग्स, सी., ओका, टी., बोर्कमैन, टी., चिकोटो, जी., मत्जत, जे. और मोंटानो-फ्रायर, आर. (2016)। सेल्फ-हेल्प एंड म्यूच्युअल ऐड ग्रुप वालंटियर. इन: द पालग्रेव हैण्डबुक ऑफ वालंटियरिंग, सिविक पार्टीसिपेशन, एंड नॉनप्रॉफिट एसोसिएशनस, पालग्रेव मैकमिलन, लंदन। [https://doi.org/10.1007/978-1-137-26317-9\\_19](https://doi.org/10.1007/978-1-137-26317-9_19)
6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020). शिक्षा मंत्रालय (मानव संसाधन विकास मंत्रालय), भारत सरकार, नयी दिल्ली।
7. शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009)। निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009। शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली।
8. सेंटर फॉर मेंटल हेल्थ इन स्कूल्स (2007). वालंटियर्स टू हेल्प टीचर्स एंड स्कूल एड्रेस बैरियर्स टू लर्निंग. लॉस एंजेलिस, सी ए: ऑथर एट इउसीएलपी. <http://smhp.psych.ucla.edu/pdfdocs/volunteer/volunt.pdf>
9. सेंटर फॉर मेंटल हेल्थ इन स्कूल्स (2010). गाइडिंग एंड सपोर्टिंग वालंटियर्स. लॉस एंजेलिस, ऑथर एट इउसीएलपी. <http://smhp.psych.ucla.edu/pdfdocs/practicenotes/guidingvolunteers.pdf>
10. सेंटर फॉर मेंटल हेल्थ इन स्कूल्स (2013). वालंटियर्स एज इनवैल्युएबल रिसोर्सेज. लॉस एंजेलिस: ऑथर एट इउसीएलपी. <http://smhp.psych.ucla.edu/pdfdocs/practicenotes/voluntresource.pdf>

11. हगर, एम. ए. एंड ब्रुइने, जे. एल. (200४). बैलेंसिंग एक्ट: द चैललेंजेज एंड बेनेफिटस ऑफ़ वालंटियर्स. वाशिंगटन, डीसी: द अर्बन इंस्टिट्यूट. [http://www.urban.org/UploadedPDF/411125\\_balancing\\_act.pdf](http://www.urban.org/UploadedPDF/411125_balancing_act.pdf)
12. हेंडरसन, ए. और मैप, के. (2002). अ न्यू वेव ऑफ़ एविडेंस: द इम्पैक्ट ऑफ़ स्कूल, फैमिली, एंड कम्युनिटी कनेक्शन्स ऑन स्टूडेंट अचीवमेंट. ऑस्टिन, टेक्स: नेशनल सेंटर फॉर फैमिली एंड कम्युनिटी कनेक्शन्स विद स्कूल्स, एस.ई. डी. एल. <http://www.sedl.org/connect/ons/resources/evidence.pdf>



# भारतीय शिक्षा पद्धति के सुदृढीकरण में संस्कृत की भूमिका

डॉ. अजय कुमार मिश्र

असिस्टेंट प्रोफेसर,

केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, दिल्ली- 110058

ई-मेल :ajaykmishracsu@gmail.com

**शोधसार :-** यह बहुत ही हर्ष का विषय है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020 में संस्कृत के साथ-साथ भारत की अन्य भारतीय भाषाओं को भी महत्त्व दिया गया है। इससे भारतीय भाषाओं की महत्ता तो बढ़ेगी ही, साथ ही साथ भारत की मूल सांस्कृतिक पहचान का सार्थक अन्वेषण भी किया जा सकता है। अनुसंधान के क्षेत्र में संस्कृत की महनीय भूमिका हो सकती है। इसका कारण यह भी है कि भाषा अपने देश, समाज तथा भूगोल का अन्तः साक्ष्य भी होती है। संस्कृत तो भाषा के साथ भारत की सांस्कृतिक भाषा भी है। अतः प्रस्तुत आलेख भी अपना विशेष महत्त्व रखता है।

भाषा किसी भी देश की संस्कृति का अन्तः साक्ष्य होती है। संस्कृत को भारतीय भाषा की जननी के रूप में भी माना जाता है। अतः कुछ साल पहले संस्कृत भाषा बनाम जर्मन की भाषिक राजनीति में संस्कृत का साख बचा ले जाना वास्तव में भारतीयता की पहचान को सुरक्षित रखने में एक अहम कदम माना जाना चाहिए। इसका बहुत बड़ा कारण यह भी है कि 1994 ई. में देश के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी एक महत्वपूर्ण फैसला देते हुए लिखा है कि भारतीय विरासत को सुरक्षित रखने के लिए संस्कृत का पठन- पाठन आवश्यक है। यहाँ इसका भी ध्यान रहे कि देश की संस्कृति की भाषिक ऊर्जागृह की नर्सरी को इसकी पारंपरिक गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति को भी आधुनिक शिक्षा की धाराओं से जोड़े जाने की आवश्यकता है। ध्यातव्य है कि अंग्रेजों ने भारतीय शिक्षा पद्धति को आधुनिक तथा पारंपरिक धाराओं में इसलिए बांटा कि संस्कृत जो भारतीय संस्कृति की संयोजक कड़ी के रूप में सदा रीढ़ की हड्डी बनी रही है, उसकी कमर तोड़ी जा सके क्योंकि किसी संस्कृति को तहस नहस करने के लिए उस पर सांस्कृतिक आक्रमण आवश्यक हो जाता है। भारतीय भाषाओं के आपसी मेल- मिलाप पर औपनिवेशिक प्रहार तथा संस्कृत अध्ययन- अध्यापन को पारंपरिक तथा आधुनिक धाराओं के दो खेमों में बाँट जाने के बड़े ही बुरे प्रभाव को लेकर लब्धप्रतिष्ठ कवि - समीक्षक प्रो राधावल्लभ त्रिपाठी ने भी घोर चिंता जताई है। साथ ही साथ केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, दिल्ली के जाने माने कुलपति प्रो श्रीनिवास वरखेड़ी का भी विचार है कि “राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020 में भारतीय ज्ञान परंपरा को ठीक ढंग से प्रकाश में लाने के लिए जो बात उठायी गयी है उसमें भारतीय गुरुकुल शिक्षण व्यवस्था मील का पत्थर साबित हो सकती है। अतः भाषा की इस सांस्कृतिक कूटनीति को भारतीय मूल के शिक्षाविदों तथा इतिहासकारों को समझना होगा। इसी पाश्चात्य प्रभाव के कारण हम अभी तक भारतीय शिक्षा व्यवस्था में संस्कृत वाङ्मय के निहित ज्ञान- विज्ञान, जीवन मूल्य और उसके प्रबंधन को सम्यक् रूप से समाहित नहीं कर सके हैं। एनईपी-2020 के माध्यम से न केवल भारतीय भाषाओं अपितु विशेष कर इनकी समन्वित कड़ी से राष्ट्र निर्माण की अहम भूमिका में संस्कृत के महत्त्व को उजागर किया जा सकता है”। लेकिन आज शिक्षा जगत में व्यावसायिक मानसिकता अपना सिर अधिक उठा रही है। इस बात का भी ध्यान रहे कि भारतीय भाषा प्रौद्योगिकी में संस्कृत का महत्त्व किसी भी भारतीय भाषा से कमतर नहीं आंका जाना चाहिए। संस्कृत न



केवल अपने दार्शनिक तथा मानवीय तात्त्विक विमर्श के कारण भारतीय अस्मिता के लिए जीवनदायिनी रही है अपितु वैश्विक वैज्ञानिक संगठन नासा ने भी संस्कृत को कम्प्यूटर के लिए सर्वाधिक वैज्ञानिक भाषा के रूप में स्वीकार किया है। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि संस्कृत के संगणाकीय भाषाविज्ञान के वैश्विक विद्वान तथा अध्यक्ष, सीएसटीटी, भारत सरकार प्रो गिरीश नाथ झा ने नब्बे के दशक में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली के अपने संस्कृत विभाग से इस संगणकजन्य बौद्धिक तथा वैज्ञानिक आन्दोलन की जो ठोस तथा दूरगामी नींव डाली। इस सार्थक पहल भारतीय संगणक के नवाचार में रामबाण की तरह काम किया। इसी कारण कोरोना जैसे वैश्विक महामारी के दौरान ऐसे ही सार्थक कदमों के कारण विशेष कर शैक्षणिक संस्थानों में आभासी माध्यमों से पठन-पाठन का वातावरण बनाने तथा शैक्षणिक क्रिया-कलापों के उपक्रमों से राष्ट्र निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी गयी है।

यह नहीं भूलना चाहिए कि दुनिया के प्राचीनतम ग्रंथ वेद और इसके साहित्य में शिक्षा का लक्ष्य बौद्धिक परंपरा को समृद्ध, व्यवहारिक तथा रोजगारोन्मुख करने के अतिरिक्त समकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों को भी जीवन प्रबंधन में पिरोना था। इसमें सार्वभौमिक वैश्विक बन्धुत्व तथा मानवता के भाव का बड़ा ही महत्त्व था। महर्षि अरविंद ने भी वेदांत दर्शन के आलोक में 'महामानव' (सुपरमैन) की भावना की जो परिकल्पना की थी, वह भावना आज जीवन के संत्रास, तनाव, सांप्रदायिक विद्वेष तथा सामाजिक रिश्तों पर जमते बर्फ के परतों से छुटकारा पाने में बड़ी प्रभावी हो सकती है। मानव समाज की सुख-शान्ति तथा उत्तरोत्तर कालजयी चहुंमुखी उन्नति के लिए वैदिक ऋषियों ने विश्व को जिस सहकारी तथा सहअस्तित्व रूपी घोंसला की कल्पना की थी, वह उदात्त अकूत शक्ति अन्यत्र नहीं, अपितु संस्कृत और भारत में ही है। अतः आज विश्व जो अनेक तनावों, आतंकवाद और उनके कारण पलायन तथा आपसी घृणा-द्वेष से जकड़ा जा रहा है, उसके समाधान में भी संस्कृत की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। इस चर्चा के प्रसंग में 'व्हाइट टेररिज्म' की भी चर्चा की जा सकती है जिस के तहत विकसित देश विकासशील देशों में अपने विस्तारवादी सैनिक ठिकाने बना रहे हैं। संस्कृत की विश्वबन्धुत्व की भावना से सामाजिक जीवन की विध्वंसक मानसिकता को भी कम किया जा सकता है। साथ ही विशेष कर वेदों, उपनिषदों और पुराणों में पर्यावरण संतुलन के दर्शन भी न केवल भारत अपितु विश्व संस्कृति के पुनर्निर्माण में बहुत ही प्रभावी ढंग से सार्थक सिद्ध हों। यही कारण है कि आज समूची दुनिया की नज़र संस्कृत की ओर फिर से लगी है। महाभारत के जाने-माने भाषा वैज्ञानिक प्रो. राम करण शर्मा ने राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय), दिल्ली के संस्कृत सप्ताह के अवसर पर सही कहा था कि संस्कृत अपने वैश्विक मांग के कारण जीवंत है। अतः संस्कृत न केवल भारतीय अपितु पूरे वैश्विक सामूहिक जीवन के लिए उपयोगी है।

वैदिक साहित्य में जो स्वाध्याय, मनन, निध्यासन तथा साक्षात्कार आदि की चर्चा की गई है। वह आज की शिक्षण प्रशिक्षण प्रविधि (डुइंग बाई लर्निंग) के रूप में भी मानी जा सकती है। शिक्षा की इस मूल व्यावहारिक ज्ञान का सपना महात्मा गांधी जी ने भी देखा था, लेकिन इसको अमली जामा नहीं पहनाया जा सका। इसका कारण यह भी रहा कि हम अपनी शिक्षा व्यवस्था को विदेशों से ही आयात करते आए हैं। वस्तुतः भारतीय चिन्तन - विमर्श की मौलिकता के अन्वेषण तथा उसकी पुनर्स्थापना में राष्ट्रीय शिक्षा नीति -2020 में संस्कृत के माध्यम से मेकाले निर्मित औपनिवेशिक भारत के विरुद्ध एक बड़ा ही प्रभावी कार्य किया जा सकता है। आज भी विदेशी विद्वान अपने तथा कथित श्रेष्ठता के सिद्धांत को भूल नहीं सके हैं।

गौरतलब है कि भारतीय शिक्षा प्रणाली में प्राचीन काल से प्रखर राष्ट्रवादी तथा पर्यावरण संतुलन आदि की जो बात की गयी है, उसे समुचित ढंग से पाठ्यक्रमों में लागू किया जाना चाहिए। सच तो यह है कि वैदिक मंत्र आज भी दुनिया के लिए अन्वेषण का विषय बने हुए है। इन सूक्तों / अनुष्ठानों में जिन नाट्य तत्त्वों के प्रयोग विधान हैं, वे भारतीय जन-जीवन में आज भी जीवंत हैं। जब शिक्षा पद्धति में संस्कृत के मूल पाठों के साथ अध्ययन-अध्यापन किया जाएगा, तभी भारतीय

विद्या की मौलिकता तथा श्रेष्ठता की पुनर्स्थापना की जा सकती है। आधुनिक युग में जल विज्ञान या अन्तरिक्ष विज्ञान की बातें तो हम करते हैं। लेकिन शिक्षा पद्धति में “ वराहमिहिर संहिता ” की चर्चा नहीं करते जो बादलों के रंगों के आधार पर ही वर्षा तथा मौसम आदि का बड़ा सटीक पूर्वानुमान करता है। जल तथा पर्यावरण संतुलन आज जीवन रेखा से जुड़े ज्वलंत सवाल हैं। इसके लिए वेद तथा पुराण साहित्य मानो आचार्य मम्मट के ' कांतासम्मित ' रूपी उपदेश हैं। संस्कृत के माध्यम से भारतीय शिक्षा पद्धति में खेतिहर समाज को भी जोड़ना आवश्यक जान पड़ता है जिससे भारतीय कृषिकर्म और उनके विज्ञान को और अच्छे ढंग से बढ़ावा दिया जा सकता है।

उसी प्रकार कौटिल्य का अर्थशास्त्र प्रशासन तथा राज्य प्रबंधन का जो ठोस सुझाव देता है, उसे भी भारतीय संविधान तथा न्यायपालिका में भी शिक्षा व्यवस्था की ही तरह लागू किया। भारतीय शिक्षा व्यवस्था में कौटिल्य के इन दर्शनों के साथ भारतीय धर्मशास्त्रों की मान्यताओं को भी शैक्षणिक व्यवस्थाओं से जोड़ने का पहल समय की माँग है। ध्यातव्य है कि भारतीय न्यायालयों ने ऐसे अनेक महत्त्वपूर्ण फैसले लेने में भारतीय मीमांसा तथा न्याय दर्शनों को भी आधार बनाया है। वेदांत विद्या के जाने माने चिंतक तथा भारतीय लोक प्रशासन के पूर्व लब्धप्रतिष्ठ प्रशासक श्री किरिट जोशी ने भी भारतीय शिक्षा पद्धति में वैदिक तत्त्वों के महत्त्व पर जो प्रकाश डाला है उससे भी भारतीयता के सुदृढीकरण में संस्कृत के महत्त्व पर बड़ा ही व्यापक प्रकाश पड़ता है- “ It is present humanity is to be prepared for the next stage of evolution, and if for that purpose a new educational program is to be envisaged, as we must, then the knowledge contained in the veda and in the vedic system of education will have to be viewed as directly relevant to our most important contemporary need.( Glimpse of Vedic Literature, page 214)। मुझे यह भी लगता है कि श्री जोशी के इस वक्तव्य में एनईपी-2020 के दर्शन के हिसाब से इसमें संस्कृत की आत्मा की आवाज़ भी स्पंदित है। साथ ही साथ भारतीय शिक्षा व्यवस्था में संस्कृत की कितनी संस्टेनेवल (कालजयी) उपादेयता है उसकी भी संपुष्टि होती है।

यहाँ एक और तथ्य साफ़ कर देना उचित लगता है कि आज पूरी दुनिया में ‘डेस्पोरिक स्टडीज़’ की एक नवोन्मेषी विधा की जो शुरूआत हुई है, उसमें भारत की तरफ़ से भी दुनिया के लिए एक अहम भूमिका हो सकती है। भारतवर्ष के प्राचीन कालीन बृहत्तर भारत के नज़रिए से जावा, सुमात्रा, थाइलैंड तथा फीजी आदि देश हमारे सांस्कृतिक धरोहर अभिन्न तथा अमिट अंग रहे हैं, विशेष कर एशिया महादेश में आने वाले अधिसंख्य देश जो आज भी कई मायने में भारतीय संस्कृति की पहचान को लेकर अपने- अपने देशों में जी रहे हैं। उनके इस सांस्कृतिक नैकट्य तथा सामजस्य की अटूट कड़ी के रूप में संस्कृत भाषा तथा इसके साहित्य की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण रही है। अतः भारतीय शिक्षा के सुदृढीकरण, इसके सांस्कृतिक तथा एन .आई .आर .के जरिए “ आर्थिक बुम” को भी लाने में संस्कृत की बड़ी ही महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है। लेकिन इस संभावना को लेकर न ही संस्कृत विद्वानों और न ही भारतीय योजनाओं के नीति निर्देशकों का खास ध्यान गया है। यह तथ्य अलग है कि अब इन क्षेत्रों पर थोड़ा ध्यान जरूर जा रहा है। इसी नज़रिए से एन.आई.आर. को भारतीय धरोहर से रुबरु कराने के लिए अनेक मसौदा भी तैयार किए जा रहे हैं।

बाबा भीमराव अम्बेडकर द्वारा भारत की भाषा संस्कृत को बनाए जाने की वकालत तथा इससे संबंधित समिति के एक सदस्य श्री मौर्या के द्वारा इसका विरोध किया जाना, वाकई में एक बहुत बड़ी भूल थी जिसका एहसास मौर्या जी को भी बाद में स्वयं हुआ था। काश !बाबा साहब की यह बात उस समय मान ली गयी होती, तो अंग्रेजों द्वारा भाषा के नाम पर बनायी गयी खाई को आज पाटना थोड़ा आसान हो जाता। इसका कारण यह भी है कि अपने देश की अधिसंख्य भाषाओं के बेहिसाब शब्द सम्पदा तो संस्कृत साहित्य में ही तो है। यह तथ्य अलग है कि संस्कृत भाषा ने भी आज भारतीय भाषाओं के सहस्र शब्दों को पचा कर अपनी भाषिक सहकारी संस्कृति तथा प्रवाह के माध्यम से अपनी पूरी

जीवंतता की पुष्टि कर रही है। यहाँ शेल्डॉन पॉलक का भारतीय भाषा तथा संस्कृति के खिलाफ भीतरघाती सांस्कृतिक आक्रमण को भी समझने की आवश्यकता है। इसने विजयनगर साम्राज्य तथा दक्षिण और कश्मीर के कुछ अपने चुनिंदा सर्वेक्षण के आधार पर संस्कृत को 'मृतभाषा' के रूप में घोषित किया है। दुर्भाग्यवश, कुछ साल पहले संस्कृत-जर्मन भाषाओं के विवाद के नाम पर भारतीय मूल के कुछ विद्वानों ने भी संस्कृत विरोधी इस मानसिकता को भाषा वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर सह दिया था। यह सोचने की बात है कि जो भाषा अपनी मृत्यु के कगार पर नहीं, अपितु मौत के पेट में चली जाए, तो उसको भारतीय शिक्षा का सुदृढ़ीकरण में आखिर क्या भूमिका हो सकती है? लेकिन इन मिथकों तथा भ्रान्तियों से सर्वथा सावधान रहना ही होगा। अतः सांस्कृतिक आक्रमण की इस कूटनीति को मुँहतोड़ जवाब देने के लिए यह अनिवार्य तथा युगीन आवश्यकता है कि भारतीय शिक्षा पद्धति में मौलिकता तथा स्वदेशी भाव को और पुष्कल तथा विस्तृत बनाने के लिए संस्कृत भाषा पर थोड़ा अधिक ध्यान दिया जाय। अन्यथा, पॉलोक की तरह ही "मोर्डनीटी ऑफ़ संस्कृत" (साइमन ज्वाय; यू.एस.ए., 2011ई.) जैसी किताबें भी संस्कृत के खिलाफ़ तथाकथित आवाज़ उठाती रहेंगी। विख्यात मनीषी अरविंद की तरह ही गुरुदेव टैगोर भारतीय शिक्षा में वैदिक विद्या तथा बौद्ध अध्ययन की महत्ता को लेकर जो बात कही है, उसे भी भारतीय शिक्षा के सुदृढ़ीकरण में उसकी भूमिका के रूप में समझने समझाने की विशेष आवश्यकता है - "In these forests, thought there was human society, there was enough of open space, of aloofness, there was no jostling. Still this aloofness did not produce inertia in the Indian mind, rather it rendered it all the brighter. It is the ages of India, the vedic and Buddhist (Ancient Indian Education Brahmanical and Buddhist, prologue, page XXXV, Radha Kumar Mookerji)। इसी परिप्रेक्ष्य में ही इस हकीकत को भी स्वीकार किया जाना चाहिए कि भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कलाम साहब ने ("कलाम पुसेस फॉर बिल्डिंग स्किल सेट" ; 'मेल टुडे', नई दिल्ली, 24 अगस्त, 2012ई.) के "मेल टुडे एडुकेशन कॉन्क्लेब में "ग्लोबल ह्यूमन रीसोर्स कैडर फॉर द नेशन" की जो बात उठायी है, उससे भी भारतीय शिक्षा के सुदृढ़ीकरण के लिए संस्कृत की महत्ता की पुष्टि होती है क्योंकि वैश्विक मानवता की कल्पना के व्यावहारिक बहुआयामी उदात्त भावना संस्कृत वाङ्मय में कुछ अधिक प्रभावी दिखती है। तभी तो वेद भी - "वसुधैव कुटुम्बकम्" की बात करती है। आज ग्लोबलाइजेशन का खतरनाक चेहरा दिख रहा है, उसके बुरे प्रभाव से अपनी संस्कृति की मौलिकता को भी बचाने की खास ज़रूरत जान पड़ती है क्योंकि ग्लोबल विलेज तथा आर्थिक उदारीकरण की आड़ में शक्तिशाली विकसित मूलकों द्वारा विकासशील तथा कमजोर देशों का आर्थिक दोहन के साथ साथ उनकी संस्कृति को भी निगल कर समाप्त करने की साज़िश चल रही है। आज कुछ निजी विश्वविद्यालयों को जो फलने-फूलने का खास मौका दिया जा रहा है, उनके व्यावसायिक शिक्षा आधारित व्यवस्था के प्रबंधन में भी संस्कृत अपनी अहम भूमिका निभा सकती है।

आम तौर पर यही देखा जाता है कि शक्तिशाली देश अपनी भाषा के जरिए अपनी संस्कृति को हमेशा महफूज़ रखते हैं और जब किसी अन्य देश के छात्र-छात्रा उनके मुल्कों के शिक्षा संस्थानों में पढ़ने जाते हैं, तो वे देश पहले उन्हें अपने मुल्क की भाषा की शुरुआती तथा व्यावहारिक तालिम देते हैं। आज चीन में हिंदी भाषा के प्रति बढ़ते सम्मान के पीछे एक बहुत बड़ा सबब यह भी है कि वे चाहते हैं कि उनका व्यापार भारत में भी भरपूर फले-फूले। अतः भारतीय शिक्षा में भारतीय भाषाओं के साथ साथ इस देश की सांस्कृतिक भाषा संस्कृत को भी उचित स्थान मिलना चाहिए। इस प्रकार हम पाते हैं कि शिक्षा पद्धति भी देश की बौद्धिक धरोहर होती है जिसमें वहाँ की पहचान चमकती है। लेकिन इसके दर्पण रुपी पहचान पर बाहरी (विदेशी) प्रभाव इसकी अस्मिता को धुँधला भी बना देता है। यही कारण है कि संस्कृत में लिखित ज्ञान-विज्ञान को समकालीन संदर्भों में जाँच-पड़ताल कर अपने मुल्क की शिक्षा व्यवस्था तथा पाठ्यक्रम में भी इसे समुचित ढंग से समायोजित किया जाय। इन दिनों आई.सी.एच.आर. तथा एनसीईआरटी, दिल्ली में ज़रूर कुछ सार्थक

कदम उठाए हैं जिसमें संस्कृत के मूल पाठों के आधार पर भारतीय इतिहास लेखन के पुनर्पाठ पर विशेष बल दिया गया है । विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान भी ऐसी मौलिकता की स्थापना के लिए कटिबद्ध है । लेकिन इसका भी ध्यान रहे कि भारतीय दर्शन- चिंतन को यहाँ की आस्तिक तथा नास्तिक दोनों परंपराओं ने समय- समय पर तराश कर इसकी बौद्धिक चमक को हमेशा बरकरार रखा है । अतः डिस्कोर्स की इस बौद्धिक परंपरा के साथ भारतीयता की तलाश में संस्कृत को उचित स्थान मिलना चाहिए, तभी हम भारतीय शिक्षा पर पड़े प्रभाव से थोड़ा उन्मुक्त हो सकते हैं ।

संस्कृत वाङ्मय के विविध विधाओं में रोजगारों के अकूत संभावनाएँ मौजूद हैं । लेकिन संस्कृत जैसी समृद्ध भाषा और इसके साहित्य को पारंपरिक अध्ययन के साथ साथ इसको आज के ज्ञान- विज्ञान से जुड़े रोजगार के अवसरों से भी जोड़ना होगा । इसके लिए भारतीय मूल की तलाश के लिए भगिनि भाषाओं वाला संस्कृत के लिए एक स्वतंत्र राष्ट्रीय शोध संस्थान की स्थापना की जाए, जिसमें परंपरा के साथ साथ आधुनिक ज्ञान- विज्ञान को अध्ययन अध्यापन का समन्वित वातायन खुल सके । इसका कारण यह भी है कि संस्कृत को सिर्फ विद्यालय या विश्वविद्यालय में लागू कर देने से ही इसका भला नही हो पाएगा और न यह भारतीय शिक्षा पद्धति के सुदृढीकरण में अपनी पूरी भूमिका ही निभा सकती है । इस दिशा में केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, दिल्ली अपनी अहम भूमिका निभा सकती है क्योंकि देश के अधिसंख्य राज्यों में इसके परिसरों तथा शैक्षणिक संस्थानों के होने के कारण यह दुनिया में सबसे बड़ा संस्कृत का विश्वविद्यालय है । अतः संस्कृत को इस विश्वविद्यालय के माध्यम से भी राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति में लागू और अधिक प्रभावी ढंग से किया जा सकता है ।

यह तथ्य बड़ा चौंकाने वाला है कि प्राचीन काल में नालंदा, विक्रमशिला या तक्षशिला विश्वविद्यालयों में भारतीय पारंपरिक संस्कृत शास्त्र/ विद्या को पढ़ने के लिए विदेशी विद्वान लालायित रहते थे । प्राचीन काल में सच में अधिसंख्य शिक्षक ' गुरु ' ही हुआ करते थे । लेकिन आज तो अधिकांश ' गुरु ' तथा ' आचार्य ' तो ' उपाध्याय ' मात्र बन कर रह गए हैं क्योंकि प्राचीन काल में जो शिक्षक सिर्फ अर्थ लाभ के लिए ही पढ़ाते थे, उन्हें ही ' उपाध्याय ' कहा जाता था । ' गुरु 'का उत्तरदायित्व तो अपने शिष्यों के प्रति गर्भाधान संस्कार से लेकर उपनयन संस्कार तक का मार्गदर्शन देना परम कर्तव्य होता था जिसमें धन हरगिज आड़े नहीं आता था । ऐसे ही ' गुरु ' की भी अनिवार्य आवश्यकता है अपने देश की शैक्षणिक स्तर को उत्तरोत्तर गुणवत्तापूर्ण बनाने के लिए, जबकि आज इस विद्या को अपने ही मुल्क में जायज़ स्थान नही मिल पा रहा है । संस्कृत का चिन्तन ही समाज, देश तथा शैक्षणिक संस्थानों में ' गुरु ' बनाने की अकूत क्षमता रखती है । इसलिए भी भारतीय शिक्षा व्यवस्था के सुदृढीकरण में संस्कृत की अद्भुत क्षमता तथा भूमिका है ।

संस्कृत के कुछ छद्म दिग्गजों को भी आत्म- निरीक्षण तथा संस्कृत के नाम पर अपने आप को बेचे जाने की घातक प्रवृत्ति को तिलांजली देकर, संस्कृत भाषा के माध्यम से भारतीय शिक्षा पद्धति को मज़बूत बनाने के अनुष्ठान में लगना पड़ेगा । तभी संस्कृत भाषा में ग्रंथित नाना ज्ञानपरक संपदाओं को मानव संसाधन तथा प्रबंधन में सम्यक् रूप से सदुपयोग में लगाया जा सकता है । इसके लिए दादा भाई नौरोजी ने जिस “ ब्रेन ऑफ ड्रेन” की बात ब्रितानी हुकूमत के समय उठायी थी, उसका दूसरा रूप आज भी देखा जा सकता है- अपने मुल्क में । तभी तो, शास्त्र, विज्ञान तथा तकनीक से जुड़े युवा प्रतिभाओं को अपने देश में ही अधिकाधिक प्रोत्साहित कर के संस्कृत साहित्य के अनमोल ज्ञान- विज्ञान को उजागर करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए । ताकि, फिर से एक नए भारत की स्थापना हो सके । तभी तो पूर्व राष्ट्रपति डॉ. कलाम साहब भी लिखते हैं-“ If teacher and researchers are good here, no one will go abroad. I never felt the need to outside India as I had an excellent teacher.”(Mail today, 24th August 2012, Delhi) । अतः संस्कृत भाषा तथा साहित्य को विशेष ध्यान में रखते हुए भारतीय शिक्षा प्रणाली को पुनर्निर्मित करने की जरूरत है । इसीलिए प्रस्तुत आलेख में संस्कृत के मार्फत वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में गुणवत्ता का और कैसे इज़ाफ़ा हो

सकता है, उन्हें थोड़ा विश्लेषित करने का भरसक प्रयास किया है। भारतीय साहित्य के इतिहासकार प्रो. सुधीर चंद्र ने भी सही लिखा है-“ .....Our nineteenth century forebears the dichotomy of west, with its civilization mission, and an east that needed to be in Indian minds, the idea of traditional India.(Oppressive Present, Literature and Social Consciousness in Colonial India, page 5.)

अंततः यही कहा जा सकता है कि भारतीय भाषाओं की रक्षा संस्कृत तथा संस्कृति की भी सुरक्षा है। लेकिन इसका भी ध्यान रहे कि संस्कृत सुरक्षित रहेगी, तभी तो भारतीयता की मौलिकता, उसका पारंपरिक ज्ञान- विज्ञान तथा अन्य भारतीय- भाषाओं को भी पर्याप्त बल मिलेगा। लेकिन संस्कृत को भी अपनी सहकारी प्रवृत्ति को बनाए रखना होगा। अतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2022 जो भारतीय भाषाओं के लिए अवसर के नए वातायन उन्मीलित करती है। उस दृष्टि से भारतीय शिक्षा के मसौदा तैयार किया जाना चाहिए। इससे भारतीय शिक्षा तथा यहां की विविध व्यवस्थाओं पर औपनिवेशिक प्रभाव को कम करने की दिशा में संस्कृत भाषा तथा इसके साहित्य की भी महत्त्व की भूमिका सिद्ध होगी। संस्कृत भाषा के जरिए भारतीय शिक्षा पद्धति को मूल भारतीयता के कैनवास पर थोड़ा अधिक नजदीक से देखा जा सकता है।

# कृषिविज्ञान केंद्र के शैक्षिक कार्यक्रमों में महिलाओं की सहभागिता

गौरव रानी

शिक्षा विभाग, बनस्थली विद्यापीठ, बनस्थली राजस्थान

ई-मेल :gaurav.banasthali@gmail.com

## भूमिका

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है जो व्यक्ति के जीवन को उद्देश्यपरक बनाने तथा सामाजिक कल्याण में सहयोग देने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। यह व्यक्ति और समाज में चेतना जाग्रत कर उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि करने का महत्वपूर्ण साधन भी है। शिक्षा न केवल जड़ को चैतन्य बनाती है अपितु व्यक्ति के दिव्य अंश को उद्भासित भी करती है। यदि वास्तव में शिक्षा द्वारा परिवर्तन लाना है तो शिक्षा का लाभ पुरुषों के बराबर महिलाओं को भी देना होगा।

20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में समाज सुधारकों तथा चिंतकों ने यह महसूस किया कि वर्तमान समाज में फैली बुराईयों से संघर्ष करने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि भारतीय लड़कियों को भी शिक्षा की ज्योति से अवलोकित किया जाए। महिलाओं को सृष्टि का आधार माना गया है। महिला पुरुष से किसी भी दृष्टि में हेय नहीं है, वह सदैव उनकी सहभागिनी रही है किन्तु दुःख की बात है कि इतना सब होने पर भी लड़कियों की शिक्षा की उपेक्षा होती रही है। यदि देश की आर्थिक सामाजिक एवं राजनैतिक लोकतंत्र की जड़े मजबूत करनी है तो बालिका या महिला शिक्षा का उन्नयन महत्वपूर्ण है।

जनगणन रिपोर्ट 2003 के अनुसार स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से जहाँ भारत में पुरुषों की साक्षरता 27.16 प्रतिशत और महिला साक्षरता मात्र 8.86 प्रतिशत थी। वहीं 2001 की जनगणना के अनुसार पुरुषों की साक्षरता 75.85 प्रतिशत और महिला साक्षरता 54.16 प्रतिशत हो गयी। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार पुरुषों की साक्षरता 82.14 तथा महिला साक्षरता 65.46 प्रतिशत हो गयी है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा नियोजन हेतु गठित समितियों ने महिला शिक्षा हेतु प्रयासों की अनुशासन की है। पंचवर्षीय योजनाओं में इस हेतु विशिष्ट प्रावधान घोषित किए गए। इन सबके अतिरिक्त महिला और उनकी सशक्तिकरण हेतु कतिपय प्रयास इस प्रकार हैं - स्वशक्ति परियोजना, स्वावलम्बन, शिक्षा मित्र योजना, महिलाओं के लिए प्रशिक्षण एवं रोजगार कार्यक्रम को समर्थन, किसान मित्र योजना, महिला डेयरी योजना, शिक्षा आपके द्वार योजना आदि।

सरकारी और गैर सरकारी सभी प्रकार के प्रयासों के बावजूद वर्तमान में महिलाओं की स्थिति ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुषों की तुलना में अत्यधिक पिछड़ी हुई है। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए ग्रामीण क्षेत्र की अशिक्षित महिलाओं के विकास के लिए सरकारी और गैर सरकारी संगठनों द्वारा प्रयास किये जा रहे हैं। इन प्रयासों में से “कृषि विज्ञान केन्द्र” के प्रयास भी महत्वपूर्ण है। यह केन्द्र तथा राज्य सरकार एवं प्वात् के साथ गैर सरकारी संगठन एवं निजी शैक्षिक संस्थाओं के पारस्परिक सहयोग से संचालित किये जा रहे हैं।

इन कार्यक्रमों में न केवल प्रौढ़ कृषकों की सहभागिता अपेक्षित है वरन् युवा कृषक और कृषि कार्य एवं घर परिवार के दायित्वों का निर्वहन करने वाली महिला की सहभागिता भी उतनी ही अनिवार्य है, कतिपय कार्यक्रम महिला एवं पुरुष



दोनों के लिए सामान्य होते हैं। चूंकि यह कार्यक्रम स्थानीय आवश्यकता तथा उपलब्ध साधनों को ध्यान में रखते हुए नियोजित किये जाते हैं। अतः इसमें महिलाओं की अधिकतम सहभागिता की अपेक्षा की जाती है।

### समस्या का औचित्य-

इक्कीसवीं सदी में नगरीय व महानगरीय परिदृश्य ने महिला शिक्षा हेतु उचित वातावरण प्रदान किया है। विद्यालयों, महाविद्यालयों में चिकित्सा, अभियांत्रिकी एवं तकनीकी क्षेत्रों में शिक्षा अर्जित कर महिलाएं पुरुषों के समकक्ष सभी व्यवसायों में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है। यहाँ तक कि विभिन्न व्यावसायों, उद्योगों कॉर्पोरेट क्षेत्रों में भी सारे मिथकों को तोड़कर उसने सफलता के झंडे गाड़े हैं। वैज्ञानिक शोध, सेना, पर्वतारोहण, आंतरिक विज्ञान आदि साहसिक क्षेत्रों में भी महिला शक्ति का वर्चस्व स्थापित हुआ। तीनों सेनाओं और पुलिस विभाग में उच्च अधिकारी बनकर महिलाओं ने अपनी योग्यता सिद्ध की है उनके दृढ़ इरादे व कठोर परिश्रम ने नारी शक्ति का अहसास कराया है। परन्तु आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में अशिक्षित महिलाओं की स्थिति चिन्ताजनक है। महिलाओं की इस स्थिति को सुधारने के उद्देश्य से सरकारी और गैर सरकारी सहयोग से संचालित “कृषि विज्ञान केन्द्रों” द्वारा भी इस दिशा में प्रयास किये जा रहे हैं।

“कृषि विज्ञान केन्द्र” के उद्देश्यों एवं कार्यों के अध्ययन से उपरान्त स्पष्ट होता है कि यह सभी कार्यक्रम महिलाओं के लिए उनके दैनिक जीवन के अत्यंत व्यावहारिक एवं उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं बशर्ते इन कार्यक्रमों में अधिक से अधिक ग्रामीण महिलाओं की सक्रिय सहभागिता हो। महिलाओं की सहभागिता न केवल उन कार्यक्रमों में जो केवल महिलाओं के लिए आयोजित हो रहे हैं वरन् उनमें जो भी महिला और पुरुषों दोनों के लिए सामान्य है, में भी अधिक से अधिक संख्या में सहभागी होकर कार्यक्रमों का लाभ उठाकर स्वयं एवं परिवार के जीवन की गुणवत्ता बढ़ा सकती है।

### निष्कर्ष -

गत तीन वर्षों में आयोजित कार्यक्रमों में सामान्य वर्ग की महिलाओं की नामांकन प्रतिशतता सबसे अधिक ‘गृह विज्ञान’ कार्यक्रम में अनुसूचित जाति/जनजाति की महिलाओं की नामांकन संख्या सबसे अधिक ‘पौध संरक्षण’ कार्यक्रम में दृष्टव्य है। सवर्गवार महिलाओं की सहभागिता में सामान्य वर्ग की महिला अधिक नामांकित होती हुई प्रतीत हुई है। जबकि अनुसूचित जाति/जनजाति की महिलाएं ‘कृषि-विज्ञान’ द्वारा आयोजित सभी कार्यक्रमों में अपेक्षाकृत कम सहभागी हुई है।

अतः कृषि-विज्ञान केन्द्र को और अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है। जिससे की दोनों संवर्गों की महिलाओं की सहभागिता को बढ़ाया जा सके।

महिलाओं की आयुवर्ग, नामांकन प्रतिशत विश्लेषण से विदित होता है कि आयुवर्ग को दो भागों 18-35 वर्ष और 36 से ऊपर आयुवर्ग की महिलाओं में विभाजित किया गया। विभिन्न आयु वर्ग की महिला नामांकन प्रतिशतता में 18-35 वर्ष आयु वर्ग की महिलाओं ने सबसे अधिक रुचि गृह विज्ञान कार्यक्रम में दिखाई है, और 36 से ऊपर की महिलाओं ने सबसे ज्यादा रुचि फसल उत्पादन में दिखाई है। अतः कहा जा सकता है कि कृषि विज्ञान केन्द्र में होने वाले कार्यक्रमों में आयु में भी भिन्नता पाई गई है।

अतः विश्लेषण एवं व्याख्या के आधार पर कहा जा सकता है कि कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा क्रियान्वित शैक्षिक कार्यक्रमों में से मदा-विज्ञान के अतिरिक्त सभी कार्यक्रमों में सामान्य संवर्ग एवं अनुसूचित जाति/जनजाति की महिलाओं की सहभागिता है किन्तु कतिपय कार्यक्रमों में अनुसूचित जाति/जनजाति संवर्ग की सहभागिता बढ़ाने के प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। इसी प्रकार यह तो स्पष्ट है कि नवयुवतियां इन कार्यक्रमों का अधिक लाभ ले रही है, किन्तु घर



परिवार एवं कृषि संबंधी जानकारी द्वारा प्रौढाएं स्वयं परिवार एवं पास-पड़ोस को लाभान्वित कर सकती है अतः 36 वर्ष से अधिक आयु की महिलाओं के नामांकन को बढ़ाने की आवश्यकता है। यह महिलाएं अपने नेतृत्व में व्यवसाय आरम्भ करने, स्वयं सहायता समूह निर्मित करने का कार्य कर सकती है। यह भी पाया गया कि कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा क्रियान्वित कार्यक्रमों में शिक्षक-महिला और महिला-महिला की अन्तःक्रिया सकारात्मक प्रतीत होती है।

## संदर्भ

1. आप्टे, प्रभा: भारतीय समाज में नारी, पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, 1996
2. अग्निहोत्री, रवीन्द्र: आधुनिक भारतीय शिक्षा: समस्याएं और समाधान, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण, 1987 द्वितीय संस्करण-1994
3. देसाई, नीरा: नारी और शिक्षा, प्रथम संस्करण, मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 1982
4. गुप्ता, कृष्णा: उच्च शिक्षा की लाभार्थी के रूप में भारतीय महिला, लघु शोध प्रबंध, शिक्षा संकाय, वनस्थली विद्यापीठ, 2007
5. जिवाणी, किरण: गुजरात की आदिवासी महिला शिक्षा हेतु गैर सरकारी संगठनों के प्रयास एक अध्ययन, शोध प्रबंध, वनस्थली विद्यापीठ, 2006

# संस्कृतसन्धि शिक्षण के लिए सङ्गणकीय अनुप्रयोग

सन्जू

शोधच्छात्रा

संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

ई-मेल: sanjunandal77@gmail.com

सुभाष चन्द्र

सह-आचार्य

संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

ई-मेल: schandra@sanskrit.du.ac.in

**सार-** संस्कृत व्याकरण की पारंपरिक शिक्षण विधियों में अष्टाध्यायी का पूरा अध्ययन शामिल है, जिसमें लगभग 4000 सूत्रों को रटकर सीखना शामिल है। इसके अतिरिक्त, सूत्रों की भलीभांति समझ प्राप्त करने के लिए अष्टाध्यायी पर एक या एक से अधिक भाष्य अनिवार्य हैं। इस प्रक्रिया से सन्धि सीखना अत्यधिक स्वाध्याय एवं अभ्यास का हिस्सा बन जाएगा, जिसे पूरा होने में सालों लगते हैं। दूसरी तरफ, मौजूदा किताबें, उपकरण या वेबसाइटें जो संस्कृत व्याकरण पर या यहां तक कि विशेष रूप से अत्यंत सामान्य वर्ण-संयोजनों (सन्धि) में शुरुआती अनुशिक्षक के रूप में उपलब्ध हैं, ये सभी स्रोत केवल सामान्य ज्ञान ही प्राप्त कराते हैं। यद्यपि पालन की जाने वाली शिक्षण पद्धतियाँ संधियों के सामान्य वर्गीकरण पर आधारित है, जैसे- स्वर-आधारित और व्यंजन-आधारित सन्धि। इनमें पाणिनीय सन्धि व्यवस्था की समझ या सन्धि नियमों के अनुप्रयोगों की सूक्ष्म बारीकियों को उनमें शामिल नहीं किया गया है, जिससे यह विधि कम व्यापक है। क्योंकि बोली जाने वाली भाषा की विविधता में व्याकरणिक नियम शामिल हैं। क्योंकि पाणिनीय व्यवस्था में नियमों के क्रम का बहुत महत्व है, और इसको व्यापक रूप से समझने के लिए आवश्यक है कि सन्धि प्रक्रिया कैसे संचालित होती है? इसका ज्ञान प्राप्त किया जाए। इस प्रकार शिक्षण के उद्देश्यपूर्ति और उसी के लिए एक व्यवस्थित विनिर्देश के लिए एक सङ्गणकीय अनुप्रयोग की आवश्यकता है। इस उद्देश्यपूर्ति में प्रस्तुत व्यापक 'संस्कृत सन्धि शिक्षण का सङ्गणकीय अनुप्रयोग' सन्धि की शुरुआती आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ यह सुनिश्चित करता है कि शिक्षार्थी को प्रासंगिक पाणिनीय सन्धि नियमों के माध्यम से संस्कृत सन्धि के साथ-साथ संस्कृत सन्धि रूपसिद्धि के संचालन का पूरा ज्ञान प्राप्त हो सके। इस समय यह सङ्गणकीय अनुप्रयोग दो शब्द “+” के साथ स्वीकार करता है। यह सङ्गणकीय अनुप्रयोग संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय की विभागीय वेबसाइट <http://cl.sanskrit.du.ac.in> पर उपलब्ध है।

## प्रस्तावना

कई भारतीय भाषाओं में सन्धि की घटना एक महत्वपूर्ण तरीके से प्रचलित है। संस्कृत में, इस घटना का रूपात्मक और ध्वन्यात्मक दोनों स्तरों पर दूरगामी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है और इसे भाषा के व्याकरण विनिर्देश में सबसे सटीक और व्यापक तरीके से भी प्रस्तुत गया है। संस्कृत में सन्धि एक शब्द के आंतरिक कारकों के कारण या पूर्व और पर वर्णों के प्रभाव के कारण एक या अनेक परिवर्तनों से गुजरने का कारण बनता है (Kasmir, Rajitha, & Lakshmanan,

2014)। पाणिनि द्वारा रचित संस्कृत व्याकरण का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' एक सटीक सूत्रीकरण में संहिताबद्ध ग्रन्थ है, जिसको व्यापक रूप से वर्णनात्मक भाषाविज्ञान पर लिखित सबसे पहले ज्ञात कार्य और संस्कृत व्याकरण पर अंतिम अधिकार के रूप में स्वीकार किया जाता है। नासा के वैज्ञानिक रिंक ब्रिग्स (Briggs, 1985) ने अपने कृत्रिम बुद्धि शोध की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया तथा इन्होंने पाणिनि व्याकरण में प्रयुक्त नियमों के क्रियान्वयन में प्रयुक्त विधियों का ज्ञान प्रस्तुत करने के लिए उपयुक्त तकनीक स्वीकार की है (चन्द्र, 2021)। आधुनिक व्याकरण में पाणिनीय व्याकरण सर्वाङ्गीण, वैज्ञानिक एवं एक कंप्यूटर-प्रोग्राम जैसा व्यवस्थित है। प्राचीन भारतीय परम्परा में पाणिनि ने अनेकों वर्षों पूर्व ही संगणन तकनीक के क्षेत्र में उच्च स्तरीय प्रोग्रामिंग भाषाओं जैसी अवधारणा की नींव रख दी थी। निश्चितरूप से पाणिनि कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग भाषाओं के जनक कहे जा सकते हैं।

प्राचीन व्याकरणशास्त्री पाणिनि की इस महान रचना में संक्षिप्त रूप से वर्णित लगभग 4000 सूत्र शामिल हैं जिसमें भाषा के व्याकरणिक नियमों को इस तरह से प्रस्तुत किया गया है, जो यह साबित करता है कि संस्कृत एक ऐसी भाषा है जो प्राकृतिक और औपचारिक दोनों है। अष्टाध्यायी में संज्ञा, सन्धि, कारक, कृत्, और तद्धित प्रत्यय, समास, सुबन्त एवं तिङन्त, प्रक्रियाएँ, परिभाषाएँ, द्विरुक्त आदि कार्य तथा स्वर प्रक्रिया आदि का विश्लेषण के साथ ही साथ इनसे संबंधित नियम प्रस्तुत किए गए हैं। इसमें संहिता संबंधी इन नियमों का विश्लेषणात्मक विवरण प्राप्त होता है। विद्वानों का मत है कि संस्कृत व्याकरण को संगणित करना आसान है।

सूचना प्रौद्योगिकी के आधुनिक युग में भारतीय ज्ञान परम्परा का डिजिटलीकरण एवं उसको वेब के माध्यम से उनमें निहित सूचनाओं का प्रसार करना अत्यावश्यक है कि ऐसे सङ्गणकीय अनुप्रयोग को विकसित किया जाये जो कि अधिगम और शिक्षण में उपयोगी हो। संस्कृत भाषा का विशाल साहित्य होने पर भी संस्कृत के डिजिटल माध्यमों की अन्य भाषा साहित्य की तुलना में मात्रा बहुत कम है। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए संस्कृत के अनुसन्धान के क्षेत्र में दिन प्रतिदिन ऐसी तकनीकों और टूल्स का निर्माण किया जा रहा है, जो ई-लर्निंग में सहायक हों। इसी लक्ष्य को पूरा करने के लिये पाणिनि सन्धि नियमाधारित संस्कृतसन्धि के लिये ऑनलाइन ससूत्ररूपसिद्धि सङ्गणकीय अनुप्रयोग का विकास किया गया है।

### संस्कृत सन्धि का परिचय

सन्धि का अर्थ होता है मेल या फिर मिलना। सन्धि शब्द सम् उपसर्गपूर्वक डुधाञ् (धा) धातु से “उपसर्गे धोः किः” सूत्र से कि प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। जब हम दो शब्दों को मिलाते हैं, तो पहले शब्द की अंतिम ध्वनि एवं दूसरे शब्द की पहली ध्वनि मिलकर जो परिवर्तन लाती है, उसे ही सन्धि कहते हैं। दूसरे शब्दों में अत्यन्त समीप में विद्यमान वर्णों के योग में जो परिवर्तन आता है, उसे सन्धि कहते हैं। उन वर्ण (ध्वनि) परिवर्तनों से सन्धि पाँच प्रकार की कही जाती है- ‘वर्णयोः सन्निहितयोर्योगः सन्धिः स पञ्चधा। तत्र लोपागमादेशाः क्वचित् प्रकृतौ स्थितिः॥’ (आचार्य, 2019) जो इस प्रकार है- अच् सन्धि, प्रकृतिभाव सन्धि, हल् सन्धि, विसर्ग सन्धि, स्वादिसन्धि। तथा पुनः प्रत्येक सन्धि के अवान्तर भेद हो जाते हैं।

### शोध समस्या एवं उद्देश्य

संस्कृत व्याकरण का संगणन बहुत ही आसान है विद्वानों द्वारा ऐसा अक्सर कहते हुए सुना जा सकता है। इसी अवधारणा को स्पष्ट करना ही इस शोध की सबसे बड़ा उद्देश्य है। साथ ही साथ इस संगणन के माध्यम से सन्धि शिक्षण हेतु विकसित सङ्गणकीय अनुप्रयोग को प्रस्तुत भी करना है। वहीं दूसरी तरफ ऑनलाइन माध्यमों में संस्कृत साहित्य की संख्या बहुत ही कम है। इसका एकमात्र समाधान संस्कृत साहित्य की वैश्विक पहुंच के लिए ऑनलाइन माध्यमों को

अपनाना है। जिससे कि यह भारतीय ज्ञान परम्परा डिजिटल रूप में ऑनलाइन उपलब्ध हो तथा सभी जिज्ञासुओं की पहुँच में हो। वर्तमान में संस्कृत पाठ्यक्रम संचालित करने वाले सभी भारतीय विश्वविद्यालयों एवं सम्बद्ध महाविद्यालयों में सिद्धान्तकौमुदी या लघुसिद्धान्तकौमुदी आधारित सन्धि-प्रकरण पाठ्यक्रम का हिस्सा अवश्य होता है तथा संस्कृत व्याकरण में अष्टाध्यायी पर लिखे गये प्रक्रिया-ग्रन्थों में वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी प्रमुख ग्रन्थ है। मौजूदा सभी सन्धि-शिक्षण पुस्तकें और उपकरण सङ्गणकीय केवल प्रस्तुत किए गए न्यून उदाहरणों या प्रस्तुत जानकारी की गहन के संदर्भ में भिन्न होते हैं। इस प्रकार, सन्धि-शिक्षण के लिए एक सङ्गणकीय अनुप्रयोग की आवश्यकता है, जो व्यापक, प्रभावी और गैर-डराने वाला हो, और एक अन्य सहायक चुनौती यह है कि सभी जानकारी को धीरे-धीरे शिक्षार्थी को प्रस्तुत किया जाए ताकि सीखने की प्रक्रिया सुचारू हो और डराने वाली न हो, हालांकि इसके माध्यम से पाणिनि के संक्षिप्त और जटिल सूत्र सिखाए जा रहे हैं। अन्ततः संस्कृत सन्धि सिद्धिप्रक्रिया के लिए सङ्गणकीय अनुप्रयोग निर्माण ही इन सभी समस्याओं का एकमात्र समाधान है।

## शोध-सर्वेक्षण

संगणकीय संस्कृत के क्षेत्र में अनेक संस्थानों द्वारा अनेकों शोध सम्पन्न किए जा रहे हैं जिनमें से संस्कृत सन्धि से सम्बन्धित कुछ शोध हैं। इसी दिशा में भारतीय भाषा प्रौद्योगिकी प्रसरण एवं विस्तारण केन्द्र (TDIL) द्वारा दो संस्कृत सन्धि एवं सन्धि-विच्छेदकपर कार्य करने लिए विभिन्न संस्थानों को अनुदान प्रदान किया गया था। इनमें जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय का संस्कृत संस्थान एवं हैदराबाद विश्वविद्यालय का संस्कृत विभाग शामिल हैं। सन्धि सिस्टम दो संस्कृत पदों के बीच सन्धि की पहचान करके सन्धि नियमों के अनुसार सन्धि करता है तथा पाणिनीय सन्धि नियमों का भी उल्लेख करता है। सन्धि-विच्छेदक एक पद को सन्धि नियमों के अनुसार अलग-अलग करता है। इस सिस्टम द्वारा किसी भी सन्धि पद में जितने भी पदच्छेद सम्भावित हो सकते हैं। यह सिस्टम उन सभी को विस्तार से प्रस्तुत करता है (TDIL, 2021)। प्रो. अम्बा कुलकर्णी के मार्गदर्शन में विकसित किए गए एवं 96%-98% सम्यक् परिणाम का दावा करने वाले ऐसे ही दो अन्य सिस्टम भी प्राप्त होते हैं (Kulkarni, 2021)।

लघुसिद्धान्तकौमुदी के आधार पर विकसित सन्धि निर्मापक (sandhi generator) सिस्टम (Mishra & Jha, 2009) दो पदों या वर्णों के मध्य नियमानुसार सन्धि करता है। इसी कड़ी में सन्धि पद की पहचान करके उसका सम्भावित विच्छेद करने के लिए अन्य टूल सन्धि विच्छेदक (Sandhi splitter) का निर्माण संस्कृत सन्धि के विश्लेषण एवं पहचान हेतु किया गया है (Kumar & Jha, 2007)। सन्धि विच्छेद के साथ ही साथ यह सन्धि सूत्र को भी प्रस्तुत करता है। संस्कृत भाषा प्रौद्योगिकी के लिए डॉ. धवल पटेल ने एक वेब पोर्टल का निर्माण किया है (Patel, 2022)। इस पोर्टल पर सन्धि निर्मापक (Sandhi Generator) दो पदों के मध्य सन्धि की पहचान करके सन्धि करता है एवं सन्धि सूत्र, वार्तिक तथा उनके कार्य, अष्टाध्यायी के सूत्रक्रम को भी प्रस्तुत करता है। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, दिल्ली एवं आईबीएम रिसर्च द्वारा शुभम् भारद्वाज एवं उनके सहयोगियों (2018) के सहयोग से एक सन्धिकोश (SandhiKosh) का विकास किया गया। इसमें संस्कृत साहित्य के आधार पर सन्धि और सन्धि विच्छेद का मूल्यांकन करके लगभग 14000 सन्धि शब्दों का सग्रह अर्थात् सन्धि शब्दकोश का निर्माण किया गया है।

प्रो. जेराई ह्यूट (2013) के मार्गदर्शन में INRIA (French Institute for Research in Computer Science and Automation) द्वारा सन्धि इंजन का विकास किया गया है (Goyal and Huet 2013)। सन्धि के सिस्टमों में यह एकमात्र ऐसा उपकरण है जो सन्धि के बीच आंतरिक और बाहरी भेद को स्पष्ट करता है। उपयोगकर्ता को दोनों आंतरिक और बाहरी विकल्पों में एवं भाषा विकल्प के चयन का अवसर प्रदान करता है। और उपयोगकर्ता के चयन के अनुरूप ही परिणाम देता है। यह सिस्टम प्रदत्त संस्कृत वाक्य/गद्यांश में प्रयुक्त सन्धिसहित पदों का विच्छेद करके उसे सरल बनाने का

कार्य करता है। इससे पाठक को संस्कृत पाठ समझने में आसानी होती है। कर्नाटक संस्कृत विश्वविद्यालय (Karantaka Samskrit University) द्वारा सन्धि विच्छेदक सिस्टम का निर्माण किया जा रहा है। इस सिस्टम का निर्माण अम्बा कुलकर्णी (Hyderabad University), प. रामानुज (Karantaka Samskrit University) तथा निकोलस (Nicolas Reimen, Karantaka Samskrit University) के सहयोग से किया जा रहा है। अभी यह सिस्टम विकासधीन है। यह सिस्टम सन्धि विच्छेद करने के लिये विकसित किया जा रहा है। इस कारण इस समय सन्धि विच्छेद कुछ सटीक हैं तो कुछ सम्भावित प्राप्त हो रहे हैं।

उपरोक्त संक्षिप्त सर्वेक्षण से पता चलता है कि सन्धि के लिए बहुत सारे सिस्टम विकसित तो हुए हैं, परन्तु ई-शिक्षण से सम्बन्धित कोई भी नहीं है। यह सङ्गणकीय अनुप्रयोग ई-शिक्षण की दृष्टि से डिजिटल क्लास टीचिंग एवं शैक्षणिक योग्यता की वृद्धि तथा अधिगम में अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होगा। इस सिस्टम की सहायता से कोई भी छात्र या शिक्षक कहीं भी, किसी भी समय बड़ी सरलता से सन्धि रूपसिद्धि को पढ़ तथा पढ़ा सकता है।

### सन्धि के सङ्गणकीय अनुप्रयोग के विकास में चुनौतियाँ एवं समाधान

एक प्रभावी सन्धि सङ्गणकीय अनुप्रयोग को डिजाइन करने में अनेकों चुनौतियों का सामना करना पड़ता है जैसे- संगणक को सन्धि से परिचित कराना, संगणक को संस्कृत वर्णों से परिचित कराना, संगणक को संस्कृत वर्णों के मध्य होने वाले परिवर्तन एवं सन्धि नियमों से अवगत कराना, एक समान स्थिति में दो या दो से ज्यादा सूत्रों की प्रवृत्ति, एक ही स्थिति में दो या दो से ज्यादा सन्धि पदों की प्राप्ति, संगणक को पद और पदान्त पद से परिचित कराना आदि। इन चुनौतियों से हल करने के लिए आधिकारिक भाष्य, टिप्पणियों, सिद्धांत-कौमुदी और काशिका जैसे ग्रन्थों की मदद से मूल सन्धि नियमों का गहन अध्ययन किया गया था। इस व्यापक अध्ययन और विश्लेषण के माध्यम से पाणिनि के 131 सूत्र एवं कात्यायन के 39 वार्तिकों को सूत्र विशेष रूप से सन्धियों से संबंधित हैं, उनको समझकर उपयोग किए जाने के रूप में पहचाने गए। इस अध्ययन के द्वारा द्वारा विकसित सन्धि अनुप्रयोग के कार्यान्वयन के आधार पर सन्धि अध्ययन-अध्यापन के लिए एक अद्वितीय सङ्गणकीय अनुप्रयोग को विकसित किया गया।

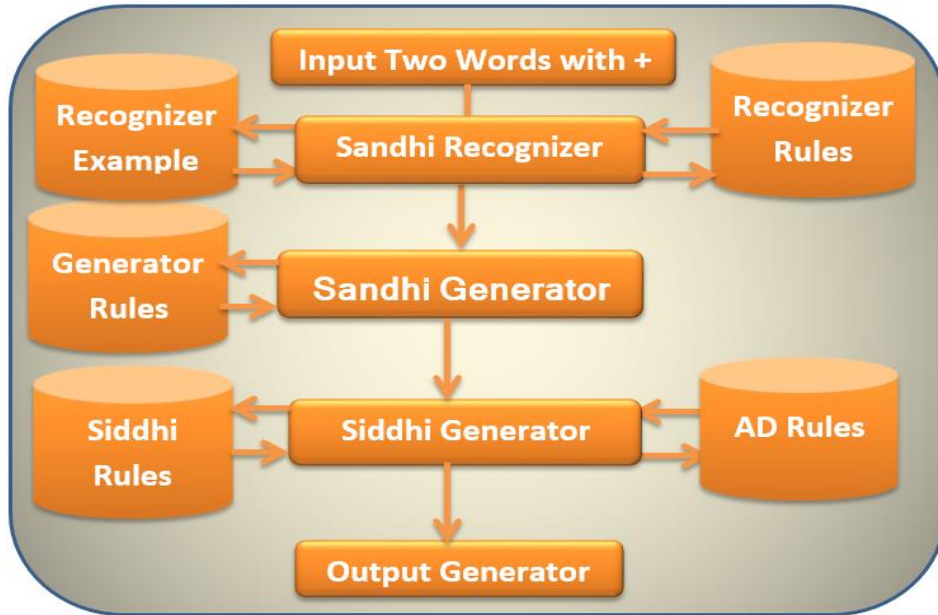
पाणिनि की अष्टाध्यायी में आठ अध्याय हैं, जिनमें से प्रत्येक को चार चौथाई या पादों में विभाजित किया गया है। पूरे काम को दो भागों में शामिल माना जाता है। प्रथम भाग में पहले सात अध्याय और आठवें अध्याय की पहला पाद शामिल है, और इसे सपादसप्ताध्यायी कहा जाता है। तथा इससे व्यतिरिक्त में शेष भाग द्वितीय भाग कहा जाता है, यानी आठवें अध्याय के अंतिम तीन-चौथाई भाग, जिसको 'त्रिपादी' भी कहा जाता है। सन्धि से संबंधित सूत्र मुख्य रूप से अध्याय 6 और 8 में प्राप्त होते हैं, अध्याय 4 से एक प्रासंगिक सूत्र के साथ और कुछ मार्गदर्शक सूत्र जो अध्याय 1 में सन्धि नियमों को उचित रूप से समझने और लागू करने के लिए आवश्यक हैं, काशिका अष्टाध्यायी के मूल क्रम को संरक्षित करते हुए, कार्य की व्याख्या करती है। वहीं सिद्धांत-कौमुदी श्रेणी अनुसार कार्य की विषय-वस्तु से संबंधित है और विशेष रूप से सन्धि सूत्रों को पांच अध्याय उल्लिखित करता है। इस सन्धि सङ्गणकीय अनुप्रयोग का विकास इन्हीं पांच अध्यायों के अनुसार पञ्च सन्धि सिद्धान्तों के अनुरूप तैयार किया गया है। सन्धि एवं सन्धि सिद्धिरूप को सूत्रों की प्रस्तुति सप्तसप्ताध्याय और त्रिपादी के विभिन्न प्रकारों से का अनुसरण करते हैं। इसके अनुसार ही सन्धि नियमों के डेटा को अलग-अलग फाइल में संग्रहित किया गया है। इन दोनों भागों में वरीयता नियम भिन्न हैं। साथ ही, नियमों के अपवादों को अलग-अलग तरीकों से प्रस्तुत किया जाता है। कभी-कभी नियमों के अपवाद बाद में प्रस्तुत किए जाते हैं, जबकि कुछ स्थितियों में, उन्हें पहले प्रदर्शित किया जाता है। यह स्पष्ट है कि एक सटीक अनुप्रयोग और सन्धि नियमों के स्पष्ट विनिर्देश की आवश्यकताओं को संतुलित करना, इस तरह के सङ्गणकीय अनुप्रयोग को डिजाइन करने के लिए महत्वपूर्ण चुनौती रही है। यह सङ्गणकीय अनुप्रयोग सन्धि के प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करने वालों तथा सन्धि का गहन

अध्ययन की इच्छा रखने वाले ज्ञान पिपासुओं को संस्कृत सन्धि के नियमों का पूरी तरह से जानकार बनने में मदद करेगा एवं कारगर सिद्ध होगा।

### शोधप्रविधि

सन्धि हेतु वेब आधारित सङ्गणकीय सिस्टम के विकास में पाणिनीय नियम एवं उदाहरण आधारित मिश्रित विधि का प्रयोग किया गया है। जिस प्रकार पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में दो प्रकार के नियम प्रस्तुत किए हैं, जिन्हें उत्सर्ग (General Rules) एवं अपवाद नियम (Exceptional Rules) कहा जाता है। उसी प्रकार इस सङ्गणकीय अनुप्रयोग में भी सामान्य नियम के लिए नियम आधारित विधि एवं अपवादों के लिए उदाहरण डेटाबेस की सहायता से सन्धि प्राप्त की जाती है। इसके साथ ही साथ संगणकीय भाषाविज्ञान एवं वेब तकनीक विधियों का प्रयोग किया गया है।

इस सङ्गणकीय अनुप्रयोग में मुख्य रूप से तीन संघटक हैं- प्रथम संघटक यूजर प्रदत्त पदों के आधार पर सन्धि की पहचान कर सन्धि करता है। द्वितीय पहचान के आधार पर संहिताजन्य परिवर्तन अर्थात् सन्धि करता है। एवं तृतीय सन्धि के आधार पर पाणिनि सूत्रों के साथ सन्धि होने पूर्ण प्रक्रिया को प्रदर्शित करता है। साथ ही साथ किसी भी सूत्र पर कर्सर ले जाकर उस सूत्र का अर्थ एवं क्लिक करने पर सूत्र की व्याख्या भी प्रस्तुत करता है। इसे चित्र संख्या-1 के माध्यम से समझा जा सकता है।



चित्र संख्या - 1: सन्धिसङ्गणकीय अनुप्रयोग का फ्लोचार्ट

प्रस्तुत सङ्गणकीय अनुप्रयोग वेब आधारित अनुप्रयोग है। किसी भी वेब आधारित सिस्टम विकसित करने के लिए मुख्यरूप से दो मुख्य सङ्घटक होते हैं- प्रथम फ्रंट एंड (Front end) एवं द्वितीय बैक एंड (Back end)। फ्रंट-एंड वेबसाइट के सभी दृश्यमान पहलुओं को कहा जा सकता है, जिसको उपयोगकर्ता देख और अनुभव कर सकता है। तकनीकी भाषा में फ्रंट-एंड के लिए 'क्लाइंट-साइड' (client-side) शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसके विपरीत बैकग्राउंड (background) में होने वाले कार्य को बैक-एंड कहा जाता है। इसके द्वारा सूचनाएं कैसे और कब प्रस्तुत करनी है सभी निर्णय लिया जाता है। फ्रंट एंड (Front end) में मुख्य रूप से वेबपेज होते हैं। इस वेब तकनीक में एचटीएमएल (HTML) पेज और इसको आकर्षक एवं उपयोगी बनाने के लिए एचटीएमएल कोड में सीएसएस (CSS) एवं जावास्क्रिप्ट (JavaScript) के कोड शामिल किए गए हैं। तथा वेब डेवलपमेंट (Web Development) के लिये



प्रोग्रामिंग भाषा पाइथॉन (Python) का प्रयोग किया गया है। सर्वर के लिए पाइथॉन समर्थित फ्लास्क (Flask) सर्वर का एवं डेटाबेस के लिए MySQL डेटाबेस एवं टेक्स्ट फाइल का प्रयोग किया गया है।

इस सङ्गणकीय अनुप्रयोग का प्रथम वेबपेज उपयोगकर्ता इंटरफेस है। उपयोगकर्ता इंटरफेस (User interface) वह बिंदु है जिसके माध्यम से उपयोगकर्ता कंप्यूटर, वेबसाइट या किसी एप्लिकेशन के साथ परस्पर संवाद (Interact) करता है। प्रस्तुत सङ्गणकीय अनुप्रयोग का उपयोगकर्ता इंटरफेस Form-based user interface की सहायता से HTML में विकसित किया गया है। जब उपयोगकर्ता द्वारा इंटरफेस में उपलब्ध एक टेक्स्ट एरिया में देवनागरी यूनिकोड (Unicode) में अपना इनपुट (दो शब्दों को “+” चिह्न के साथ) प्रविष्ट करके सब्मिट किया जाता है। तो वह प्रदत्त परिष्कृत होकर सन्धि पहचानकर्ता नामक संघटक के पास आता है। यह संघटक दिए गए इनपुट के आधार सन्धि पहचान नियमों की सहायता से सन्धि की पहचान करता है। तत्पश्चात् पहचान के आधार पर सन्धिकर्ता (Sandhi Generator) मॉड्यूल नियम एवं उदाहरण डेटाबेस की सहायता से सन्धि करता है एवं सिद्धि प्रक्रिया के लिए एक कोड निर्मित करके उसे अगले चरण के लिए प्रेषित करता है। सन्धिसिद्धि निर्मापक (Sandhi Siddhi Generator) मॉड्यूल, सन्धिकर्ता (Sandhi Generator) से प्राप्त कोड को रूपसिद्धि डेटाबेस की सहायता से सिद्धिकोड निर्मित करता है। पुनः इसी सिद्धिकोड को अष्टाध्यायी डेटाबेस के पास भेजता है जहां पर पाणिनीय नियमों से कोड को परिवर्तित करके आऊटपुट जेनेरेटर (Output Generator) को सम्प्रेषित करता है। आऊटपुट जेनेरेटर (Output Generator) पूर्व तत्त्व अर्थात् सन्धिसिद्धि निर्मापक (Sandhi Siddhi Generator) से प्राप्त स्ट्रिंग को टेक्स्ट में परिवर्तित करता है। तत्पश्चात् ऑटोमेटिक तालिका का निर्माण कर उस टेक्स्ट को उसके rows एवं columns में प्रतिस्थापित करता है। फलस्वरूप सन्धिसिद्धिप्रक्रिया की सम्पूर्ण सूचनाएँ उपयोगकर्ता को उसी वेबपेज परिणाम में प्रदर्शित होती हैं।

### परिणाम एवं परिचर्चा

पाणिनीय सन्धि नियमों को संस्कृत सन्धि के सङ्गणकीय अनुप्रयोग के रूप में लागू किया गया है। यह देवनागरी लिपि (यूनिकोड) का उपयोग करके दिए गए प्रदत्त के आधार पर संस्कृत सन्धि को प्रदर्शित करता है, और यह परिणाम को तीन श्रेणियों में प्रदर्शित करता है। यह परिणाम उसी वेबपेज पर UTF-8 (देवनागरी लिपि) में परिणाम में प्रदत्त के आधार पर तालिका रूप (Tabular form) में सन्धि की ससूत्ररूपसिद्धि प्रक्रिया प्राप्त हो जाती है। प्राप्त परिणाम में रूपसिद्धिप्रक्रिया प्रयुक्त प्रत्येक सूत्र एवं वार्तिक हाईपरलिंक होते हैं। जिस पर कर्सर (Cursor) ले जाने पर एक टूलटिप (Tooltip) में उस सूत्र अथवा वार्तिक का अर्थ एवं क्लिक (Click) करने पर एक नये वेबपेज पर उसकी सम्पूर्ण व्याख्या प्रकट हो जाती है। इस सङ्गणकीय अनुप्रयोग पूर्णतः उपयोगकर्ता सहायक सिस्टम है एवं प्रयोग में सरल है। इस तन्त्र के प्रयोग के माध्यम से कोई भी छात्र अपने अध्ययन में एवं शिक्षक इसे शिक्षण में आसानी से प्रयोग कर सकते हैं। यह वेब आधारित तन्त्र पूर्ण रूप से वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी में विवेचित सन्धिप्रक्रिया के नियमों पर आश्रित है। यह सङ्गणकीय अनुप्रयोग संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय की विभागीय वेबसाइट <http://sanskrit.du.ac.in/CL> पर ई-शिक्षण टूल (E-learning tool) के अन्तर्गत उपलब्ध होगा।

यह सङ्गणकीय अनुप्रयोग 24\*7 ऑनलाइन उपलब्ध है। अतः इसे पठन-पाठन में किसी भी समय बाध्यता रहित प्रयोग किया जा सकता है। अतः ई-शिक्षण में यह सङ्गणकीय अनुप्रयोग बहुत ही कारगर सिद्ध होगा।

### शोध की भावी संभावनाएं

यह ऑनलाइन सिस्टम वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी आधारित सन्धि प्रकरण के अनुरूप बनाया गया है। यह सिस्टम दो पदों के मध्य सन्धि एवम् ससूत्ररूपसिद्धि प्राप्त कराता है। यह शोध भविष्य में होने वाले संस्कृत व्याकरण प्रक्रिया के अन्य प्रकरणों सुबन्त, तिङन्त, णिजन्त, यङन्त, सनाद्यन्त, समास, तद्धित आदि के शोध कार्यों में सहायक सिद्ध होगा। इस



सिस्टम की सहायता से ससूत्ररूपसिद्धि सन्धि-विच्छेदक सिस्टम का विकास किया जा सकता है। जो कि संस्कृत साहित्य जगत में बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध होगा। अभी यह सिस्टम केवल हिंदी माध्यम में बनाया गया है। पश्चात् इसे अन्य भाषा माध्यमों जैसे- संस्कृत, अंग्रेजी, बांग्ला, तमिल, तेलगू आदि के लिये भी विकसित किया जा सकता है और इसमें इन्पुट आउटपुट के लिए स्पीच टेक्नोलॉजी का भी प्रयोग किया जा सकता है। इसी तरह के प्रोग्रामिंग कोड अन्य शिक्षण क्षेत्रों के लिए प्राप्त किए जा सकते हैं।

## संदर्भ

1. Bhardwaj, S., Gantayat, N., Chaturvedi, N., Garg, R., & Agarwal, S. (2018). SandhiKosh: A Benchmark Corpus for Evaluating Sanskrit Sandhi Tools. Proceedings of the Eleventh International Conference on Language Resources and Evaluation (LREC 2018). Miyazaki, Japan: European Language Resources Association (ELRA). Retrieved from <https://www.aclweb.org/anthology/L18-1712>
2. Briggs, R. (1985). Knowledge Representation in Sanskrit and Artificial Intelligence. AI magazine,6(1), 32. <https://doi.org/10.1609/aimag.v6il.466>.
3. Kasmir, S. V., Rajitha, V., & Lakshmanan, M. (2014, September 4). An Ontology for Comprehensive Tutoring of Euphonic Conjunctions of Sanskrit Grammar. European Journal of Scientific Research(124), 460-467.
4. Kulkarni, A. (2021). संसाधनी (A Sanskrit Computational Toolkit). University of Hyderabad. <http://sanskrit.uohyd.ac.in/scl/>.
5. Kumar, S., & Jha, G. (2007). Sandhi Splitter and Analyzer for Sanskrit (with special reference to aC sandhi). New Delhi: Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University.
6. Message, G. (2021). Green Message. Retrieved November 07, 2022, from <https://greenmesg.org>
7. Mishra, D., & Jha, G. N. (2009). Issues and Challenges in Computational Processing of Vya-Jana Sandhi. New Delhi: Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University.
8. Patel, D. (2022). Sanskrit World. Retrieved November 07, 2022, from <https://www.sanskritworld.in/sanskrittool/sandhi.html>
9. TDIL. (2021). [http://tdil-dc.in/san/sandhi/index\\_dit.html](http://tdil-dc.in/san/sandhi/index_dit.html).
10. आचार्य, ग. (2019). वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी. दिल्ली: चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान.
11. चन्द्र, सु. (2021). भाषासंगणन. दिल्ली: विशाल कौशिक प्रिंटेर्स.

# महिला-उत्थान के लिए भारत सरकार की नीतियां

डॉ. सुनीता पारिक

राजनीति विभाग

अदिति महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

ईमेल: sunitapareek125@gmail.com

**सार-** राजनीतिक पार्टियां महिला मतदाताओं को ध्यान में रखते हुए कभी-कभी उनको प्रभावित करने हेतु बहुत सारे राजनीतिक और सामाजिक मुद्दों को समय-समय पर उठाती रही हैं, तथा उसे महिला मतदाताओं को प्रभावित करने का प्रयास किया जाता रहा है। भारतीय राजनीतिक और सामाजिक परिवेश में माना जाता है कि भारत में महिला मतदाता अपना वोट देते समय राजनीतिक पार्टियों का चुनाव घर के पुरुष मुखिया से प्रभावित होकर निर्णय करती हैं। लेकिन 25 साल की राजनीति में कुछ कुछ जगहों पर तथा कुछ राज्य और कभी-कभी केंद्र सरकार की कुछ नीतियों के संदर्भ में यदि हम अध्ययन करें तो हम पाएंगे कि इस धारणा को तोड़ने में कामयाबी मिली है कि महिला मतदाता अपने वोट डालने के फैसले पर पुरुष प्रधान समाज से प्रभावित न होकर अपना स्वयं का फैसला करती है और, नीतियों से सीधे महिलाओं को मिलने वाले लाभ के संदर्भ में अपना वोट राजनीतिक दलों को करती हैं। प्रस्तुत लेख में केंद्र सरकार की नीतियों का भारत के महिलाओं पर किस प्रकार से प्रभाव पड़ा है, यह समझा जायेगा तथा इस लेख के केंद्रीय बिंदु महिलाओं के संबंध में बनाई गई नीतियां तथा केंद्र सरकार की सामाजिक आर्थिक नीतियों का महिलाओं पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ा है उसका अध्ययन करने का प्रयास किया जाएगा।

**मुख्य बिंदु- महिला शक्ति, महिला नीति, केंद्रीय योजनाएं, समान भागीदारी**

## प्रस्तावना

भारतीय राजनीति में महिला मतदाता को सरकार पिछले 20 सालों से प्रमुखता देती रही है। इस संदर्भ में 1991 की भारतीय राजनीति में हरियाणा के तत्कालीन मुख्यमंत्री बंसीलाल द्वारा हरियाणा विकास पार्टी की जब स्थापना की गई थी तो उन्होंने हरियाणा में महिला मतदाताओं को ध्यान में रखते हुए हरियाणा में शराबबंदी की घोषणा की थी। और उससे प्रभावित होकर हरियाणा में महिलाओं द्वारा बड़ी संख्या में हरियाणा विकास पार्टी को मतदान किया गया। बाद में बंसीलाल की सरकार द्वारा हरियाणा में शराबबंदी को लागू किया गया और यह देखा गया कि महिला नीतिगत फैसले से काफी ज्यादा सरकार के पक्ष में खड़ी रही। उसके बाद में बहुत सारी राज्य सरकारों का अध्ययन करेंगे तो हम पाएंगे कि कुछ महिला नीतियों के हित में पिछले 15 साल की राज्य राजनीति में महिलाओं को ध्यान में रखकर इस प्रकार की नीतियों का निर्माण किया और महिला मतदाता को सीधे तौर पर प्रभावित किया जा सके। इसमें युवा महिलाओं से लेकर

कामकाजी महिलाएं शिक्षित महिलाएं तथा सीनियर सिटीजन महिलाओं को प्रभावित करने के संदर्भ में नीति का निर्माण किया जाता रहा है, इन्हीं सब राजनीति फैसलों का भारत की केंद्र की राजनीति पर भी प्रभाव पड़ता है।

पिछले दो दशकों में केंद्र सरकार द्वारा कुछ विशेष योजनाओं को इस प्रकार से बनाया गया जिससे महिला मतदाताओं को सीधे तौर पर प्रभावित किया जा सके और उनको प्रभावित करके उनके वोट को प्राप्त किया जा सके इस संदर्भ में हम देखेंगे कि केंद्र सरकार ने किस प्रकार की नीतियों का निर्माण किया और महिलाओं पर उन नीतियों को किस प्रकार से प्रभाव पड़ा तथा महिलाएं उन नीतियों से किस प्रकार से लाभान्वित हुईं।

केंद्र सरकार द्वारा महिला समूह को विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत करके उनके संदर्भ में नीतियों का निर्माण पिछले 8 सालों से करती रही है विभिन्न महिला समूहों में युवा महिलाएं, कामकाजी महिलाएं, उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाएं, ग्रामीण महिलाएं और सीनियर सिटीजन महिलाओं के संदर्भ में विभिन्न योजनाओं को केंद्र सरकार द्वारा लागू किया गया है।

## बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना की घोषणा 22 जनवरी 2015 को प्रधानमंत्री मोदी द्वारा की गई थी। इस महत्वकांक्षी योजना का प्रमुख लक्ष्य देश में लड़कियों के लिंगानुपात में गिरावट को सन्तुलित करना था। इस योजना में शिक्षा के पहुंच लड़कियों तक सुनिश्चित करना तथा समाज में भागीदारी सुनिश्चित करना प्रमुख उद्देश्य के तौर पर निर्धारित किया गया। प्रधानमंत्री द्वारा 22 जनवरी 2015 को हरियाणा के पानीपत से योजना को शुभारंभ करते हुए कहा गया कि 'आइए हम सभी कन्या का उत्सव मनाते हैं, हमें बेटियों पर भी बेटों की तरह गर्व करना चाहिए देश के सभी नागरिकों को बेटी के जन्म दिवस पर पांच पेड़ों को लगाना चाहिए'। इस योजना के पहले चरण में 100 जिलों का चयन किया गया था। इस योजना को सफल करने के लिए लड़कियों की जन्म दर में बढ़ोतरी करने हेतु सुकन्या समृद्धि, लाडली लक्ष्मी योजना, बालिका समृद्धि योजना तथा धन लक्ष्मी योजना केंद्र सरकार द्वारा समय-समय पर लाया गया।

जनवरी 2022 को इस योजना की समीक्षा करने हेतु महाराष्ट्र से भाजपा सांसद हीना विजय कुमार की अध्यक्षता में महिला सशक्तिकरण समिति की रिपोर्ट जारी की गई है। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि सरकार द्वारा जारी किए गए पैसे का राज्य सरकारों तथा विभिन्न मंत्रालयों ने सदुपयोग नहीं किया है तथा रिपोर्ट में यह तथ्य भी जाहिर किया गया है कि योजना के तहत जारी फंड का 80% पैसा केवल प्रचार तथा विज्ञापनों पर खर्च किया गया। इस रिपोर्ट को हाल ही में लोकसभा में भी पेश किया गया।

## प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना

वर्तमान सरकार द्वारा ग्रामीण महिलाओं के लिए उज्ज्वला योजना लागू की गई है। इस योजना का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र में घरों में गैस सिलेंडर उपलब्ध करवाकर धुआं मुक्त गृहस्थी बनाना है। करोड़ों भारतीय ग्रामीण घरों में लकड़ी के चूल्हे का खाना बनाने के लिए प्रयोग किया जाता रहा है। उसका प्रमुख कारण है कि ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब जनता द्वारा गैस कनेक्शन की कीमत सहन करना संभव नहीं था, इसी समस्या को दूर करने के लिए प्रधानमंत्री मोदी द्वारा उज्ज्वला योजना द्वारा ग्रामीण घर में, आर्थिक तौर पर कमजोर घरों में सरकार द्वारा मुफ्त गैस और चूल्हे का कनेक्शन दिया गया। 1 मई 2016 को उत्तर प्रदेश के बलिया क्षेत्र से इस योजना का शुभारंभ किया गया। इस योजना की शुरुआत मजबूत नारे 'स्वच्छ ईंधन बेहतरीन जीवन' के साथ की गई थी। इस योजना का लाभ सबसे ज्यादा उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं को मिला तथा इसके प्रभाव स्वरूप 2017 में उत्तर प्रदेश विधानसभा के चुनाव में ग्रामीण क्षेत्रों में भारतीय जनता पार्टी को भारी संख्या में महिलाओं का वोट प्राप्त हुआ। उसमें महिला मतदाताओं द्वारा

बीजेपी के पक्ष में मतदान करने में प्रमुख कारण रहा। देश के 8.3 करोड़ परिवारों को स्कीम का लाभ सीधे तौर पर अभी तक प्राप्त हो चुका है। इस योजना के कारण केंद्र तेल कंपनियों को हर एक कनेक्शन पर 1600 रुपये की सब्सिडी देती है। बीपीएल कार्ड परिवार इस योजना का लाभ सीधे तौर पर उठा सकते हैं। योजना का उद्देश्य महिलाओं को लकड़ी या उपले के धुएं से मुक्त कराना है।

## महिला शक्ति केंद्र योजना

22 नवंबर 2017 को महिला शक्ति केंद्र योजना को मंजूरी दी गई। इस योजना के साथ ही 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना', 'यौन उत्पीड़न वाली महिलाओं के लिए एक स्टॉप सेंटर योजना' और सात योजनाओं को भविष्य में बढ़ाने का निर्णय लिया गया। ग्रामीण भारतीय समाज में महिलाओं के सशक्तिकरण तथा भागीदारी बढ़ाने हेतु इस योजना को 2017 में लागू किया गया। ग्रामीण महिलाओं को सामाजिक तौर पर मजबूत करने के लिए तीन केंद्र बिंदु पर इस योजना में ध्यान दिया गया। लड़कियों को शिक्षित करना, रोजगार दिलाने एवं आत्मनिर्भर बनाने में भी मदद का कोई ढांचा तैयार करना इस महिला शक्ति केंद्र का प्रमुख लक्ष्य रहा। सरकार का लक्ष्य इस योजना में तीन लाख से ज्यादा छात्रों और एनसीसी छात्रों की भागीदारी के माध्यम से इस योजना को व्यापकता प्रदान करना था। इस प्रकार के छात्र छात्रों को बाद में प्रमाण पत्र भी देने की योजना पर भी कार्य किया गया। इस शक्ति केंद्र में महिलाओं से संबंधित केंद्र, राज्य और जिला स्तर की विभिन्न योजनाओं की जानकारी रखना तथा संबंधित महिला ग्रुप के पास उसके लाभ की पहुंच बनाना जैसे अनेक शामिल किए गए।

महिलाओं के लिए लगभग 150 वन स्टॉप सेंटर विभिन्न जिलों में स्थापित किए जायेंगे। ये केंद्र यौन उत्पीड़न के मामलों से बचे रहने में कारगर होंगे। उन्हें इन केंद्रों के तहत चिकित्सा, मनोवैज्ञानिक, कानूनी और पुलिस सुरक्षा प्रदान की जाएगी। महिला शक्ति केंद्र के माध्यम से महिलाओं की सुरक्षा एवं बाल कुपोषण, शिक्षा स्वास्थ्य तथा अधिकारों से सम्बंधित महत्वपूर्ण मुद्दों पर केंद्र और राज्य स्तरीय संस्थाएं अपेक्षित समन्वय से सहयोग प्रदान करेगी।

## सुकन्या समृद्धि योजना (2015)

यह योजना निम्न मध्यम वर्गीय परिवार की बेटियों के लिए एक सामाजिक सुरक्षा प्रदान करती है। इस योजना में 10 साल से कम आयु की लड़कियों की उच्च शिक्षा और शादी के लिए बचत करने के लिहाज से केंद्र सरकार द्वारा एक अच्छी निवेश योजना लाई गई है। सरकार समय-समय पर कर बचाने के लिए भी इस प्रकार की स्कीम के माध्यम से नागरिकों में समाजिक सुरक्षा कार्यक्रम लागू करती रही है। जो नागरिक शेयर मार्केट के जोखिम से दूर रहना चाहते हों और फिक्स्ड डिपॉजिट (एफडी) में गिरते ब्याज दर के कारण बचत योजना में भाग नहीं ले रहे हैं, उन सब के लिए अपने घर की लड़कियों के नाम पर सामाजिक सुरक्षा तथा सुकन्या समृद्धि सेविंग स्कीम बेहतरीन कदम साबित हो सकती है।

## समर्थ योजना

इस समर्थ योजना द्वारा 10 लाख युवा भारतीयों को 2017 से 2020 तक 3 साल की अवधि में कुशल बनाने का लक्ष्य रखा गया था। योजना को सफल बनाने के लिए 18 राज्यों के लगभग चार लाख युवा, विशेष तौर पर महिलाओं को 'समर्थ' योजना के तहत कुशल बनाने का लक्ष्य था। इस कार्यक्रम का उद्देश्य वस्त्र क्षेत्र से जुड़े लोगों को कुशल बनाना और क्षमता निर्माण करना है। 'समर्थ' स्कीम के तहत केंद्र ने 18 राज्य सरकारों के 7 समझौतों पर हस्ताक्षर किए तथा इस योजना को लागू करने के लिए बजट में 1300 करोड़ का प्रावधान भी किया गया था।

प्रधानमंत्री द्वारा घोषित इस योजना द्वारा स्त्रियों को अलग-अलग प्रकार के कपड़ा निर्माण इत्यादि के बारे में सिखाया जाता है। इस समय देश भर में वस्त्र उद्योग में 75 फ्रीसदी महिलाएं कार्य कर रही हैं। योजना का मुख्य उद्देश्य महिलाओं को वस्त्र उद्योग में तेज गति से प्रगति और बढ़ावा देना है। इस योजना का मुख्य फोकस महिला कामगारों को ट्रेनिंग तथा अन्य उपयोगी जानकारी देने पर ही है।

## सुरक्षित मातृत्व आश्वासन सुमन योजना

10 अक्टूबर 2019 को सुरक्षित मातृत्व आश्वासन सुमन योजना प्रारम्भ की गई। इस योजना के तहत देश में गर्भवती महिलाएँ एवं नए जन्मे बच्चों की सुरक्षा हेतु सरकार इन्हें स्वास्थ्य से जुड़ी सभी सेवा मुफ्त में प्रदान की जाएगी। भारत में गरीबी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं के अभाव के कारण देशभर की महिलाओं एवं बच्चों को सही स्वास्थ्य सेवाएं नहीं मिल पाती। इस योजना के माध्यम से महिलाओं एवं बच्चों को निःशुल्क स्वास्थ्य सेवाएं मिलेगी। सरकार ने विशेष तौर पर केंद्र सरकार की योजनाओं को सभी तक पहुंचाने के लिए इलेक्ट्रॉनिक तथा वेबसाइट के माध्यम से एक सफल प्रयोग किया है, और इस योजना के लिए भी सरकार द्वारा लाभ लेने वाले नागरिकों को आधिकारिक वेबसाइट [suman.nhp.gov.in](http://suman.nhp.gov.in) पर जाकर आवेदन की सुविधा उपलब्ध करवाई है, जिससे किसी प्रकार के बिचौलिए तथा भ्रष्टाचार को पनपने की गुंजाइश न रहे।

इस योजना में मिलने वाली सुविधाओं के तौर पर गर्भवती महिलाओं के प्रसव के दौरान अस्पताल एवं प्रशिक्षित नर्स उपलब्ध की जाती है। गर्भवती महिला के प्रसव के 6 महीने पश्चात तक और बीमार नवजात बच्चों को मुफ्त स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती हैं। प्रसव के पश्चात होने वाले सभी प्रकार के खर्चे इस योजना के द्वारा ही उठाए जाते हैं। साथ ही बच्चे और मां को 6 महीने तक मुफ्त दवाएं भी प्रदान की जाती हैं। इस योजना का मुख्य लक्ष्य महिलाओं को सुरक्षित मातृत्व की सुविधा प्रदान करना है। योजना सफलतापूर्वक लागू करने और निगरानी करने के हेतु भोपाल राज्य में इस योजना के लिए इंटीग्रेटेड कमांड और कंट्रोल सेंटर भी बनाया गया।

इस सरकार की योजनाओं के संबंध में एक विशेषता यह है कि सभी योजनाओं को लागू करने के संदर्भ में ऊपर से लेकर नीचे तक पूरा एक तंत्र तैयार किया गया है। ताकि योजना को सफलतापूर्वक लागू किया जा सके।

## प्रधानमंत्री मुफ्त सिलाई मशीन योजना 2022

इस योजना का प्रमुख उद्देश्य महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार करना है। योजना के अंतर्गत सरकार का देश में 50 हजार से ज्यादा महिलाओं को सिलाई मशीन देने का कार्यक्रम है। इस योजना का लाभ ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में रह रही गरीब महिलाओं को मुफ्त सिलाई मशीन देकर उनकी आर्थिक स्थिति में बदलाव करना है। मुफ्त सिलाई मशीन योजना का फायदा, आवेदन और पात्रता केवल वही महिलाएं उठा सकती हैं, जिनकी आर्थिक स्थिति खराब है तथा जिनकी वार्षिक आय 12 हजार रुपये या उससे कम है। देश में जो महिलाएं विधवा और विकलांग हैं वे ही इस योजना का फायदा उठा सकती हैं। योजना केवल 20 से 40 साल की महिलाओं के लिए रखा गया है।

## देश की अन्य विभिन्न केंद्रीय योजनाओं का महिलाओं पर प्रभाव

15 अगस्त 2014 को भारत के प्रधानमंत्री ने अपने भाषण में जनधन योजना, घोषित की थी तथा यह बताया कि देश के सभी नागरिकों का जिनका बैंक में खाता खोलने का लक्ष्य रखा गया है। उन्हें सरकार की सभी योजनाओं का

सीधा लाभ पहुंच सके और देश में सरकारी योजनाओं में चल रहे भ्रष्टाचार को खत्म किया जा सके। 8 मार्च 2021 को देश की वित्त मंत्री ने जनधन योजना के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण आंकड़ा जारी किया था। उसमें यह बताया गया कि जनधन योजना में खाता खुलवाने वालों में सबसे ज्यादा महिलाओं की संख्या है और इस जनधन योजना का सबसे ज्यादा फायदा और लाभ सीधे तौर पर देश की महिलाओं को प्राप्त हुआ है। जनधन योजना का 55 प्रतिशत खाता सिर्फ महिलाओं का नाम पर है। 24 फरवरी 2021 के ताजा आंकड़ों के अनुसार 41.93 करोड़ खोले गए खातों में 23.21 करोड़ खाते सिर्फ महिलाओं के हैं। जनधन खाता के तहत कुछ अन्य फायदे भी सीधे नागरिकों को मिल रहे हैं जिसमें रूपे कार्ड पर दो लाख का इंश्योरेंस भी सभी खाता धारकों को मिलता है तथा योजना के तहत 10 हजार रुपये ओवर ड्राफ्ट के तहत निकाला जा सकता है।

## प्रधानमंत्री मुद्रा योजना

24 फरवरी 2021 के अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर देश की वित्त मंत्री ने एक आंकड़ा जारी किया था तथा कहा था कि मुद्रा योजना का सबसे ज्यादा लाभ देश की महिला बिजनेसवुमन और महिला उद्यमियों को मिला है। मुद्रा योजना का लाभ में महिलाओं की भागीदारी 68 प्रतिशत या 19.04 करोड़ रहीं। मुद्रा योजना ने महिला आर्थिक सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका ग्रामीण क्षेत्रों तथा छोटे शहरों में अधिक हुआ है।

## निष्कर्ष

8 साल से महिलाओं के संदर्भ में बनी सभी योजनाओं, कार्यक्रमों और नीतियों का विश्लेषण से स्पष्ट है कि भारत में वर्तमान सरकार की तरफ से महिलाओं के हित में अनेक ऐसे कदम उठाए गए हैं, जिससे वे अपनी प्रगति का स्वर्णिम इतिहास रच सकें। 2019 में निर्वाचित लोकसभा में महिला सांसदों की अब तक की सर्वाधिक भागीदारी के साथ ही नई लोकसभा में महिला सांसदों की संख्या कुल सदस्य संख्या का 17% हो गई है। प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना के तहत 68% महिलाएं लाभार्थी रही हैं। अब देश की सेना में महिलाओं को स्थाई कमीशन तथा वर्तमान में सैनिक स्कूलों में भी लड़कियों का प्रवेश आरंभ कर दिया गया है। इस प्रकार हम निष्कर्ष और विश्लेषण के तौर पर कह सकते हैं कि महिला सशक्तिकरण के संदर्भ में सरकार गंभीरता से कार्य कर रही है।

## संदर्भ सूची

1. <https://jslps.org/beti-bachao-beti-padhao-bbbp-hindi/>
2. <https://jslps.org/beti-bachao-beti-padhao-bbbp-hindi/>
3. <https://jslps.org/beti-bachao-beti-padhao-bbbp-hindi/>
4. <https://www.spmrf.org/modi-government-committed-to-womens-empowerment/>
5. <https://www.sarkariyojnaye.com/pradhanmantri-mahila-shakti-kendra-yojana-pmmsk/>
6. <https://www.sarkariyojnaye.com/pradhanmantri-mahila-shakti-kendra-yojana-pmmsk/>
7. <https://www.financialexpress.com/hindi/india-news/all-you-need-to-know-about-modi-govt-samarth-scheme/1675719/>
8. सुरक्षित मातृत्व आश्वासन सुमन योजना 2022 <https://pmmodyojanaye.in/surakshit-matritva-aashwasan-suman-yojana/#:~:text=>

9. सुरक्षित मातृत्व आश्वासन सुमन योजना 2022 <https://pmmodiyojanaye.in/surakshit-matritva-aashwasan-suman-yojana/#:~:text>
10. सुरक्षित मातृत्व आश्वासन सुमन योजना 2022 <https://pmmodiyojanaye.in/surakshit-matritva-aashwasan-suman-yojana/#:~:text>



# आत्मनिर्भर भारत के लिए विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं नवाचार

प्रो. दिनेश मणि

प्रोफेसर, रसायन विज्ञान विभाग

इलाहाबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय

35/3, जवाहर लाल नेहरू रोड

जार्ज टाउन, प्रयागराज-211002

आज का युग विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के साथ-साथ नवाचार का युग है। जीवन के हर क्षेत्र में आज नवाचार की आवश्यकता है। नवाचार का क्षेत्र बहुत व्यापक और असीमित है। जब तक इस संसार में मानव का अस्तित्व है तब तक नवाचार की प्रक्रिया सतत रूप से चलती रहेगी। नवाचार एक नवीन और अपेक्षाकृत अच्छे उत्पाद या सेवा अथवा नए और अधिक कुशल या कम मूल्य का उत्पादन का तरीका है और उस उत्पाद को उत्पन्न करना या उस उत्पाद का इस्तेमाल या सेवा है। दूसरे अर्थों में नवाचार एक नये विचार का सफल संदोहन अथवा उपयोग है। नवाचार सीमित स्रोतों से अधिक उत्पादन या कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है।

वास्तव में समाज को कुछ स्थायी मूल्यों और तत्संबंधी उद्देश्यों की आवश्यकता है। परंतु, स्थायित्व और परिवर्तन दोनों आवश्यकताओं में एक दूसरे प्रकार से भी समाधान हो सकता है। सामाजिक नियन्त्रण के रूप में शिक्षा बालकों का व्यवहार समाज के अनुकूल बनाती है। प्रभुत्व संपन्न राज्य में व्यवहार का आयाम बहुत सीमित होगा और आलोचना का निषेध होगा। परंतु जनतांत्रिक समाज में समाज के अनुकूल के अर्थ में परिवर्तन की योग्यता और तत्परता दोनों सम्मिलित हैं। परंपरागत मूल्यों के हस्तांतरण तथा विवेक सम्पन्न व्यक्तियों के दो विरोधी प्रतीत होने वाले उद्देश्य क्रमशः एक ही क्रिया के अंग बन जाते हैं। इसके तीन कारण हैं- 1. जनतंत्र की परंपरा में विचारों और उनकी अभिव्यक्ति की अधिकतम स्वतंत्रता है, एवं आलोचना तथा परिवर्तन का आदर है। 2. जनतंत्र के मूल्यों में स्वयं जनतंत्र में भी सुधार की संभावनाओं पर दृष्टि रहती है और उसमें विश्वास होता है। 3. परिवर्तन का निर्देश करने वाली सामाजिक शक्तियां शासन के नियंत्रण में होती है और उनका कार्यान्वयन सर्वसम्मति से होता है। जैसे-जैसे जनतंत्र दृढ़ होता जाता है, वैसे ही वैसे शासक वर्ग द्वारा शक्ति के दुरुपयोग पर समाज का नियंत्रण अधिक होता जाता है।

आत्मनिर्भर भारत की वर्तमान आवश्यकताओं को देखते हुए आज नवाचार को न केवल गति प्रदान करने की जरूरत है बल्कि नवाचारी प्रतिभाओं को प्रारम्भ से ही पोषित प्रशिक्षित कर उन्हें हर स्तर पर सहायता देने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त नवाचार विषय को पाठ्यक्रम में शामिल करने की जरूरत है जिससे नवाचार को स्कूल स्तर पर प्रोत्साहित एवं समृद्धिकृत किया जा सके।

प्रत्येक क्षेत्र में कार्य करने के लिए शिक्षा का अपना विशेष महत्व होता है। शिक्षा से ज्ञान की प्राप्ति होती है जो मौलिक चिंतन को जन्म देती है। चिंतन सृजनात्मकता की जननी है। यही सृजनात्मकता नवाचार में रूपांतरित होती है। नवाचार एक बहुआयामी एवं विस्तृत अवधारणा है जिसमें विद्यमान उत्पाद, प्रक्रिया एवं प्रयोगों में इस प्रकार के सुधार

किये जाते हैं या नवीनताएं लायी जाती हैं जिससे उनकी उपयोगिता बढ़े, लागत में कमी आए, संसाधनों का लाभकारी प्रयोग हो, जोखिमों में कमी आए, जीवन-स्तर में वृद्धि हो और कुल मिलाकर राष्ट्र समृद्धिशाली बने। यद्यपि वैज्ञानिक चिन्तन के विकास ने हमारे दृष्टिकोण और मूल्यों को अधिक युक्तिपरक एवं तर्कसंगत बनाया है, जिससे सामाजिक जीवन में व्याप्त अनेकानेक अन्धविश्वास एवं आडम्बरों से मुक्ति भी मिली है किन्तु औद्योगिक समाज में सफलता के नवीन मानदण्डों ने जीवन के शाश्वत व मूलभूत मूल्यों को झकझोर दिया है। यह समाज में बहुत बड़े खतरे का द्योतक है।

किसी भी प्रकार की शिक्षा प्रणाली को अपनी सामाजिक उपयोगिता को जीवन्त बनाए रखने के लिए शिक्षा के क्षेत्र में सतत हो रहे परिवर्तनों पर नजर रखना जरूरी है। इन परिवर्तनों की अनदेखी करके शिक्षा प्रणाली में आवश्यक सुधार संभव नहीं है। अतः जीवन्त शिक्षा प्रणाली के लिए यह आवश्यक है कि हम समाज में हो रहे विभिन्न परिवर्तनों को दृष्टिगत रखते हुए समय समय पर अपेक्षित पुनरीक्षण के पश्चात एक ऐसी शिक्षा प्रणाली का विकास करें जो सामयिक चुनौतियों से निपटने के लिए सक्रिय समर्थ और कारगर हो।

वास्तव में समाज को कुछ स्थायी मूल्यों और तत्संबंधी उद्देश्यों की आवश्यकता है। परंतु, स्थायित्व और परिवर्तन दोनों आवश्यकताओं में एक दूसरे प्रकार से भी समाधान हो सकता है। सामाजिक नियन्त्रण के रूप में शिक्षा बालकों का व्यवहार समाज के अनुकूल बनाती है। प्रभुत्व संपन्न राज्य में व्यवहार का आयाम बहुत सीमित होगा और आलोचना का निषेध होगा। परंतु जनतांत्रिक समाज में समाज के अनुकूल के अर्थ में परिवर्तन की योग्यता और तत्परता दोनों सम्मिलित हैं।

वास्तव में शिक्षा न तो अपने आप ही कोई क्रांति लाएगी और न ही नैतिक व्यवस्था में परिवर्तन करेगी। उसकी भूमिका तो अनिवार्य रूप से प्रारंभिक और समर्थक होगी, लेकिन इसका महत्व भी इस दृष्टि से है कि यह हमें वैकल्पिक भविष्य की ओर अग्रसर होने में सहायता देती है। समय आ गया है कि अब हम उस भविष्य के बारे में गंभीरता से विचार करें और जीने के लिए एक नया अभिकल्प तैयार करें। भविष्य के समाज की बुनियाद निश्चित रूप से सेवा और बलिदान की भावना पर ही रखी जाएगी। वह उपभोग के महत्व को घटाएगी और सामाजिक सेवाओं पर बल देगी। हमें बहुत निष्ठा और स्पष्टता के साथ श्रम और सादगी की ओर जाना होगा। विकास पर पुनर्विचार करते हुए हमें जीवन के गुणात्मक आयामों पर भी विचार करना होगा और शिक्षा को नए सामाजिक लक्ष्यों के अनुकूल बनाना होगा।

शैक्षिक संरचना सामाजिक ढांचे का ही एक भाग है। यह कोई पृथक वस्तु नहीं है। तात्पर्य यह है कि राजनैतिक, आर्थिक एवं शैक्षिक उपसंरचनाएं परस्पर संबन्धित एवं परस्पर निर्भर हैं। शैक्षिक ढांचे को स्वरूप एवं शक्ति सामाजिक ढांचे से प्राप्त होती है और प्रतिष्ठा के रूप में शैक्षिक ढांचे सामाजिक ढांचे को बनाए रखने और उसमें संशोधन व परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

शिक्षा का मूलभूत उद्देश्य व्यक्ति की ऐसी स्वतंत्रता है जो उसके जीवन में पूर्णता की अनुभूति जगाए, सबके बीच समानता लाए, व्यक्तिगत उत्कृष्टता को बढ़ावा दे, व्यक्तिगत और सामूहिक आत्मनिर्भरता लाए और इन सबसे ऊपर राष्ट्रीय एकजुटता पर बल दे। शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जो हमारी जनता की आंतरिक शक्ति का निर्माण करे। नई पीढ़ी को यह पुरातन विरासत से अवगत कराएं और युवा पीढ़ी के समक्ष कला और सौन्दर्य के भण्डार खोले। यह भी केवल एक क्षेत्र या एक राज्य की विरासत तक ही सीमित नहीं रहना चाहिये। स्थानीय संस्कृति, स्थानीय भाषा, स्थानीय विरासत का संगम सारे देश की विरासत से, भारतीय संस्कृति और समृद्धि के साथ होना चाहिये।

शिक्षा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करती है। अतः इसको ऐसा होना चाहिये कि हमारे अतीत के सौन्दर्य को प्रकट कर हमारे वर्तमान को सर्वोत्कृष्ट बनाये और भविष्य के लिए हमारी राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास

की आकांक्षाओं और दिशाओं को ध्यान में रखे। सच तो यह है कि कोई भी देश अपनी शिक्षा प्रणाली से पूर्णतया संतुष्ट नहीं है और सुधार तथा संशोधन की प्रक्रिया लगातार जारी है।

शिक्षा इसलिए दी जाती है कि हम संचित ज्ञान प्राप्त कर सकें। एक तरह से इसका उद्देश्य लोगों को वह ज्ञान देना है जो हमारे पास है। यही हम आज कर भी रहे हैं, लेकिन हमें इससे आगे बढ़ना होगा। यही पर्याप्त नहीं है कि बच्चों को हम ज्ञान दें, कौशल सिखायें और ऐसी नैतिक एवं अन्य मान्यतायें उन्हें दें जो हमें विरासत में मिली है। अपनी शिक्षा प्रणाली के द्वारा हमें उनको भविष्योन्मुखी बनाना होगा ताकि वे केवल अतीत में ही खोये न रहे बल्कि भविष्य के प्रति भी सोचें। अपनी शिक्षा प्रणाली में ऐसा परिवर्तन करना सचमुच कठिन कार्य है। लेकिन यदि हम ऐसा नहीं कर पाये तो हम विकास की ओर एकबद्धता की प्रक्रिया को आवश्यक गति नहीं दे सकेंगे। भविष्योन्मुखी शिक्षा केवल विज्ञान और तकनीक प्रधान शिक्षा नहीं है, यद्यपि विज्ञान और तकनीक भी उसके अंग है। यह एक व्यापक अवधारणा है जिसके द्वारा हम नयी पीढ़ी को भविष्य की ऐसी दिशा दिखाना चाहते हैं कि वे देश के विकास और सुदृढीकरण को सही और व्यापक परिप्रेक्ष्य में देख सकें।

शिक्षा का उद्देश्य पढ़ने-लिखने तक ही सीमित नहीं हो सकता। इसका उद्देश्य और अधिक व्यापक होना चाहिए। इसका उद्देश्य चरित्र निर्माण, बच्चे के व्यक्तित्व का निर्माण, सांस्कृतिक विरासत, खेल-कूद, ललित कलाओं जैसे सदैव उपेक्षित, लेकिन व्यक्ति के विकास के लिए अधिक महत्वपूर्ण क्षेत्रों की तरफ ध्यान देना हो। हमें अपने सर्वोत्तम मानव संसाधनों को जुटाना होगा। हमें सर्वश्रेष्ठ बच्चों, सबसे अधिक प्रतिभावान बच्चों और उन क्षेत्रों का पता लगाना होगा जिनमें उनका सबसे अच्छा विकास हो सकता है। हमें उन्हें उनके विशेष गुणों का विकास करने का अवसर प्रदान करना है। हमने इस उद्देश्य से नवोदय विद्यालय का सुझाव दिया है। यह स्कूलों की ऐसी योजना है जो जिलों और गांवों में चल रहे पारम्परिक स्कूलों से कहीं बेहतर है और जो विशिष्ट वर्ग के स्कूलों से भिन्न हैं। हम समझते हैं कि गरीबों और समाज के सबसे कमजोर वर्गों को अच्छी शिक्षा उपलब्ध कराने की दिशा में हमारे द्वारा उठाया गया सम्भवतः यह पहला बड़ा समतावादी कदम है। यह समानता और गुणवत्ता के लिए उठाया गया कदम है। इसका उद्देश्य सबसे अच्छे बच्चों को सबसे अच्छी शिक्षा उपलब्ध कराना है चाहे उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि, आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक स्थिति कैसी भी रही हो।

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में नवाचार की अनेक संभावनाएं हैं जिस पर गहराई से विचार एवं कार्य करने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों जैसे विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, विद्युत, यातायात, दूर संचार, शिक्षा, चिकित्सा आदि में नवाचार की अनेक संभावनाएं हैं। इसके अलावा और भी ऐसे अनेक अन्वेषित/अज्ञात क्षेत्र हैं जिनमें नवाचार की आवश्यकता है। जब तक इस संसार में मानव का अस्तित्व है, तब तक नवाचार की प्रक्रिया सतत रूप से चलती रहेगी। आवश्यकता इस बात की है कि हम ऐसे क्षेत्रों की तलाश करें जिनमें अभी तक नवाचार नहीं हुए हैं और जो हमारी आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं।

आज विश्व के सभी विकासशील देशों में वैज्ञानिक जागरूकता बढ़ाने पर जोर दिया जा रहा है। इसलिए बचपन से ही हम अपने विद्यार्थियों में वैज्ञानिक मनोवृत्ति विकसित करने का प्रयास करें तो अवश्य ही हमारे विद्यार्थी आगे चलकर अच्छे वैज्ञानिक, आविष्कारक एवं नवाचारी बनने में सफल होंगे। देश के ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थियों में भी प्रतिभा की कोई कमी नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि इन छिपी प्रतिभाओं को निखारा जाये और समाज के समक्ष प्रस्तुत किया जाये।

आर्थिक विकास का मतलब किसी तरह का श्रेष्ठता नहीं है। आज हम आंकड़ों के आधार पर कहते हैं कि इस देश की प्रति व्यक्ति आय अधिक है तो वह अधिक विकसित है अतः हमसे बेहतर है। बेहतर होना तो इससे कहीं अधिक

व्यापक बात है, बेहतर होने का मतलब है कि हम क्या सोचते हैं, क्या अनुभव करते हैं। इसका संबंध हमारी पूरी संस्कृति और विरासत से है। हमें स्वयं को केवल आर्थिक प्रगति तक ही सीमित नहीं रखना है। शिक्षा क्षेत्र और अधिक व्यापक होना चाहिये। हमें अपने ज्ञान या पारंपरिक ज्ञान की उपेक्षा नहीं करनी है। जो ज्ञान हमें विरासत में मिला है उसको महत्वहीन नहीं माना जा सकता। दूर-दराज या पिछड़े क्षेत्रों में बसे हमारे लोग निरक्षर हो सकते हैं लेकिन हम यह नहीं कह सकते कि उनमें बुद्धि नहीं है। बुद्धिमान वे हैं, कमी है तो केवल साक्षरता की, औपचारिक शिक्षा की। यह व्यवस्था हमें मिल कर केवल साक्षरता की, औपचारिक शिक्षा की। अतः ऐसे उपाय करने होंगे कि औपचारिक शिक्षा कहीं उस बुद्धि और विवेक को समाप्त न कर दे जो हमारे लोगों में पहले से ही है। इस बुद्धि और विवेक को बनाये रखकर इस प्रकार औपचारिक शिक्षा द्वारा साक्षरता का प्रसार करना है कि लोग अंधविश्वास शोषण से मुक्त हो सकें। साक्षरता दासता से मुक्त होने का एक माध्यम है। साक्षरता से हमारे समाज की शक्ति बढ़ेगी। इसके द्वारा समाज में शोषण के प्रति विरोध की शक्ति बढ़ेगी। शिक्षा की उच्च गुणवत्ता बनाये रखने के लिए शैक्षिक गतिविधियों का संचालन आवश्यक है। इससे अध्यापन में सुधार होता है और मानव हित में अपने योगदान को याद कर शिक्षक प्रेरणा एवं प्रोत्साहन पाते हैं। जब उच्च लक्ष्य गहराई के साथ व्यावहारिक धरातल पर मिलते हैं तो श्रेष्ठता स्वयं दिखती है। किसी काम को श्रेष्ठता के साथ करने के लिए दृढ़संकल्प वाले प्रयत्न ही चाहिए। श्रेष्ठता सदैव ही समय, शक्ति, ध्यान तथा केन्द्रित प्रयत्न रूपी कीमत मांगती है।

‘नवाचार’ कोई नई अवधारणा नहीं है अपितु हमारी प्राचीन संस्कृति में युगों-युगों से समावेशित विचारधारा है। नवीनता के प्रति आकर्षण मानव मन की प्रवृत्ति है। प्रकृति के नव-नव रूपों के साथ-साथ व्यक्ति जीवन के अन्य क्षेत्रों में नवीनता की चाह करता है। एक जैसी दिनचर्या या एकरसता से व्यक्ति जब ऊब जाता है, तो वह नए की तलाश करने लगता है। जो नव या नवीन है, वह ताजा लगता है अतः नित नूतन में विश्वास करना मनुष्य का स्वभाव है।

नवाचार के द्वारा नये समाज के निर्माण में सृजनात्मक विचारों का महत्वपूर्ण स्थान है। समस्या हल करने की धुन, कठिनाइयों से न डरकर उनसे टक्कर लेने का साहस, कहीं से भी ज्ञान प्राप्त करने या सीखने का संकल्प और लीक से हटकर चल सकने की क्षमता, सृजनशीलता, आशावादिता-यही सब विशेषताएं तो चाहिए एक नवाचारी के लिए। चूंकि कोई भी नया विचार अक्सर अपरिपक्व होता है, वह थोड़े से विरोध से क्षतिग्रस्त हो सकता है, इसलिए नवाचारी में अदम्य साहस की अपेक्षा होती है। स्मरण रहे, बिना कल्पनाशीलता एवं संवेदनशीलता के सृजनशीलता संभव नहीं, अतः बच्चों से लेकर बड़ों तक, सभी को, कल्पनाशील होने की जरूरत होती है। अनुसंधान, आविष्कार सभी कुछ सृजनात्मक विचारों पर ही निर्भर करते हैं।

मानव जाति हमेशा ही बेहतर भविष्य का स्वप्न देखती रही है। भविष्य से संबंधित विचारों और तदनुरूप आशाओं से रहित मनुष्य की कल्पना करना असंभव है। यही कारण है कि अनसुलझी सामाजिक समस्याएँ और राजनीतिक अन्तर्विरोध आर्थिक प्रक्रियाओं, विज्ञान और संस्कृति का बढ़ता हुआ क्षेत्र और उसके साथ ही साथ उनके नियमन की वर्द्धमान कठिनाइयाँ, औद्योगिक तथा तकनीकी विकास के अवांछित परिणाम मनुष्य को भावी संभावनाओं पर विचार करने तथा उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों को दूर करने के मौलिक उपाय खोजने के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

वैश्विक समस्याएँ, समस्याओं का एक ऐसा समुच्चय है जो आज सारी मानवजाति के सम्मुख मौजूद है। यह सच है कि वैश्विक समस्याएँ समस्त मानवजाति की समस्याएँ हैं लेकिन इससे वे अपनी ठोस सामाजिक तथा वर्गीय विषयवस्तु से वंचित नहीं होती हैं। क्योंकि सर्वाधिक त्रुटिहीन वैज्ञानिक व तकनीकी तंत्र की सफलता भी ठोस आयामों और सामाजिक यथार्थ पर निर्भर करती है।

विज्ञान और तकनीकी मानव जीवन पर, उसकी चेतना और भावनाओं पर असाधारण प्रभाव डालती हैं। आज एक ऐसा नया सामाजिक और बौद्धिक वातावरण विकसित हो गया है, जिसके अन्दर अब मनुष्य जाति के भविष्य से संबंधित कई प्रश्न उठाये तथा हल किये जाते हैं। जब कभी ऐसे प्रश्न उठते हैं, तो विज्ञान और तकनीकी की नवीनतम उपलब्धियों से अधिकाधिक अपीलें की जाने लगती हैं और उनके उत्तर उन उपलब्धियों के प्रति विशिष्ट विचारों तथा स्वयं विज्ञान के प्रति विशिष्ट दृष्टिकोणों पर निर्भर होते हैं।

आज उन अनेक समस्याओं के बारे में पढ़ना और सुनना विचित्र अनुभूति पैदा करता है, जो कल नहीं थीं और जो विज्ञान और तकनीकी में हुई क्रांति के द्रुत विकास से उत्पन्न हुई हैं। कल तक जिन समस्याओं को विज्ञान जगत से कोसों दूर की कपोल-कल्पना समझा जाता था, वे या तो दैनिक जीवन की वास्तविकतायें बनती जा रही हैं या निकट भविष्य की सम्भाव्य वास्तविकता।

एक अनोखा और असीम भविष्य मनुष्य और मनुष्य जाति की प्रतीक्षा कर रहा है, बशर्ते कि विवेक और मानववाद की विजय हो। इसी तरह उस विशाल खाई का भी कोई अंत नहीं है, जिसमें व्यक्ति व मानवजाति बुराई और विनाश की शक्तियों के हावी होने पर गिर सकती है। यही कारण है कि वैश्विक विकास के विकल्पों का हमारा विश्लेषण केवल ऐतिहासिक आशावाद का ही नहीं, बल्कि एक अत्यंत यथार्थ संदेह, शंका और चिंता का भी अभिप्रेरक है।

अब प्रश्न यह उठता है कि समाज को किस प्रकार वर्तमान समस्याओं के प्रति संवेदनशील बनाए जिसके द्वारा उन समस्याओं का निदान भी संभव हो सके। इसके लिए यह अति आवश्यक है कि हम ऐसे साहित्य का प्रणयन करें जिससे हमारे बच्चों में वैज्ञानिक जागरूकता के साथ-साथ संवेदनशीलता के गुण अंकुरित हों और वे आगे चलकर सृजनशीलता के पथ पर अग्रसर होकर अपनी अनेक प्रकार की समस्याओं का हल स्वयं ढूंढकर एक स्वस्थ एवं सुन्दर समाज के निर्माण में अपना सहयोग दे सकें। सृजनशीलता मानव चिंतन का आधार है। सृजनशीलता की कोई सीमा नहीं है। सृजनशीलता से जीवन की दिशा बदलती है और यह सृजनशीलता मन की सुन्दरता से उत्पन्न होती है नयेपन और बदलाव को स्वीकार करना, विचारों और संभावनाओं से खेलना, नजरिए का लचीलापन, हर अच्छी चीज को और बेहतर बनाने के बारे में सोचते हुए उसे अपनाने की आदत सृजनशीलता की पहचान है। अपने काम को पूरी लगन से करते हुए धीरे-धीरे अपनी सोच के जरिए उसमें बदलाव और बेहतरी लाने का सिलसिला ही सृजनशीलता है।

सच्चे सृजनशील व्यक्ति हमें प्रेरित तो करते हैं किन्तु अपने विचार हम पर थोपते नहीं। वे समझने में हमारी मदद तो करते हैं, हमारी सोच को विकृत नहीं करते। जो चीज दूसरों को जैसी नजर आती है उसे वैसे ही देखते हुए उसके बारे में अलग ढंग से सोचना सृजनशीलता का महत्वपूर्ण अंग है। संवेदनशीलता, सृजनशीलता की जननी है। संवेदनशीलता हमें समस्याओं को गौर से और गहराई से देखने एवं सोचने को विवश करती है परन्तु कुछ व्यक्ति ही होते हैं जो इस पर ध्यान देते हैं और यहीं से सृजनशीलता का द्वार खुलता है।

यदि हम यह जान लें कि समय और संसाधनों का उपयोग कैसे किया जाए तो हम नई शक्ति और ऊर्जा के साथ वापस आ सकते हैं। अगर हम चिंता को एक तरफ रख सकते हैं और अगर हममें से हर कोई इस समय का उपयोग खुद को शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और अपनी क्षमताओं को बेहतर बनाने के लिए करे, तो यह देश को एक अलग तरह की गतिविधि और संभावना के दायरे में ले आयेगा जब मुश्किल हालात हमारे सामने आते हैं तो हम टूट सकते हैं या बुद्धिमान बन सकते हैं। सही विकल्प का चुनाव करके हम अपने लिए बेहतर अवसर की तलाश कर सकते हैं। हमें खुद को बेहतर बनाने की दिशा में काम करने की आवश्यकता है।

व्यक्ति की सक्रिय प्रकृति का विकास हमारा मुख्य ध्येय होना चाहिए। विश्व के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि रखना और श्रम की महत्ता को सर्वोपरि समझना दो ऐसी मूलभूत बातें हैं जो मनुष्य की योग्यता और उसकी प्रतिभा को साकार करती हैं।

इसके साथ ही शिक्षा के ऊँचे स्तर तथा व्यापक सांस्कृतिक विकास की पूर्वापेक्षा की जाती हैं, इसमें अनेक सामाजिक, नैतिक और मनोवैज्ञानिक गुण जैसे कामकाज में अनुशासन और आत्मानुशासन, आवश्यकताओं का सही-सही निरूपण, ईमानदारी, शालीनता, सामूहिकता, प्रेम और सच्चरित्रता, उत्तरदायित्व की भावना और भावनाओं की उदारता सम्मिलित है।

भावी मनुष्य तर्कबुद्धि सम्पन्न भी हैं और सहृदय भी, वह जिज्ञासु भी है और सक्रिय भी और साथ ही जो सुन्दर है, उसकी सराहना कर सकता है। वह मनुष्य की मूल शक्तियों तथा उसकी आध्यात्मिक व दैहिक पूर्णता की, असली एकता के आदर्श को साकार करने वाला सर्वांगीण रूप से विकसित एकीकृत व्यक्तित्व है। सामाजिक प्राणी के रूप में मनुष्य अपने इस अनूठे व्यक्तित्व से ही अपने स्वत्व को प्रकाशित करता है।

सामाजिक विकास ही वह चीज है, जो भविष्य में उन आदर्शों के अनुसार मनुष्य के और अधिक जैविक सुधार की समस्याओं को हल करना सम्भव बनायेगा, जिन्हें मनुष्य ने अपने सम्पूर्ण इतिहास में केवल कपोल कथाओं और कल्पनाओं में ही रचा है लेकिन भविष्य में वह विज्ञान और कला, विवेक और सौन्दर्य के बीच संश्लेषण के परिणाम रूप में उसकी पुष्टि करेगा।

मनुष्य के मस्तिष्क की असीम संभावनाओं पर विश्वास को ऐतिहासिक आशावाद के साथ मिलाने पर यह सोचना संभव हो जाता है कि मनुष्य का भविष्य वैसा ही अनन्त और असीम है जैसी कि उस प्रकृति की प्रज्ञा जिसने उसकी सृष्टि की है। लेकिन वह भविष्य अवश्यंभावी रूप से पूर्व निर्धारित नहीं है। वह मनुष्य द्वारा स्वयं बनाया जाता है, वह अपनी संस्कृति में और खास तौर से विज्ञान में निहित अति विपुल आध्यात्मिक क्षमता और विराट भौतिक शक्तियों को उपयोग में लाता है। वह कौन-सा मार्ग है जिस पर मानव विकास की भौतिक व आध्यात्मिक क्षमताओं का साकार होना प्रारम्भ होगा? यह भी बहुत हद तक मनुष्य के ज्ञान तथा उसके पद्धति विज्ञान और उसकी विश्वदृष्टि की सामान्य दूरगामी कार्य-नीति के सही वरण पर निर्भर करेगा।

आज की वैश्विक समस्याओं के सामाजिक, वैज्ञानिक, तकनीकी और मानववादी पक्षों के समाधान में मनुष्य जाति के सोदेश्य क्रियाकलाप ही हमें अपने सार्वभौमिक रूप से अनुकूल तथा वांछित लक्ष्य पर पहुंचा सकते हैं। वैश्विक समस्याओं का अंतिम समाधान स्पष्टतः तभी होगा, जब इन सभी पक्षों पर विवेकसम्मत यथार्थवाद तथा मानवजाति के भावी विकास की संभावनाओं के वैज्ञानिक निर्धारण की ऐसी स्थितियों तथा एकीकृत विधि से विचार किया जाये। मानवीय गुणों तथा क्षमताओं के तदनुरूप विकास से ही हमारे भौतिक सभ्य जगत को बदला जा सकता है, और इसकी विराट क्षमता को मानव जाति के हितार्थ उपयोग में लाया जा सकता है।

विज्ञान और तकनीकी का प्रभाव समाज पर पड़ता है। वे सामाजिक परिवर्तनों का स्वरूप निश्चित करते हैं और समाज में होने वाले परिवर्तन शिक्षा-पद्धति को प्रभावित करते हैं। इसलिए भविष्य की कल्पना करने के लिए हमें यह देखना होगा कि उस समय विज्ञान और तकनीकी का स्वरूप उनके आज के रूप से किस प्रकार भिन्न होगा और उनसे समाज में किस प्रकार की प्रतिक्रियाएं उत्पन्न होने की संभावनाएं हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी आज जिस रूप में हमारे सामने है, वे एक ऐतिहासिक प्रक्रिया की उपज है, उनका वर्तमान रूप विशेष प्रकार की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में हुए उनके विकास का ही परिणाम है। उनके साथ हम जिस समाज व्यवस्था को संबद्ध देखते हैं, वह कोई अनिवार्यता नहीं है। यदि इनका मौलिक और प्रवर्तनकारी ढंग से संचालन किया जाए तो उन्हें अधिक मानवीय बनाया जा सकता है और वे बेहतर ढंग से मानवजाति की सेवा कर सकते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आज समाज में ऐसा वातावरण बनाने की आवश्यकता है जो नवाचार को प्रोत्साहित करने में सहायक हो। यह आंदोलन तकनीकी विकास और शिक्षा दोनों का समन्वयन करते हुए चलाना होगा। यथास्थिति

और यथासंभव में मग्न न रहकर जीवन में उत्साहित और प्रेरित होते रहने से नित नवीन चिन्तन के द्वारा नये-नये सृजनात्मक विचारों का जन्म व पोषण होता रहेगा।



# धर्मशास्त्रीय अवधारणाओं के शोधकार्यों का सर्वेक्षण

आरुषि निगम

शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय

ई-मेल: [arooshinigam@gmail.com](mailto:arooshinigam@gmail.com),

सुभाष चन्द्र

सह-आचार्य, संस्कृत विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय

ई-मेल: [schandra@sanskrit.du.ac.in](mailto:schandra@sanskrit.du.ac.in)

**सार-** वैदिक सभ्यता एवं संस्कृति सर्व प्राचीन मानी जाती है। कोई भी समाज विभिन्न सामाजिक नियमों के पालन एवं प्रबन्धन से ही समुचित विकास को प्राप्त करता है। भारतीय समाज का प्रारम्भ वैदिक काल से माना जाता है। भारत की सर्व प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति की झलक हमें वेदों में दृष्टिगोचर होती है। तत्कालीन समाज का प्रबन्धन आवश्यक सामाजिक कार्यों एवं उत्तरदायित्वों के समुचित विभाजन के आधार पर होता है। समाज की परिकल्पना वैदिक काल में ही प्रारम्भ हो चुकी थी। यद्यपि समाज भिन्न भिन्न जिम्मेदारियों के आधार पर विभिन्न वर्गों में विभाजित हो चुका था तदपि धर्मशास्त्र काल में इसका संवैधानिक रूप एवं दस्तावेजीकरण किया गया। धर्मशास्त्र संस्कृत ग्रंथों की एक शैली है जिसमें धर्म व धर्मोचित सामाजिक अवधारणाएँ पारिवारिक विधि-विधान सभ्यता, संस्कृति प्रत्येक मनुष्य के लिए निर्धारित दिनचर्याएँ कर्मकाण्डी प्रक्रियाएँ आदि पर ग्रन्थ शामिल हैं। विभिन्न धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों जैसे मनुस्मृति, आपस्तम्बधर्मसूत्र आदि में वर्णित विभिन्न सामाजिक नियमों के आधार पर राजा शासन करता था एवं समाज को प्रबन्धित करता था। मनुष्य एवं समाज के समुचित विकास के लिए जिन- जिन प्रकार की जरूरतों की आवश्यकता पड़ती थी, उन सबका वर्णन इन ग्रन्थों में प्राप्त होता है। समाज के विभिन्न उत्तरदायित्वों को धर्म नाम से सम्बोधित किया गया। धर्मशास्त्र में सभी स्मृतियाँ सम्मिलित हैं। इन ग्रन्थों में सृष्टि की उत्पत्ति, संस्कार नित्य और नैमित्तिक कर्म, आश्रमधर्म, वर्णधर्म, संस्कार, राजधर्म व प्रायश्चित आदि विषयों का उल्लेख है। ये सभी विषय मनुष्य एवं समाज के लिए आवश्यक हैं। इनके बिना व्यक्ति तथा समाज का विकास भी सम्भव नहीं है। समय- समय पर विभिन्न विद्वानों ने धर्मशास्त्रों एवं धर्मशास्त्रीय अवधारणाओं पर विभिन्न कार्य प्रस्तुत किए हैं। इस क्षेत्र में संस्कृतज्ञों के अतिरिक्त इतिहासकारों राजनैतिक वैज्ञानिकों समाजशास्त्रीयों दार्शनिकों विभिन्न भाषाओं के साहित्यकारों कानून तन्त्र का अध्ययन करने वाले आदि सभी विद्वतजनों ने धर्मशास्त्र के विभिन्न आयामों पर अलग-अलग प्रकार से दृष्टिपात किया और शोधकार्यों एवं शोधपत्रों के रूप में प्रस्तुत किया। प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य धर्मशास्त्र से सम्बन्धित विषयों पर अब तक हुए प्रमुख कार्यों का एक संक्षिप्त एवं आलोचनात्मक सर्वेक्षण प्रस्तुत करना है। पूर्व में किये गए इन सर्वेक्षणों के माध्यम से आगे आने वाले शोधार्थियों को उचित मार्गदर्शन अन्तरानुशासनात्मक रिसर्च की प्रेरणा व प्रोत्साहन प्राप्त होगा तदनन्तर नवीन शोध की धारा प्रवाहित होगी।

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति में धर्म एवं धर्म के प्रभाव तथा धार्मिक अवधारणाओं से कोई भी विद्वान अनभिज्ञ नहीं है। अनादि काल से लेकर तत्कालीन आधुनिक समय तक हमारे समाजए साहित्य एवं सांस्कृतिक विकास में धर्म का प्रभाव स्पष्टरूपेण दृष्टिगोचर होता है। भारतीय सामाजिक और राजनैतिक परिवेश में ऋत् सत्य, अहिंसा आदि तत्त्वों को समाविष्ट करने से यह प्रमाणित होता है की भारतीय संस्कृति में वैदिक एवं धार्मिक विचारधारा आज भी प्रवाहमान है। समाज में विभिन्न जातियों, पन्थों, नस्लों, धार्मिक समूहों तथा सामाजिक- आर्थिक पृष्ठभूमि के लोग शामिल हैं। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपनी संस्कृति पारिवारिक परम्पराओं एवं स्वगत मानदण्डों का अभ्यास करता है। स्वामी विवेकानन्द (Ramakrishnan, 2016) का विचार है कि भारत प्राचीन ही नहीं पवित्र है यह पुण्य भूमि है। भौगोलिक दृष्टि से भारत का विभाजन शहरी, ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों के आधार पर किया गया है (Tiwari & Sharma, 2002) तो समाजिक दृष्टि से भारत का वर्गीकरण वर्ण, आश्रम, विभिन्न धर्मों, भाषा वैविध्य आदि के आधार पर किया गया है। भारत की सांस्कृतिक परम्पराएँ सबसे प्राचीन एवं समृद्ध मानी जाती है। प्राचीन काल से ही भारत सभ्यता निर्माण, समाजिक विकास और सामुदायिक जनजीवन की एक विशिष्ट परम्परा का प्रतिनिधित्व करता आया है। विभिन्न सामाजिक व न्यायिक गतिविधियों से सम्बन्धित धर्मशास्त्र की एक सुदीर्घ परम्परा है। भारत में सबसे प्राचीन आचार व न्यायिक उद्धारण धर्मसूत्रों में निहित हैं (Diwan & Diwan, 2001)। प्राचीन काल से ही धर्म शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है। धर्म शब्द संस्कृत के “धृ” धातु से बना है जिसका अर्थ है धारण अथवा पालन करना या सहारा देना (Kane 1962 एवं काणे, 1992)। धर्म शब्द की सर्वप्रथम अवतारणा वेदों एवं वैदिक साहित्य में होती है। धर्म भारतीय दर्शन और आचार में केन्द्रीय महत्व की एक प्रमुख अवधारणा है। वेद में “धर्मन्” शब्द का उल्लेख 56 बार हुआ है। विशेष रूप से ऋग्वेद में धर्म शब्द धार्मिक विधियोंए धार्मिक क्रिया संस्कारों, आचरण नियम, निश्चित सिद्धान्त, दीर्घकालीन स्थापित परम्पराएँ एवं व्यवस्थाओं आदि के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है (Kane 1962 एवं काणे, 1992)। वेदों ने न केवल मानव जाति के लिए अच्छी तरह से मध्यस्थ कौशल प्रदान किया बल्कि मानव जीवन के लिए उपयुक्त लक्ष्य और उद्देश्यों को भी निर्धारित किया है। तदनन्तर सामाजिक प्रवृत्तियों, प्रथाओं और धार्मिक धारणाओं सहित एक सांस्कृतिक विचारधारा स्थापित हुई जिसे धर्म कहा जाता था। धर्म के कर्मकाण्डी, दार्शनिक और दृश्य पहलू मूलतः वेदों एवं पुराणों से प्रभावित थे। धर्म भारतीय सभ्यता की मौलिकता का परिचायक है तथा इसकी अवधारणा भारतीय जीवन शैली की बुनियाद मानी जाती है। आपस्तम्भ के अनुसार धर्म उचित अनुष्ठान की प्रक्रिया है। धर्म से सम्बन्धित ग्रन्थों में प्रस्तुत संक्षिप्त कथन धर्मसूत्र कहलाते हैं। धर्मसूत्रों में “आपस्तम्भ”, “बौधायन”, “गौतम”, “वशिष्ठ”, “हिरण्यकेशी”, “हारीत”, “वैखानस” एवं “शंखलिखित” धर्मसूत्र विशेष प्रसिद्ध एवं मान्य हैं (चौबे एवं मिश्रा, 2005)। इस समस्त सूत्र साहित्य में धर्मशास्त्र का व्यापक विवरण तथा विश्लेषण हुआ है। आचारए विधि-नियम तथा क्रिया संस्कारों की विधिवत चर्चा करना ही इन सूत्रों का मुख्य उद्देश्य है। सामान्यतया धर्मसूत्र स्मृतियों की पूर्व पीठिका के रूप में प्रसिद्ध हैं (चौबे एवं मिश्रा, 2005) कौटिल्य का अर्थशास्त्र व अन्य सम्बन्धित ग्रन्थ जैसे कामन्दकीय नीतिसार, सोमदेव सूरी विरचित नीतिवाक्यामृत आदि ग्रन्थ भी धर्मशास्त्रीय अवधारणाओं को अधिक सुदृढ़ बनाते हैं। धर्मसूत्रों की कालावधि के पश्चात धर्मशास्त्रों का काल प्रारम्भ होता है। भारतीय शास्त्र परम्परा में धर्मशास्त्रों को सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, न्यायिक, आर्थिक, दार्शनिक, धार्मिक आदि परम्पराओं के प्रबन्धन का एक विपुल शास्त्र माना जाता है। किसी भी समाज का समुचित विकास बिना नियम विनियमों के असम्भव है। इन्हीं नियमों का विस्तृत प्रलेखन धर्मशास्त्र काल में हुआ। स्मृतिशास्त्रों के काल में धर्म की जड़ें और अधिक गहरी होती हैं। प्राचीन संस्कृत साहित्य में स्मृतियों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। अद्यतन 20 स्मृतियाँ हमें उपलब्ध हैं परन्तु सबसे प्रामाणिक मानी जाने वाली स्मृतियाँ हैं मनुस्मृति याज्ञवल्क्य स्मृति एवं नारद स्मृति। वैदिक धर्म हिन्दू समाज तथा भारतीय सभ्यता का मुख्य संचालन स्मृतियों द्वारा ही होता है (चौबे

एवं मिश्रा, 2005)। इहलौकिक सुख समृद्धि एवं पारलौकिक ऐश्वर्यए मानवता का अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि सदा से ही धर्मशास्त्रों का लक्ष्य रहा है। सामान्य भाषा में धर्मशास्त्रों को साधन प्रणाली, आचार संहिता अथवा जीवन पद्धति शास्त्र भी कहा जाता है। स्मृतियों के वर्ण्य विषय अत्यधिक विस्तृत एवं व्यापक है। इनमें वर्ण व्यवस्था, अर्थ व्यवस्था, पुरुषार्थ, नित्य, नैमित्तिक, सामान्य, उपासना, काम्य, निषिद्ध कर्म, कर्म विपाक, वर्णाश्रम धर्म, भोजन- शयन- शौच विधि, षोडश संस्कार, स्वाध्याय, पञ्चमहायज्ञ, पाप-पुण्य, तीर्थ, व्रत, दान, सदाचार, प्रतिष्ठा, शासन व्यवस्थाए, राजधर्म, कर प्रणाली, दण्ड विधान, कार्य अनुबन्ध नियम, न्यायपालिका प्रणाली, दाय विभाग, स्त्रीधन, पुत्र भेद मीमांसा, प्रायश्चित, मोक्ष प्राप्ति के साधन आदि का वर्णन किया गया है (Olivelle, 2004)। प्रत्येक स्मृति बृहद तौर पर तीन भागों में विभाजित है: आचार, व्यवहार एवं प्रायश्चित (Dhole, 2017)। उपरोक्त सभी उपविषय इन्हीं 3 विभाजनों के अन्तर्गत आते हैं। इन समस्त धर्मशास्त्रीय अवधारणाओं पर अब तक किये गए शोधकार्यों के सर्वेक्षण पर विस्तार से इस शोधपत्र के चौथे अनुभाग में प्रकाश डाला गया है।

### प्रेरणा एवं उद्देश्य

धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में विषयों की एक विस्तृत श्रृंखला को समाहित किया गया है। इन ग्रन्थों का व समस्त धर्मशास्त्रीय अवधारणाओं का अध्ययन न केवल संस्कृत विद्वानों द्वारा अपितु विश्वभर के इतिहासकारों, समाजशास्त्रियों, राजनैतिक वैज्ञानिकों, अर्थशास्त्रियों, कानून विशेषज्ञों, आयुर्वेदाचार्यों, प्रबन्धन विशेषज्ञों, विभिन्नविज्ञान विशेषज्ञों एवं भाषाविदों द्वारा भी किया जाता है। सभी क्षेत्रों के ज्ञान-विज्ञान से परिपूर्ण होने के कारण धर्मशास्त्रों की महत्ता सर्व सम्मत है। समय-समय पर सम्पूर्ण विश्व से विभिन्न विद्वानों ने धर्मशास्त्रों एवं धर्मशास्त्रीय अवधारणाओं पर अपने- अपने क्षेत्र एवं अपनी क्षमताओं के अनुसार अनेकानेक अनुसंधानात्मक कार्य प्रस्तुत किए हैं। इस क्षेत्र में सभी विद्वतजनों ने धर्मशास्त्र के विभिन्न पहलुओं पर भिन्न-भिन्न प्रकार से दृष्टिपात किया और शोधकार्यों एवं शोधपत्रों के रूप में प्रस्तुत किया है। यद्यपि देश-विदेश में हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी आदि भाषाओं में धर्मशास्त्र के सम्बन्धित विषयों पर हुए शोध अवश्य उपलब्ध हैं तथापि उन सभी शोधों का मौलिक एकत्रीकरण व सम्पूर्ण सूचीकरण पूर्णतः अप्राप्य है। प्रस्तुत शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य धर्मशास्त्र से सम्बन्धित विषयों पर अब तक हुए प्रमुख कार्यों का एक संक्षिप्त एवं आलोचनात्मक सर्वेक्षण प्रस्तुत करना है। पूर्व में किये गए इन सर्वेक्षणों से भावी शोधार्थियों को उचित मार्गदर्शन, सम्बद्ध विषयों पर सुव्यवस्थित चर्चा, नए शोध की प्रेरणा व पूर्व पठित अवधारणाओं पर विभिन्न दृष्टियों, नई धारणाओं और नवीन आयामों पर कार्य करने की दिशा मिलेगी। इस प्रकार धर्मशास्त्र के क्षेत्र में सम्भवतः नवीन शोध की धाराओं का प्रवाह हो सकता है। इस प्रकार के सर्वेक्षण से यह भी ज्ञात होता है कि धर्मशास्त्र को आधार बनाकर विभिन्न अन्तर्विषयों से सम्बन्धित विभिन्न कार्य किए जाने की सम्भावना है।

### प्रस्तुत शोध-सर्वेक्षण का आधार एवं शोधप्रविधि

धर्मशास्त्रों पर अभी तक देश-विदेश में अनेकों कार्य सम्पन्न हो चुके हैं। प्रमुख धर्मशास्त्रों पर तुलनात्मक, समीक्षात्मक, विवरणात्मक व धर्मशास्त्रों के सैद्धांतिक एवं गुणात्मक पक्षों पर अनवरत शोध किया जा रहा है। यद्यपि सर्वेक्षण में सभी सम्बन्धित कार्यों का उल्लेख करना अपेक्षित होता है परन्तु एक शोधपत्र में सभी शोधकार्यों को समाहित करना सम्भव नहीं हो सकता है। अतः इस शोधपत्र में केवल प्रमुख सामाजिक संस्थाओं जैसे वर्णव्यवस्था, आश्रम, संस्कार, पुरुषार्थ आदि विषयों पर पूर्व में हुए शोधकार्यों का विस्तृत सर्वेक्षण किया गया है। इस शोधपत्र में वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं गुणात्मक अनुसंधान की विधियों का प्रयोग किया गया है जिनमें द्वितीयक अथवा सहायक स्रोतों का अध्ययन भी शामिल है। मात्रात्मक और गुणात्मक अनुसंधान पद्धति का उद्देश्य डेटा संग्रह का अवलोकन और निर्माण

करना है। अतः अध्ययन को सुसंगठित एवं बहुआयामी बनाने के लिए इस शोधपत्र में ऐतिहासिक और तुलनात्मक दोनों पद्धतियों का उपयोग किया गया है।

## धर्मशास्त्रीय अवधारणाओं पर हुए शोधकार्यों का सर्वेक्षण

1. **वर्णाश्रम धर्म** : प्राचीन भारतीय समाज की सबसे छोटी प्रशासनिक इकाई परिवार थी इसको कुल के नाम से भी जाना जाता है। समाज के विकास के साथ ही साथ समाजिक जिम्मेदारियों को वहन करने वाले नागरिकों के आधार पर समाज को चार वर्णों में विभक्त किया गया। भारतीय सभ्यता में मानव जीवन को सभ्य, सुसंस्कृत एवं सुनियोजित बनाने के लिये वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था की गई है। सम्पूर्ण समाज की रचना चार वर्णों; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं चार आश्रमों; ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास के माध्यम से की गई है। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य आदि सभी धर्मशास्त्रों में वैदिक- आर्य- सनातन- हिन्दू धर्म, वर्णाश्रम धर्म, वर्णों की उत्पत्ति, प्रत्येक वर्णों के लिए निर्धारित कर्म एवं दायित्व मानव आचरण एवं घरेलू अनुष्ठानों (Elder, 2006) आश्रम व्यवस्था का संक्षिप्त परन्तु सटीक वर्णन किया गया है (चौबे एवं शुभ्रा, 2005)। द्विवेदी (2018) ने वर्ण की शास्त्रीयपरक परिभाषा सहित वर्ण और हिन्दू विवाह वर्ण और सामाजिक भ्रष्टाचार तथा वर्णों का हिन्दू देवताओं से सम्बन्ध प्रत्येक वर्णों के व्यक्तियों के लिए वर्णित कर्तव्य आदि का विवरण दिया है। कालान्तर में इन्हीं वर्णों से जाति का प्रणयन हुआ। इसी व्यवस्था पर आधारित (सक्सेना एवं इन्दोलिया, 2011) का शोध बहुत ही महत्वपूर्ण है जिसमें वर्ण, जाति एवं कुल की विशिष्टताएँ, गुण और सम्भावनाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। साथ ही साथ यह वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति के पाँच मूल सिद्धांतों का भी विस्तृत वर्णन करता है। इसके अतिरिक्त वर्ण और जाति के गुणात्मक विश्लेषण व तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में वर्ण की महत्ता भी प्रतिपादित करता है। संस्कृत साहित्य में चारों वर्णों की अपेक्षा ब्राह्मण वर्ण को सर्वोत्तम बताया गया है। प्राचीन काल से ही समाज में इनकी स्थिति सबसे अधिक सम्मानित थी तथा अध्ययन-अध्यापन का विशेष अधिकार भी ब्राह्मण वर्ण को ही दिया गया था। पारम्परिक ब्राह्मणवादी समाज में ब्राह्मणों की स्थिति तदनन्तर भारतीय राजनीति में ब्राह्मण संस्था (Elder, 2006) संस्कृति का संवर्धन तथा शिक्षण के क्षेत्र में द्विजों की भूमिका इन विषयों के परिप्रेक्ष्य में अनिरुद्धकुमार (2014) का शोधप्रबन्ध श्लाघनीय हैं। वेदों से लेकर स्मृतियों तक प्राचीन संस्कृत साहित्य में शूद्रों को निम्न वर्ण माना गया है। आचार्य मनु शूद्रों को सेवक मात्र बतलाते हैं। मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मणादि तीन वर्णों की सेवा सुश्रुषा करना ही शूद्रों का एकमात्र धर्म है। कौटिल्य ने शूद्रों को आर्य समुदाय का अभिन्न अंग माना है। वैदिक काल में शूद्रों की दयनीय स्थिति मध्यकाल के आने तक किस प्रकार परिवर्तित होती है इसका सम्पूर्ण निदर्शन हमें जयसवाल (1980) के शूद्रों का कालक्रम से समाजशास्त्रीय शोधपरक अध्ययन से प्राप्त होता है। हिन्दू सामाजिक संगठन में जिस प्रकार सामाजिक सुचारिता हेतु कर्मकाण्ड आधारित वर्ण व्यवस्था की महत्ता प्रतिपादित है उसी प्रकार धर्मगत आश्रम व्यवस्था की अवधारणा भी प्राचीन धर्मशास्त्रों में अत्यन्त प्रसिद्ध है (Jayapalan, 2001)। अर्थशास्त्रनुसार चारों वर्णों एवं आश्रमों के कर्तव्यों का दृढ़ पालन “स्वर्ग की ओर ले जाता है” तथा “अनन्त आनन्द देने वाला होता है” (Chander, 2015)। वृद्धावस्था में मनुष्य के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का क्षय होना स्वाभाविक ही है। आयुर्वेद, सुश्रुतसंहिता, चरकसंहिता, स्मृतियाँ, पातञ्जल योगदर्शन, उपनिषद् आदि वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम को धारण करने वाले वृद्धजनों के लिए उपयुक्त जीवन पद्धति एवं अष्टाङ्ग योग का उपदेश देते हैं। वृद्धावस्था में भारतीय जीवन शैली व भारतीय स्वास्थ्य प्रणाली, स्वास्थ्य वृत्ति के लिए जीवनशैली में बदलाव, आध्यात्मिक- मानसिक- सकारात्मक स्वास्थ्य वर्धन हेतु दिनचर्याएँ ऋतुचर्य, आहार, व्यायाम और सदाचार पर बल देता है (Tiwari &

Pandey, 2013)। इसी प्रकार रवीश (2014) का शोधपत्र भी आश्रम व्यवस्था के चातुर्थ्य को परिलक्षित करता हुआ वृद्धावस्था और भारतीय संस्कृति, जीवन चक्र की धारणा, स्वास्थ्य प्रणालियों का संगठन, अंतर पीढ़ी सम्बन्ध, पारिवारिक जीवन की प्रकृति आदि विषयों पर प्रकाश डालता है। भारतीय वैदिक संस्कृति में प्रचलित आश्रम व्यवस्था की तत्कालीन समाज में प्रासंगिकता को दर्शाने में सारदा एवं अन्य (2018) ने एक नई दिशा प्रदान की है। भारतीय आश्रम प्रणाली एवं मास्लो के अध्ययन का तुलनात्मक दृष्टिकोण प्रदान करता है। यह अनुसन्धान मास्लो द्वारा किए गए अध्ययनों के लिए समग्र सार्वभौमिक दृष्टिकोण, अध्यात्मवाद तथा मनोवैज्ञानिक आयाम प्रदान करता है।

2. **राजनीति, शासन और राजधर्म :** प्राचीन भारत की प्रशासन प्रणाली को हिन्दू न्यायशास्त्र के ग्रन्थों में खोजा जा सकता है जिनमें शासित वैश्विक समाज और कानूनी व्यवस्था की विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। नाथ (2019) ने संस्कृत शास्त्रों में सर्व प्रयुक्त होने वाली कानूनी शब्दावली प्रस्तावित की है। मनुस्मृति याज्ञवल्क्य अर्थशास्त्र शुकनीति आदि सभी धर्मशास्त्रों में राजधर्म मुख्य वर्ण्य विषय रहा है। राजधर्म के अन्तर्गत आने वाले प्रमुख उपविषय जैसे राज्य एवं राष्ट्र की अवधारणाएँ धर्म की अवधारणाएँ, शासन कला, शासक के कर्तव्य, प्रजा तन्त्र या जनसुख (नाथ, 2019), मौलिक अधिकारों का सामाजिक दर्शन शासन की कला और विज्ञान, निर्वाचन सुधार, राष्ट्रीय एकता, धार्मिक अल्पसंख्यक व धर्मनिरपेक्षता, योगक्षेम एवं पञ्चायती राज आदि का विस्तृत निदर्शन प्राप्त होता है (Sankhder, 2003)। पारम्परिक भारतीय संस्कृति और प्रशासन की कला ने शान्तिपूर्ण और सामंजस्यपूर्ण सामाजिक व्यवस्थाएँ न्याय प्रदान करने, भ्रष्टाचार की जाँच, नागरिक भागीदारी, सन्तुलित पर्यावरण को बनाए रखने तथा सामूहिक कल्याण पर जोर दिया गया है। प्राचीन हिन्दू ब्राह्मणवादी प्रणाली में सुशासन विशेष रूप से धर्म एवं योगक्षेम की अन्योन्याश्रयता पर आधारित था (नाथ, 2019)। कौटिल्य प्रणीत अर्थशास्त्र कानून और व्यवस्थाएँ राजनैतिक और सत्तावाद, कानून के शासन की स्थापना और विस्तृत कानूनी ढाँचे, भ्रष्टाचार की रोकथाम, मानव संसाधन प्रबन्धन व योग्यता के साथ व्यापक रूप से सम्बन्धित है। कानून और व्यवस्था, न्यायिक प्रणाली, अपराधियों के लिए दण्ड आदि इसी प्रकार के निर्गमों का मनु और अन्य स्मृतियों में भी विस्तार से वर्णन किया गया है। मनुस्मृति राजनीतिक परिदृश्य, कानून व शासन प्रणाली के संगठनात्मक दर्शन का एक प्रतीक मानी जाती है। मनुस्मृति में दण्ड धर्म से श्रेष्ठ है। धर्म दण्ड की शक्ति के उपयोग को वैध बना सकता है। राज्य धर्म का प्रवर्तक है लेकिन दण्ड के माध्यम से धर्म की रक्षा करता है (Meena, 2005)। हलदर एवं जयशंकर (2019) ने मनुस्मृति में पाए गए आपराधिक न्याय सिद्धान्तों का महत्वपूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत किया है। गीता, महाभारत, रामायण, अर्थशास्त्र, मनुस्मृति, अत्रिस्मृति, शान्तिपर्व व भगवद्गीता आदि के आधार पर प्राचीन भारत के प्रशासन की व्यवस्थाएँ शासन के आदर्शों तथा प्राचीन भारतीय शासकों के शासन कला का गठन करने वाले मुख्य तत्वों जन-केन्द्रित, न्यूनतम भ्रष्टाचार, संवेदनशीलता, पर्यावरण के अनुकूल गतिविधियाँ, वैश्विक समाज आदि का वर्णन नाथ (2019) ने बखूबी किया है। धर्मशास्त्रों में राजा के अपेक्षित लक्षण, आचार-विचार व किसी भी नेता के लिए अपेक्षित गुणों एवं विभिन्न स्थितियों में उसका व्यवहार आदि पर विस्तृत चर्चा प्राप्त होती है। मनुस्मृति में राजा को धर्मराज, तेजस्वी, अग्नि तुल्य एवं प्रजा का रक्षक बताया है। अत्रि स्मृति (श्लोक- 28) में कहा गया है कि दुष्टों को दण्ड देना, सदाचारी का सम्मान करना, न्यायपूर्ण तरीकों से राजकोष को समृद्ध करना, वादकारियों के प्रति निष्पक्ष होना और राज्य की रक्षा करना ये पाँच यज्ञ हैं अर्थात् शासक द्वारा किए जाने वाले निस्वार्थ कर्तव्य हैं। सिवाकुमार एवं राव (1996) के अनुसार दृढ़ता, नम्रता, धैर्यता, सुसंगति, अहिंसात्मक, आत्म-संयम, सार्वभौमिक भलाई की भावना, समान मानसिकता, अलोभ, न्याय की भावना, बुद्धि में तीक्ष्णता, ऊर्जावान, उदारता, समयनिष्ठता यह सभी एक सम्मादरित



राजा के अपेक्षित गुण हैं। प्रसिद्ध भारतीय ग्रन्थ कौटिल्य के अर्थशास्त्र से मूल्याधारित प्रबन्धन के भिन्न-भिन्न घटकों जैसे संगठनात्मक दर्शन, मूल्य आधारित नेतृत्व, आन्तरिक कॉर्पोरेट संस्कृति, कॉर्पोरेट उद्देश्यों की पूर्ति, संकट प्रबन्धन, सामुदायिक विकास कार्य, नुकसान के खिलाफ बीमा, कर्मचारी व उपभोक्ता कल्याण और हितधारकों से प्रतिक्रिया के लिए दिशानिर्देश को प्रस्तुत किया गया है (सिवाकुमार एवं राव, 1996)। यह कार्य मूल्य आधारित व्यापार प्रबन्धन एवं कौटिल्य के सामाजिक प्रबन्धन के एक अनुप्रयोग की चर्चा करता है। मनुस्मृति नेतृत्व से सम्बन्धित अपार मूल्यवान स्रोत है। इसमें हम नेतृत्व के विभिन्न पहलुओं के बारे में महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्राप्त कर सकते हैं। मनुस्मृति में परिवर्तनकारी और दूरदर्शी नेतृत्व की समझ को भी देख सकते हैं। बंसल (2010) के अनुसार मनु आत्मप्रबन्धन एवं नेतृत्व की अवधारणाओं और व्यावहारिक प्रक्रियाओं को भारतीय मनोदार्शनिक विचारों के माध्यम से हमारे समक्ष अवतरित करते हैं। वानी (2017) का अनुसंधान पत्र प्राचीन भारत में प्रचलित न्यायिक व्यवस्था की अप्रतिम व्याख्या करता है। इसमें विशेष रूप से यह अध्ययन किया गया है कि हमारे पूर्वजों ने समाज की जटिल समस्याओं को किस प्रकार समझा तथा समाज और सामाजिक आचरण को विनियमित करने के लिए नियमों का निर्धारण किस तरह से किया। प्राचीन भारतीय न्यायिक प्रणालीए प्रशासनिक इकाइयाँ न्यायिक प्रक्रिया, न्यायाधीशों की नियुक्ति, पंचायत और परीक्षा, मौर्य काल में विभिन्न अपराध और उपयुक्त दण्ड व्यवस्था की चर्चा करता है। Grey (2014) का शोध निबन्ध कौटिल्य और मैकियावेली के यथार्थवादी राजनीतिक विचारों की आलोचनात्मक रूप से जांच करता है तथा एक नया विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण नियोजित करता है। यह मैकियावेली की धर्मनिरपेक्ष नैतिकता एवं पारम्परिक ब्राह्मणवादी मान्यताओं का पालन करने वाली कौटिल्य की राजनीतिक-धार्मिक नैतिकता के मध्य एक अद्वितीय आलोचनात्मक अध्ययन है।

3. **पुरुषार्थ एवं संस्कार** : पुरुषार्थ का सिद्धान्त हिन्दू मनीषियों की भारतीय समाज को एक अनुपम देन है। पुरुष अपने अभीष्ट प्राप्ति के लिए जो उद्यम करता है वह पुरुषार्थ कहलाता है। पुरुषार्थ व्यक्ति को उसके लक्ष्य एवं मौलिक कर्तव्यों का बोध कराते हैं तथा मूलभूत दायित्वों को निभाने की प्रेरणा देते हैं (रीतू सिंह, 2013)। उपनिषद्, गीता तथा स्मृतियों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को पुरुषार्थ चतुष्टय के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करके ही मनुष्य जन्म मरण के चक्र से मुक्त होता है (आशा रानी, 2004)। टूमे (1976) कहते हैं कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यथोचित है और इनका परस्पर विनिमय नहीं होना चाहिए। अर्थ और काम को धर्म और मोक्ष की सीमा के भीतर ही प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। सरनाम सिंह के शोध के अनुसार पुरुषार्थ चतुष्टय मानव जीवन के ऐहिक एवं आमुष्मिक कल्याण के कारण हैं। पुरुषार्थों के द्वारा ही मानव जीवन का सर्वांगीण विकास सम्भव है। पुरुषार्थ की धारणा मानवीय प्रयास के ध्येयों एवं लक्ष्यों की द्योतक है। पुरुषार्थों का समीक्षात्मक एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने से पता चलता है कि पुरुषार्थ का तात्पर्य प्रायः मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति से हैं जिसके बिना समुचित शारीरिक एवं सामाजिक विकास सम्भव नहीं है। चार पुरुषार्थों में भी अर्थ एवं काम सबसे महत्वपूर्ण हैं। काम एक शारीरिक आवश्यकता है तथा सृष्टि को आगे बढ़ाने में भी सहायक है। अर्थ सभी प्रकार के सामाजिक कार्यों को सम्पादित करने का कारक है। मनुष्य को अर्थ एवं काम प्राप्त करने का मार्ग धर्म है एवं मोक्ष धर्म आधारित प्राप्त अर्थ एवं काम का फल है।
4. मानव जीवन में संस्कारों का अत्यन्त महत्व है। रोया (2017) आधुनिक समाज में संस्कारों की आवश्यकता तथा वैश्विक समाज में मानवीय और नैतिक संस्कारों के महत्व का पता लगाने का प्रयास करता है। सर्वप्रथम बृहदारण्यकोपनिषद् में संस्कारों का शास्त्रीय वर्णन प्राप्त होता है। गौतम धर्मसूत्र के अनुसार संस्कारों की संख्या 40 मानी गई है मनुस्मृति 13 मानती है। परन्तु स्वामी दयानन्दए व्यास अथवा स्मृतिचन्द्रिका ने संस्कारों की संख्या 16

मानी है। भारतीय परम्परा में षोडश संस्कारों को स्थूल रूप से 5 भागों में विभाजित किया है; प्राक् जन्म संस्कार, शैशवकाल संस्कार, शैक्षणिक संस्कार, गार्हस्थ्य संस्कार एवं मरणोपरान्त संस्कार (Guar & Ojha, 2018)। इन 16 संस्कारों का विधिवत् वर्णन तथा वर्तमान समय में संस्कारों की वैज्ञानिकता एवं प्रासंगिकता पर राजबली पाण्डेय (2014) का कार्य सराहनीय है। इसी दिशा में करम एवं भावना (2012) का शोध भी अति उत्तम प्रतीत होता है। संस्कार का वैज्ञानिक उद्देश्य शिशु के शारीरिक एवं मानसिक विकास में सन्निहित आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उचित समय पर सम्पन्न किया जाने वाला कार्य है। महर्षि दयानन्द द्वारा बताए गए 16 संस्कार ही व्यापक रूप से आयुर्वेद आचार्यों द्वारा भी स्वीकार किए जाते हैं (Arunraj et al, 2013)। संस्कारों की वैज्ञानिकता एवं मनोवैज्ञानिकता पर अनेकों कार्य हो चुके हैं। इनमें से कुमार (2017) का मानना है कि नवजात शिशु परिचर्या, किशोरावस्था स्वास्थ्य देखभाल, मानसिक स्वास्थ्य सम्बंधित समस्याएँ, व्यवहार विकार, तनाव, चिंता, डिप्रेशन आदि सभी विकृतियों को संस्कारों के अभ्यास से दूर किया जा सकता है। ग्वार एवं ओझा (2018) एवं टाले (2020) ने इन संस्कारों के चिकित्सीय महत्व को प्रतिपादित किया है। चक्रपाणी (2013) ने जातकर्म संस्कार के चिकित्सीय महत्त्व को स्वीकार किया है एवं उनका मानना है कि “जातकर्म संस्कार प्रारम्भिक रोगप्रतिरोधीक्षमता को बढ़ाने में मदद करता है”। हिन्दू समाज में विवाह संस्कार का बहुत महत्व है। विवाह केवल एक पवित्र मिलन या समागम नहीं है, अपितु शरीर को पवित्र करने वाला संस्कार है (Harman, 1995)। विवाह संस्कार पर सिंह (1992) का कार्य इसके सामाजिक महत्त्व को प्रतिपादित करता है। स्वामीनाथन (2015) ने अपने शोध में संस्कारों को पोषण का प्रमुख आधार माना है। इनका मानना है कि संस्कारों में अन्न की उपयोगिता तथा कुपोषण दूर करने के उपाय प्रस्तावित करती हैं। वे पोषण का वैदिक दृष्टिकोण तथा भोजन और पोषण का निरंतर महत्व बतलाती हैं जो संस्कारों के अभ्यास के माध्यम से उचित प्रतिध्वनित होता है। मानव के दैनिक कल्याण में प्रतिरक्षा की अवधारणा का अत्यधिक महत्व है। अन्नप्राशन संस्कार के समय प्रयुक्त स्वर्ण को हमेशा सशक्त चिकित्सीय प्रभावकारिता वाला माना गया है। इसी कारण से शिशु के अन्नप्राशन में उसे स्वर्ण मधु एवं घृत चखाया जाता है (Karam & Bhavana, 2012)। स्वर्ण, मधु एवं घृत का यह मिश्रण बौद्धिक शक्ति एवं पाचन शक्ति को बढ़ाने में उपयोगी है (Somaji, Ganeshrao & Shripatrao, 2014)। अतः आयुर्वेद बालरोग विद्या में, बच्चों में वृद्धि और विकास की प्रक्रिया के दौरान आवश्यक पोषण और प्रतिरक्षा का विस्तार करने के लिए स्वर्णप्राशन जैसे विभिन्न अनुष्ठान या संस्कारों का उल्लेख किया गया है (Chakrapany, 2013)। स्वास्थ्य और उपचार का सामाजिक संदर्भ भारत की स्वदेशी चिकित्सा प्रणालियों में गहराई से अंतर्निहित है। इसके विपरीत, पश्चिमी चिकित्सा ने हाल के दशकों में ही, मनोविज्ञान में नए आयाम जैसे सकारात्मक मनोविज्ञान, स्वास्थ्य मनोविज्ञान और विकासात्मक मनोविज्ञान से प्रेरित समग्र दृष्टिकोण को आंशिक रूप से अपनाया है। कपूर (2018) ने अपने शोध में आयुर्वेद यूनानी सिद्ध और तिब्बती चिकित्सा की मुख्य विशेषताओं को आकर्षित करने और सकारात्मक, स्वास्थ्य और विकासात्मक मनोविज्ञान की समकालीन अंतर्दृष्टि के लिए उनकी प्रासंगिकता को प्रतिपादित करने का प्रयास किया है। इसी प्रकार गैट्राड, राय एवं शेख (2004) भी प्राचीन संस्कारों का हिंदू जन्म प्रथा, विवाह एवं गर्भावस्था के उपलक्ष में समसामयिक काल में आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हैं।

## परिणाम विश्लेषण एवं परिचर्चा

प्रस्तुत सर्वेक्षण धर्मशास्त्र के क्षेत्र में उपलब्ध साहित्यिक अवधारणाओं को विश्लेषित करता है तथा उनका एक परिप्रेक्ष्य विकसित करता है। अनेक शोधपत्रों, अनुसन्धान लेखों एवं शोध कार्यों का अध्ययन कर यह स्पष्टरूपेण ज्ञात होता है कि विभिन्न अध्ययताओं ने धर्मशास्त्रीय अवधारणाओं को दार्शनिक, राजनैतिक, अर्थशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक,



चिकित्सकीय- वैद्यक सम्बन्धित आयामों को प्रस्तुत किया। प्रत्येक शोधपत्र में भिन्न-भिन्न प्रकार की अनुसन्धान प्रवृत्तियों का उपयोग किया गया है। प्रवृत्तियों का मूल्यांकन करने पर यह ज्ञात होता है कि सभी विद्वानों ने धर्मशास्त्रों के सैद्धांतिक एवं गुणात्मक पक्षों पर शोध किया है। विस्तृत रूप से धर्मशास्त्रीय अवधारणाओं पर भारतीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय विद्वानों ने तुलनात्मक, समीक्षात्मक एवं विवरणात्मक अध्ययन किया है। कुछ विद्वानों ने प्राचीन प्रासंगिक अवधारणाओं का अनूठा संस्करण प्रस्तुत किया। सारदा एवं अन्य (2018) का शोध तुलनात्मक प्रवृत्तियों पर आधारित है, यह प्राचीन भारतीय आश्रम व्यवस्था को मास्लो के पदानुक्रम सिद्धांत से तुलना करता है। इसी प्रकार पाण्डेय, रोया (2017) अरुणराज (2013), कुमार (2017) आदि षोडश संस्कारों के सांस्कृतिक महत्व के साथ-साथ उनके वैज्ञानिक तथा चिकित्सकीय महत्व की भी चर्चा करता है। जिस समय प्रजनन विज्ञान और स्वास्थ्य विज्ञान का विकास नहीं हुआ था उस समय संस्कार ही जैविकीय ज्ञान का आधार था। हिन्दू संस्कारों को यद्यपि धार्मिकता के नाम पर अन्धविश्वास एवं रुढ़िवादिता से जोड़ दिया जाता है फिर भी विभिन्न अध्ययनों एवं शोध सर्वेक्षण से पता चलता है कि संस्कारों का आधार पूर्णरूपेण वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक एवं चिकित्सीय है। इसका मुख्य उद्देश्य बाल विकास एवं प्रशिक्षण ही था। संस्कारों का अपना वैज्ञानिक महत्व होता ही है। संस्कार पारिवारिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य विज्ञान का एक विस्मयजनक समन्वय था। इस प्रकार संस्कार व्यवहार में मानव जीवन तथा उसके शारीरिक एवं मानसिक विकास की क्रमबद्ध योजना का कार्य करते हैं। वर्ण व्यवस्था सामाजिक विभाजन के साथ ही साथ सामाजिक प्रबन्धन के रूप में भी हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है। मनुष्य के विकास में हर समय उसकी आवश्यकताएं भिन्न-भिन्न होती हैं। अतः धर्मशास्त्रीय आचार्यों ने मनुष्य के जीवन काल को कुल चार कालों में विभक्त कर दिया। इन्हीं को आश्रम नाम दिया गया। प्रत्येक धर्मशास्त्रीय अवधारणाओं का कोई न कोई सामाजिक, वैज्ञानिक, चिकित्सीय, मनोवैज्ञानिक एवं प्रशासनिक उद्देश्य अवश्य रहा है।

### **निष्कर्ष एवं भावी अनुसंधान**

प्रस्तुत सर्वेक्षण पत्र वर्तमान में धर्मशास्त्रीय अवधारणाओं पर किए गए शोध परिणामों को एक नए तरीके से सारांशित और व्यवस्थित करता है। यह इस क्षेत्र में कार्य करने वाले शोधार्थियों तथा अन्य विद्वतजन के लिए धर्मशास्त्र के विभिन्न अवधारणाओं की समझ को एकीकृत करता है। साथ ही साथ अन्य शोध के अन्य अन्तर्विषयक आयामों से भी परिचित कराता है।

भावीशोध के रूप में इस शोध से धर्मशास्त्र पर शोध की नई दृष्टि भी प्राप्त होती है। इसका प्रबन्धन चिकित्सा, विज्ञान, मनोविज्ञान एवं अन्य विषयों में महत्व को भी प्रतिपादित करता है। साथ ही साथ धर्मशास्त्र की अन्य अवधारणाओं पर शोध का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया जा सकता है। शोध सर्वेक्षण से यह भी पता चलता है कि धर्मशास्त्र एक बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसका डिजिटलीकरण एवं ऑनलाइन खोज संबंधी सिस्टम के विकास का कार्य अभी अछूता है। इस पर भी कार्य किया जा सकता है।

### **कृतज्ञता**

यह शोधपत्र प्रतिष्ठित संस्थान (Institution of Eminence: IoE), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली के संकाय वित्तपोषित अनुसंधान कार्यक्रम (Faculty Research Programme: FRP) के तहत वित्तपोषित (Ref. No./IoE/2021/12/FRP dated August 31, 2022.) परियोजना का प्रतिफल है। लेखक प्रतिष्ठित संस्थान (Institution of Eminence: IoE), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली के वित्तीय समर्थन के लिए अति आभारी हैं।

## संदर्भ

1. Arun, M.A., Ojha, N. K., & Kumar, A. (2013). Rationality of Swarna Prashan in Pediatric Practice. *International Journal of Ayurvedic And Herbal Medicine* 3(3), 1191-1200.
2. Chakrapany, S. (2013). A Review on Swarnaprashan- Gold Licking, A Child Immunity Enhancer Therapy. *Global Journal of Research on Medicinal Plants & Indigenous Medicine*, 2(11), 752.
3. Chander, R. (2015), ArthŚastra: A Replica of Social Dynamism in Ancient India. *International Journal of Innovative Research and Advanced Studies*, 2 (4)
4. Dhole, S. S. (2017). Evolving Role of Employment Legal Leadership in Corporate Governance and Management. *International Journal of Law & Management*, 4(2), 107-128.
5. Diwan, P., & Diwan, P. (2001). *Modern Hindu Law: (codified and Uncodified)*. Allahabad Law Agency.
6. Elder, J. W. (2006). Traditional Brahmcial Society. *The Oxford Handbook of Global Religions*.
7. GR, Arun Raj, U. Shailaja, & Prasanna N. Rao. (2013). The Childhood Samskaras (Rites Of Passage) and Its Scientific appreciation. *Ayurpharm International Journal of Ayurveda and Allied Sciences*, 2(12), 372 - 383.
8. Gray, S. (2014). Reexamining Kautilya and Machiavelli: Flexibility and the problem of legitimacy in Brahmanical and secular realism. *Political Theory*, 42(6), 635-657.
9. Guar, A., & Ojha, N. K. (2018). Critical Analysis of Bala Samskara w.s.r. to Developmental Milestones in Children: A Review Study. *Journal of Ayurveda and Integrated Medical Sciences*, 3(02), 89-96.
10. Harman, W. P. (1995). The Hindu Marriage as Soteriological Event. *Woman, Marriage and Family*, 1.
11. Jayapalan, N. (2001). *Indian Society and Social Institutions*. Atlantic Publishers and Distributors.
12. Kane, Pandurang V. 1962. *History of Dharmasastra*. Pune: Bhandarkar oriental research institute.
13. Kapur, M. (2018). Childcare in the Indigenous Health Systems in India from the Perspectives of Developmental and Health Psychology. *Psychosocial Interventions for Health and Well-Being*, 125-136.
14. Karam, S., & Bhavna, V. (2012). An Approach to Samskara in Ayurveda. *International Journal of Ayurvedic Medicine*, 3(3), 3.

15. Kumar, S. (2017). A Critical Appraisal on Various Samskaras with their Scientific and Medical Importance in Pediatric Age Group. *International Journal of Ayurveda and Pharma Research*, 5 (5).
16. Kumar, J., & Halder, D. (2019). *Criminal Justice Tenets in Manusmriti: A Critical Appraisal of the Ancient Indian Hindu Code*. Routledge Handbook of South Asian Criminology.
17. Meena, S. L. (2005). Relationship between state and dharma in Manusmriti. *The Indian Journal of Political Science*, 575-588.
18. Nath, R. (2019). Good Governance and Ancient Indian Administration. *Bihar Journal of Public Administration*, 276.
19. Olivelle, P. (2004). *The law code of Manu*. Oxford University Press.
20. Pandey, R. (2014). *hindu saṃskāra*. Chaukhamba Vidyabhavan, Varanasi.
21. Ramakrishnan, R. (2016). *Swami Vivekananda -Awakener of Modern India*. Sri Ramakrishna Math.
22. Raveesh, B. N. (2014). Cultural practices in India towards healthy ageing. *Journal of Geriatric Care and Research*, 1(2).
23. Roy, A. (2017). Necessity of Samskaras in Modern Society. *International Journal of Innovative Research and Advanced Study*, 4(6), 79-83.
24. Sankhder, M. M. (2003). *Democratic Politics and Governance in India*. Deep and Deep Publications.
25. Sarda, M., Deshpande, B., Deo, S., & Karanjkar, R. (2018). A comparative study on Maslow's theory and Indian ashrama system. *International Journal of Innovative Technology and Exploring Engineering*, 8(2), 48-50.
26. Saxena, A., & Indoliya, U. (2011). *A comparative study of Varna, Jati and Kula—a prime base of Dev Sanskriti*.
27. Singh, N. (1992). The Vivaha (Marriage) Samskara as a paradigm for religio-cultural integration in Hinduism. *Journal for the Study of Religion*, 31-40
28. Singh, S. & Tiwari, D.P., महाभारत में पुरुषार्थ चतुष्टय. Ph.D. diss., Chhatrapati Sahuji Maharaj University.
29. Singh, R. & Rai, A.K. (2013). कालिदास के ग्रंथों में पुरुषार्थ चतुष्टय का समीक्षात्मक अध्ययन, Ph.D. diss., V. B. S. Purvanchal University.
30. Sivakumar, N. & Rao, U. S. (1996). Guidelines for value- based management in Kautilya's Arthashastra. *Journal of Business Ethics*, 15(4), 415-423.
31. Somaji, L. D., Ganeshrao, B. N., & Shripatrao, H. S. (2014). Clinical Evaluation of Suvarnaprashana Samskara. *International Journal of Ayurvedic Medicine*, 5(1), 133-138.

32. Tale, P. R. (2020). A critical review of Bal Samskara and its scientific importance. *Journal of Ayurveda and Integrated Medical Sciences*, 5(6), 152-158.
33. Tiwari, S. C., & Pandey, N. M. (2013). The Indian concepts of lifestyle and mental health in old age. *Indian Journal of Psychiatry*, 55(Suppl 2), S288.
34. Tiwari, S. K., & Sharma, R. K. (2002). *Tribal History of Central India: Tribal communities of modern age*. Aryan Books International.
35. Toomey, P. M. (1976). The Upanayana and Samavartana Rites: A Paradox of Two 'Dharmas'. *Indian Anthropologist*, 6(1), 40-45.
36. Wani, S.A. (2017). Concept of legal and judicial Administration in Ancient India. *International Journal in Management & Social Science* 5(7): 248-253
37. काणे, प. व. (1992) धर्मशास्त्र का इतिहास. उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान ।
38. चौबे, शुभ्रा एवं मिश्र, हरिश्चन्द्र (2005). वेदों में धर्म की अवधारणा, PhD शोध प्रबन्ध, डॉ राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद, भारत ।
39. तिवारी अनिरुद्धकुमार एवं पाण्डेय, रामजियावन (2014), संस्कृत साहित्य में ब्राह्मण वर्ण की अवधारणा एक अध्ययन, PhD शोध प्रबन्ध, डॉ राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद ।

# स्थानीय स्वशासन और ग्रामीणों का सशक्तिकरण

डॉ. हरिनन्दन कुशवाहा

गन्ना उत्पादक पी.जी. कॉलेज, बहेड़ी (बरेली)

hn.lu25@gmail.com

**शोधसार-** प्रारम्भ से ही ग्राम एक समुदाय के रूप में संगठित रहा है। परिणामतः ग्रामीण संरचना प्रारम्भ से सामुदायिक आधार पर खड़ी रही है। परम्परागत ग्रामीण समाज में जाति प्रथा अत्यन्त कठोर थी। जाति समितियाँ एवं जाति पंचायतें अत्यधिक शक्तिशाली थीं और जाति ही व्यक्तियों की गतिशीलता के लिए अवसरों और प्रस्थिति का निर्धारण करती थी, यहाँ तक कि भू-स्वामित्व और शक्ति संरचना भी जाति आधार पर चलती थी। परम्परागत शक्ति संरचना में शान्ति व्यवस्था के प्रमुख आयाम, जमींदारी प्रथा, जाति प्रथा और ग्राम/जाति पंचायत थे। ग्रामीण अपनी सामाजिक-आर्थिक और अन्य समस्याएँ या तो जमींदार या अपनी जाति के मुखिया को या गाँव की पंचायत को बताते थे। कुछ क्षेत्रों में परम्परागत शक्ति संरचना सामन्तवादी भी थी। भूस्वामित्व तथा उनकी आर्थिक प्रस्थिति गाँव में जागीरदारों और जमींदारों की शक्ति के मूल स्रोत थे। स्वतन्त्रता के पश्चात् जागीरदारी व जमींदारी प्रथाएँ समाप्त कर दी गईं और अनेक भूमि सुधार लागू किये गये, जिसने परम्परागत शक्ति संरचना को कमजोर कर दिया और नवीन शक्ति संरचना को जन्म मिला। आनुवंशिक और जाति मुखियाओं के स्थान पर राजनैतिक पृष्ठभूमि के चुने हुए लोग नेता बन गये। नेतृत्व में व्यक्तिगण गुण; न कि जाति, मुख्य कारक बन गये हैं। 73वें संविधान संशोधन के उपरान्त नवीन पंचायती राज व्यवस्था में सामाजिक रूप से वंचित वर्ग के हजारों प्रतिनिधियों को भी चुनाव में जीत मिली है। ग्रामीण शक्ति संरचना में परिवर्तन हुआ है और नेतृत्व की नयी पौध उगी है। प्रस्तुत शोधपत्र में 73वें संविधान संशोधन के परिप्रेक्ष्य में पंचायती राज व्यवस्था में हुए सुधारों के फलस्वरूप ग्रामीण शक्ति संरचना में परिवर्तन की प्रकृति का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसमें उत्तर प्रदेश के हरदोई जनपद में स्थित एक ग्राम पंचायत का उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि से चयन कर, उस ग्राम पंचायत में निवास करने वाले वयस्क ग्रामीणों न्यादर्श लेकर उनकी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक प्रस्थिति में परिवर्तन की प्रकृति का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों से स्पष्ट होता है कि नवीन पंचायती राज व्यवस्था के फलस्वरूप ग्रामीण शक्ति संरचना में निश्चित रूप से परिवर्तन हुआ है, नये राजनैतिक गुट बने हैं। शक्ति, सत्ता और नेतृत्व के प्रतिमान में पंचायती राज व्यवस्था के लागू होने के बाद एक सकारात्मक बदलाव आया है।

मुख्य बिंदु- पंचायती राज, स्वशासन, शक्ति संरचना, राजनैतिक गुट, ग्रामीण समाज

## प्रस्तावना

लोकतन्त्र एक ऐसी व्यवस्था है जो प्रत्येक व्यक्ति (चाहे वह किसी भी जाति, धर्म, रंग या पहचान से सम्बद्ध हो) को राजनीति, समूह या राष्ट्र राज्य के मामलों में भाग लेने का अधिकार प्रदान करता है। लोकतान्त्रिक मूल्यों के चलन एवं राजनैतिक स्वतन्त्रता से सभी व्यक्तियों को यह अवसर प्राप्त हुआ है कि वे अपनी पहचान, स्थिति, प्रतिबद्धता और इच्छाओं में निहित हितों और मूल्योन्मुख चेतना के चारों ओर रहकर स्वयं का विकास कर सकें। राजनैतिक स्वतन्त्रता ने

सामन्ती, जमींदारी, जागीरदारी प्रथा और राजाओं के राज्यों का उन्मूलन करके, भारतीय समाज की संरचना और इसकी अधिकार प्रणाली में भारी परिवर्तन करने का मार्ग प्रशस्त किया है। इसने भारतीय ग्रामीण समाज के आर्थिक एवं सामाजिक आधार में क्रान्ति लाने का कार्य किया है (आहूजा, 2011:23)।

भारत मूलतः गाँवों का देश है। यहाँ 6 लाख से भी अधिक गाँव हैं। ग्रामीणों के जीवन स्तर में भिन्नता के साथ-साथ कुछ समानताएँ भी पायी जाती हैं। ग्रामीण समुदायों के अन्तर्गत संस्थाओं और ऐसे व्यक्तियों का समूह होता है जो छोटे से केन्द्र के चारों ओर संगठित होते हैं तथा सामान्य प्राकृतिक हितों में भाग लेते हैं (मेरिल एण्ड एलरिज, 1949)। ग्रामीण समाज अपेक्षाकृत स्थिर समाज होता है। ग्रामीणों में सापेक्ष रूप से गतिशीलता का अभाव होता है। ग्रामीण समुदाय का एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र होता है। इसी में व्यक्ति निवास करते हैं। उनका मुख्य व्यवसाय कृषि होता है। समुदाय में ही उनका सामान्य जीवन व्यतीत होता है। ग्रामीण समुदाय में सामुदायिक भावना पाई जाती है (मुकर्जी, 2006:33)। 'ग्राम या गाँव' मानव के सामूहिक जीवन का प्रथम पालक माना गया है। हजारों वर्षों से मानव समाज एवं सभ्यता ग्राम प्रधान ही रहा है। "पुरातन ग्राम केवल आर्थिक एवं प्रशासनिक इकाई ही नहीं थे, बल्कि वे सहयोगी एवं सांस्कृतिक जीवन के केन्द्र रहे हैं। उनके पास अपने त्यौहार, पर्व, लोकगीत, नृत्य, खेल एवं मेले हैं, जिन्होंने ग्रामीणजनों को जीवन दिया और उनके उत्साह को बनाए रखा" (लवानियाँ व जैन, 1987)। इन ग्रामीण दलों ने मनुष्य के मस्तिष्क में संगठन और सहयोग की भावना को जन्म दिया होगा, जो आगे चलकर नव-पाषाण काल में ग्रामों के रूप में विकसित हो गयीं (विद्यालंकार, 1965)।

प्राचीन काल से ही भारत के ग्राम, शासन व्यवस्था की मूल एवं प्राथमिक इकाई रहे हैं। यह इकाई स्वावलम्बी ग्राम स्वशासन प्रणाली थी (ऋग्वेद, 1:114)। वैदिक युग में ग्राम-शासन-व्यवस्था का अधिक महत्व था। हर-एक गाँव की शासन-व्यवस्था खुद में 'प्रजातन्त्र' की एक छोटी इकाई मानी जाती थी। इस व्यवस्था में केन्द्रीय सत्ता अधिक हस्तक्षेप नहीं करती थी, जिसके फलस्वरूप ग्राम्य जीवन के प्रत्येक सार्वजनिक पहलू, जैसे-सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक, इसी स्वशासन प्रणाली से संचालित होते थे। एक ग्राम में अनेक कुल होते थे। सम्भवतः यहाँ का मुखिया कोई और नहीं बल्कि इनके ग्राम का नेता, जिसे दूसरे शब्दों में 'ग्रामणी' कहा गया, रहा होगा (अग्रवाल, 1971:117)। महाजनपद काल में ग्राम के शासक को विभिन्न नामों से पुकारा जाता था, जैसे ग्रामभोजक, ग्रामणी या ग्रामिक। ग्राम संबंधी सभी मामलों को निपटाने का कार्य ग्रामभोजक के ऊपर था। गाँव वालों के लिए उसकी आज्ञाओं को मानना अनिवार्य होता था, फिर भी, ग्रामभोजक स्वेच्छाचारी नहीं होता था, क्योंकि उसकी स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध राजा के पास अपील की जा सकती थी। यह व्यवस्था सल्तनत काल के प्रारम्भ तक बनी रही, लेकिन सल्तनत कालीन राजाओं की स्वेच्छाचारिता एवं केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था ने ग्राम पंचायतों के अधिकार सीमित कर दिये (सरकार, 1958)। मुगल शासन के पतन और ब्रिटिश साम्राज्य के शक्तिशाली होने के बीच पंचायतों के स्वरूप में परिवर्तन आया और कई स्थानों पर ग्राम पंचायतें मजबूत हुयीं, तो कहीं पर कमजोर (टिंकर, 1999)। अंग्रेजी शासन के आरम्भिक दौर में भारतीय ग्रामीण शासन व्यवस्था को नष्ट करने का प्रयास किया गया। महालवाड़ी, रैय्यतवाड़ी, जमींदारी, ताल्लुकादारी आदि व्यवस्थाओं को जन्म देकर गाँव की प्रशासनिक व्यवस्था समाप्त कर, उन्हें नगरों से जोड़ दिया गया। यद्यपि इस काल में पंचायतीराज व्यवस्था को पुनः सुदृढ़ करने के प्रयास भी किये गये। भारत के नये संविधान के मूल प्रारूप में भी पंचायतों का प्रावधान नहीं था। बल्कि संविधान निर्माताओं ने पंचायतों की वैचारिक अवधारणा के रूप में ही 'ग्राम गणतन्त्र' (विलेज रिपब्लिक) की परिकल्पना पर बल दिया था। संविधान के अनुच्छेद 40 में पंचायत व्यवस्था का इस प्रकार उल्लेख किया गया है- 'राज्य, ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठायेगा और उनको ऐसी शक्तियाँ एवं अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों'।



सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा के असफल होने के बाद पंचायत राज व्यवस्था को मजबूत बनाने की सिफारिश करने के लिए 1957 में बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में ग्रामोद्धार समिति का गठन किया गया। इस समिति ने भारत में त्रिस्तरीय पंचायती व्यवस्था, यथा (1) ग्राम या नगर पंचायत (2) तहसील पंचायत और (3) जिला पंचायत को स्थापित करने की सिफारिश की। बलवंत राय मेहता समिति की सिफारिशों के आधार पर स्थापित पंचायती राज व्यवस्था में कई कमियाँ परिलक्षित हुईं, जिन्हें दूर करने के लिए 1977 में अशोक सिंधवी समिति (1986) जैसी समितियों की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए 73वें संविधान संशोधन के रूप में 23 अप्रैल, 1993 से नवीन पंचायती राज व्यवस्था सम्पूर्ण देश में लागू हुई।

आन्द्रे बेतेई (1966:180) ने अपने अध्ययन में यह दर्शाया है कि, ग्रामीण शक्ति काफी हद तक भू-स्वामित्व से मुक्त हो गई है। शक्ति अर्जन में भू-स्वामित्व अब निर्णायक कारण नहीं है। इकबाल नारायन तथा माथुर (1969) ने राजस्थान के अपने एक अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला है कि उच्च वर्ग आज भी नेतृत्व पर एकाधिकार जारी रखे हुए है। लेकिन छोटी आयु समूह का नया नेतृत्व भी गाँव के स्तर पर उदित हुआ है। सिरसीकर (1970), राम रेड्डी (1970), ईश्वरन (1970), योगेश अटल (1971), इनामदार (1971), कैराम (1972) आदि ने भी ग्रामीण नेतृत्व व्यवस्था में परिवर्तन प्रभाव का अध्ययन किया है।

योगेन्द्र सिंह (1994:22) ने राजनैतिक स्वतंत्रता के महत्व को इंगित करते हुए कहा है कि राजनैतिक स्वतंत्रता से एक ऐसे नवीन वर्ग का उदय हुआ है, जो स्वतंत्रता पूर्व के मध्यम वर्ग की विशेषताओं से सर्वथा भिन्न है। इस वर्ग का कहीं अधिक विस्तृत सामाजिक आधार है जो निम्न और मध्यम जातियों और समाज के लोगों से ही सम्बद्ध है। अनेक जातियों ने अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए या अपनी स्थिति को सुधारने के लिए राजनीति का सहारा लिया है। रजनी कोठारी (1970) ने अपने अध्ययनों में यह स्पष्ट किया है कि कुछ मध्यम और निम्न जातियों एवं आर्थिक दृष्टि से कमजोर समुदायों ने संगठित रूप से राजनीति का प्रयोग कर राजनीतिक शक्ति, जाति एकता और समाज में उच्च स्थिति को प्राप्त किया है।

पंचायती राज व्यवस्था में उभरे नये नेतृत्व में एक प्रमुख परिवर्तन यह है कि आज किसी विशिष्ट व्यक्ति या परंपरागत नेता में ही गाँव/वार्ड की सम्पूर्ण शक्ति केन्द्रित नहीं होती, बल्कि जीवन के प्रत्येक विशिष्ट पक्ष तथा विशिष्ट कार्यों से सम्बद्ध पृथक-पृथक व्यक्तियों को नेता के रूप में मान्यता दी जाने लगी है। अब ग्रामीण नेतृत्व मुख्यतः उन व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रित होने लगा है, जो मध्यम वर्ग के हैं (काला, 2009)। ग्राम स्तर पर पंचायतों के चुनाव अक्सर एक-दूसरे के वोट काटने पर आधारित होकर लड़े जाते हैं। अब बहुत बड़ी संख्या में निर्बल जातियाँ वोट-शक्ति रखती हैं, अतः वे परंपरागत सबल जातियों को चुनौती देती हैं। प्रबल जातियाँ तथा प्रभुता सम्पन्न जातियाँ अक्सर क्षेत्र के प्रमुख राजनैतिक दलों से बँधी होती हैं और दलीय संगठन के माध्यम से ही उर्ध्व गतिशीलता होती रहती हैं। इस प्रकार एक ओर जाति केवल बाह्य राजनैतिक समर्थन के आधार खो देती हैं और दूसरी ओर यह राजनीति को अत्यधिक प्रभावित करती हैं (आहूजा, 2011:66)।

एक सशक्त पंचायती राज व्यवस्था में न केवल विकास की गति तेज होती है, बल्कि संगठनों एवं संस्थाओं के लिए अनुकूल वातावरण मिलता है। चुनाव में सामाजिक रूप से वंचित वर्ग के हजारों प्रतिनिधियों को भी चुनाव में जीत मिली है, पर इसके बाद भी उनकी चुनौतियाँ खत्म नहीं हुई हैं, बल्कि पद ग्रहण करने के बाद वास्तविक चुनौतियों से उनका सामना होता है। उन्होंने अपने बल पर अपनी जमीन तलाश ने का काम शुरू भी कर दिया है। शक्ति, सत्ता और नेतृत्व के प्रतिमान में पंचायती राज व्यवस्था के लागू होने के बाद एक बदलाव आया है। इन बदली हुई परिस्थितियों के फलस्वरूप सामाजिक परिवर्तन की झलक दिखाई दे रही है। साथ ही पंचायती राज व्यवस्था ने ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ ऐसी समस्याओं



को जन्म दिया है जो ग्रामीण जीवन के विघटन के लिए जिम्मेदार हैं। कुछ कारणों से इस व्यवस्था ने गाँवों में व्याप्त जातिवाद, दलबन्दी की भावना, अकुशल राजनैतिक नेतृत्व, भ्रष्टाचार व निजी स्वार्थों में टकराव की प्रक्रिया आदि को बढ़ाया है। इसकी वजह से पंचायती राज संस्थाएँ एक टिकाऊ व जवाबदेह जन निकाय का दर्जा प्राप्त नहीं कर पायी हैं। आवश्यकता है कि कारणों का पता लगाया जाए। इन्हीं सब सन्दर्भों को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत शोधपत्र में “स्थानीय स्वशासन एवं बदलती ग्रामीण शक्ति संरचना” शीर्षक के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश के हरदोई जिले में स्थित एक ग्राम पंचायत की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संरचना में परिवर्तन की प्रवृत्ति का समाजशास्त्रीय अध्ययन किया गया है।

### अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं:-

1. भारतीय ग्रामीण समाज की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक संरचना का अध्ययन करना।
2. ग्रामीण शक्ति संरचना में जातीय वर्गों के प्रभाव का अध्ययन करना।
3. ग्रामीण शक्ति संरचना में पंचायतीराज व्यवस्था की भूमिका का विवेचन करना।
4. चयनित ग्राम पंचायत की शक्ति संरचना एवं उसमें परिवर्तन की प्रवृत्तियों का अध्ययन करना।

### शोध प्रश्न

सम्बन्धित साहित्य के विश्लेषण के आधार पर प्रस्तुत शोध अध्ययन में निम्नलिखित शोध संबंधी प्रश्नों को उठाया गया है:-

- 73वें संविधान संशोधन के लागू होने के पश्चात् नवीन पंचायती राज व्यवस्था के फलस्वरूप ग्रामीण शक्ति संरचना में क्या परिवर्तन आया है?
- क्या आज भी बड़े भूमिधर एवं राजनीतिक रूप से सक्रिय परिवारों का ही स्थानीय शक्ति संरचना पर आधिपत्य है?
- पंचायती राज व्यवस्था लागू होने के पश्चात् क्या वंचित वर्ग के लोगों में राजनीतिक एवं नेतृत्व संबंधी चेतना आई है?

### शोध विधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन की प्रकृति विश्लेषणात्मक है, जिसमें वर्णनात्मक शोध प्ररचना का प्रयोग किया गया है। इसमें उत्तर प्रदेश के हरदोई जनपद के बहलोलपुर ग्राम पंचायत का मिश्रित आबादी के आधार पर उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि से चयन कर, वहाँ के 120 परिवारों का दैव निदर्शन विधि से चयन किया गया है। तथा प्रत्येक परिवार से 01 वयस्क सदस्य का आकस्मिक विधि से चयनकर साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से उनकी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दशाओं से सम्बन्धित आँकड़ों का संकलन किया गया है। अध्ययन के उद्देश्यों एवं शोध प्रश्नों के आधार पर संकलित आँकड़ों का विश्लेषण कर स्थानीय स्वशासन एवं बदलती ग्रामीण शक्ति संरचना के मध्य सह-सम्बन्धों का समाजशास्त्रीय अध्ययन किया गया है।

### आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या :

धर्म	हिन्दू	मुस्लिम		
संख्या (प्रतिशत)	104 (86.67)	16 (13.33)		

सामाजिक वर्ग	सामान्यवर्ग	अ0पि0व0	अनु0 जाति	
संख्या (प्रतिशत)	31 (25.83)	47 (39.17)	42 (35.00)	
शैक्षिक स्तर	निरक्षर/ असाक्षर	प्राइमरी/जू0 हाई0	हाईस्कूल/ इण्टरमीडिएट	स्नातक/ परास्नातक
संख्या (प्रतिशत)	16(13.33)	28(23.33)	53 (44.17)	23(19.17)

सारणी सं0 1: उत्तरदाताओं का वैयक्तिक परिवेश

वैयक्तिक परिवेश- सारणी सं0 1 में उत्तरदाताओं के वैयक्तिक परिवेश को प्रदर्शित किया गया है। इस तालिका से स्पष्ट होता है कि 86.67% उत्तरदाता हिन्दू एवं 13.33% उत्तरदाता मुस्लिम धर्म को मानने वाले हैं। वहीं 39.17% उत्तरदाता अन्य पिछड़ा वर्ग के, 35% उत्तरदाता अनुसूचित जाति के तथा 25.83% उत्तरदाता सामान्य वर्ग में हैं। शैक्षिक स्थिति के अनुसार 44.17% उत्तरदाताओं ने हाईस्कूल/इंटरमीडिएट तक, 23.33% उत्तरदाताओं ने प्राइमरी/जूनियर हाईस्कूल तक तथा 19.17% उत्तरदाताओं ने स्नातक या उच्च स्तर की शिक्षा प्राप्त की है, जबकि 13.33% उत्तरदाताओं ने किसी भी प्रकार की औपचारिक शिक्षा नहीं प्राप्त की है।

परिवार की प्रकृति	एकाकी	संयुक्त			
संख्या (प्रतिशत)	51¼42-50½	69¼57-50½			
व्यवसाय	कृषि/मजदूरी	व्यापार	नौकरी	घरेलू व्यवसाय	
संख्या (प्रतिशत)	99 ¼82-50½	9 ¼7-50½	4 ¼3-33½	8 ¼6-67½	
मासिक आय (ह0 रू0 में)	2 से कम	2 से 5	5 से 10	10 से 20	20 से अधिक
संख्या (प्रतिशत)	23 ¼19- 17½	29 ¼24- 17½	33 ¼27-50½	27 ¼22-50½	8 ¼6-67½
परिवार में सदस्य	3&4	5&6	7&8	9&10	
संख्या (प्रतिशत)	17 ¼14-17½	37 ¼30-83½	52 ¼43-33½	14 ¼11-67½	

सारणी सं0 2 : उत्तरदाताओं का पारिवारिक परिवेश

पारिवारिक स्वरूप- सारणी सं0 2 में उत्तरदाताओं के पारिवारिक स्वरूप को प्रदर्शित किया गया है। इस तालिका से स्पष्ट होता है कि 57.5% उत्तरदाताओं के परिवार की प्रकृति संयुक्त एवं 42.50% उत्तरदाताओं के परिवार की प्रकृति एकाकी है। वहीं परिवार के प्रमुख व्यवसाय के आधार पर उत्तरदाताओं का वितरण देखा जाये, तो स्पष्ट होता है कि 82.50% उत्तरदाताओं के परिवार का प्रमुख व्यवसाय कृषि या मजदूरी है, जबकि 7.5% उत्तरदाताओं के परिवार का प्रमुख व्यवसाय व्यापार है। 3.33% उत्तरदाताओं के परिवार का प्रमुख नौकरी तथा 6.67% का प्रमुख व्यवसाय परम्परागत/घरेलू स्वरोजगार है।

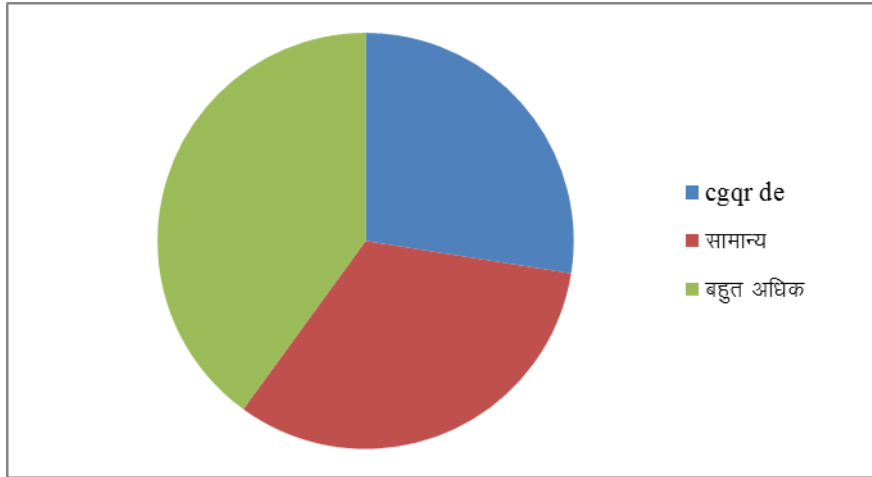
आय की दृष्टि से 27.5% उत्तरदाताओं के परिवार की मासिक आय रू 05 से 10 हजार के मध्य है, जबकि 24.17% उत्तरदाताओं के परिवार की मासिक आय रू 02 से 5 हजार, 22.5% उत्तरदाताओं के परिवार की मासिक आय रू 010 से 20 हजार, 19.17% उत्तरदाताओं के परिवार की मासिक आय रू 02 हजार से कम तथा 6.67% उत्तरदाताओं के परिवार की मासिक आय रू 20 हजार मासिक से अधिक है। परिवार में सदस्यों की संख्या के अनुसार उत्तरदाताओं की

स्थिति का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि 43.33% उत्तरदाताओं के परिवार में सदस्यों की संख्या 7 से 8 है। इसके उपरान्त 30.83% उत्तरदाताओं के परिवार में सदस्यों की संख्या 5 से 6, इसी प्रकार 14.17% उत्तरदाताओं के परिवार में सदस्यों की संख्या 3 से 4 तथा 11.67% उत्तरदाताओं के परिवार में सदस्यों की संख्या 9 से 10 है।

**राजनीतिक सहभागिता की स्थिति-** राजनीतिक सहभागिता में परिवर्तन की प्रवृत्ति का अध्ययन करने के लिए उत्तरदाताओं से पंचायत चुनाव के किसी भी स्तर में प्रचार, मतदान एवं उम्मीदवारी में भाग लेने की वर्तमान एवं 10 वर्ष पूर्व की स्थिति से सम्बन्धित सूचनाओं का विश्लेषण निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट होता है -

पाईचित्र सं0 1 में उत्तरदाताओं की राजनीतिक सहभागिता में परिवर्तन की स्थिति को प्रदर्शित किया गया है। इस तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 40% उत्तरदाताओं की राजनीतिक सहभागिता की स्थिति में बहुत अधिक परिवर्तन हुआ है, जबकि 32.5% उत्तरदाताओं की राजनीतिक सहभागिता की स्थिति में सामान्य तथा 27.5% उत्तरदाताओं की राजनीतिक सहभागिता की स्थिति में बहुत कम परिवर्तन हुआ है।

**पाईचित्र सं0 1 : उत्तरदाताओं की राजनीतिक सहभागिता की स्थिति में परिवर्तन**



**सारणी सं0 3 : सामाजिक वर्गवार उत्तरदाताओं की राजनीतिक सहभागिता में परिवर्तन की प्रवृत्ति**

परिवर्तन की स्थिति	आयु वर्गवार उत्तरदाताओं का वितरण					
	अनु0 जाति		अ0पि0व0		सामान्य	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
बहुत कम	7	16.67	12	25.53	14	45.16
सामान्य	16	38.10	21	44.68	11	35.48
बहुत अधिक	19	45.24	14	29.79	6	19.35
<b>योग</b>	<b>42</b>	<b>100-00</b>	<b>47</b>	<b>100-00</b>	<b>31</b>	<b>100-00</b>

सारणी सं0 3 में उत्तरदाताओं की राजनीतिक सहभागिता में परिवर्तन की सामाजिक वर्गवार स्थिति को प्रदर्शित किया गया है। इस तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि अनुसूचित जाति के 45.25% उत्तरदाताओं की राजनीतिक सहभागिता में बहुत अधिक वृद्धि हुई है, जबकि इस सामाजिक वर्ग के 38.1% उत्तरदाताओं की राजनीतिक सहभागिता

में सामान्य वृद्धि तथा 18.67% उत्तरदाताओं में बहुत कम वृद्धि हुई है। वहीं अन्य पिछड़ा वर्ग के 44.68% उत्तरदाताओं की राजनीतिक सहभागिता में सामान्य, 29.79% उत्तरदाताओं में बहुत अधिक तथा 25.53% उत्तरदाताओं में बहुत कम वृद्धि हुई है। इसके विपरीत सामान्य वर्ग के 45.16% उत्तरदाताओं की राजनीतिक सहभागिता में बहुत कम, 35.48% उत्तरदाताओं में सामान्य तथा 19.35% उत्तरदाताओं में बहुत अधिक वृद्धि हुई है।

सारणी सं0 4 से स्पष्ट होता है कि उत्तरदाताओं की राजनीतिक सहभागिता में परिवर्तन की प्रवृत्ति में सामाजिक वर्गवार स्थिति में अन्तर है। इस अन्तर की सार्थकता ज्ञात करने के लिए काई-वर्ग परीक्षण का प्रयोग किया गया है, जिसका विवरण निम्नवत् है :-

**सारणी सं0 4 : सामाजिक वर्गवार उत्तरदाताओं की राजनीतिक सहभागिता में परिवर्तन की प्रवृत्ति में अन्तर की सार्थकता**

सामाजिक वर्ग	राजनीतिक सहभागिता में परिवर्तन की प्रवृत्ति						योग
	बहुत कम		सामान्य		बहुत अधिक		
	प्राप्त	अनुमानित	प्राप्त	अनुमानित	प्राप्त	अनुमानित	
अनु0 जाति	7	11.55	16	16.80	19	13.65	42
अ0पि0व0	12	12.93	21	18.80	14	15.28	47
सामान्य	14	8.53	11	12.40	6	10.08	31
<b>कुल</b>	<b>33</b>	<b>33</b>	<b>48</b>	<b>48</b>	<b>39</b>	<b>39</b>	<b>120</b>

काई-वर्ग का प्राप्त मान = 9.680

स्वतन्त्रता अंश ( $df$ ) =  $(3-1) \times (3-1) = 2 \times 2 = 4$

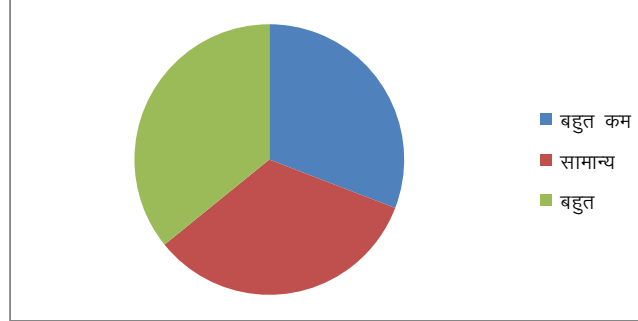
सम्भाव्यता स्तर = 0.05

स्वतन्त्रता अंश 4 एवं सम्भाव्यता स्तर 0.05 पर तालिका काई-वर्ग = 9.488

उत्तरदाताओं की राजनीतिक सहभागिता में परिवर्तन की प्रवृत्ति में सामाजिक वर्गवार स्थिति का आगणित काई-वर्ग मान (9.68) स्वतन्त्रता अंश 4 एवं सम्भाव्यता स्तर 0.05 पर सारणी काई-वर्ग (9.488) से अधिक है। अतः यह कहा जा सकता है कि सामाजिक वर्गवार उत्तरदाताओं की राजनीतिक सहभागिता में परिवर्तन की प्रवृत्ति में सार्थक अन्तर है।

ग्रामीण शक्ति संरचना में परिवर्तन की प्रवृत्ति –

पाईचित्र सं0 2 : ग्रामीण शक्ति संरचना में परिवर्तन



सारणी सं0 5 : ग्रामीण शक्ति संरचना में परिवर्तन के बारे में उत्तरदाताओं की सामाजिक वर्गवार राय

परिवर्तन की स्थिति	सामाजिक वर्गवार उत्तरदाताओं का वितरण					
	अनु0 जाति		अ0पि0व0		सामान्य	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
बहुत कम	8	19-05	13	27-66	16	51-61
सामान्य	15	35-71	16	34-04	9	29-03
बहुत अधिक	19	45-24	18	38-30	6	19-35
<b>योग</b>	<b>42</b>	<b>100-00</b>	<b>47</b>	<b>100-00</b>	<b>31</b>	<b>100-00</b>

काई-वर्ग का प्राप्त मान = 10.103\*

सारणी सं0 5 तथा पाईचित्र सं0 2 में प्रदर्शित ग्रामीण शक्ति संरचना में परिवर्तन की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं की राय का विश्लेषण करने से स्पष्ट है कि अनुसूचित जाति के 45.24% उत्तरदाताओं के अनुसार ग्रामीण शक्ति संरचना में बहुत अधिक परिवर्तन हुआ है, जबकि इस वर्ग के 35.71% उत्तरदाताओं के अनुसार ग्रामीण शक्ति संरचना के सामान्य तथा 19.05% उत्तरदाताओं के अनुसार बहुत कम परिवर्तन हुआ है। वहीं अन्य पिछड़ा वर्ग के 38.3% उत्तरदाताओं के अनुसार ग्रामीण शक्ति संरचना में बहुत अधिक, 34.04% उत्तरदाताओं के अनुसार सामान्य तथा 27.66% उत्तरदाताओं के अनुसार बहुत कम परिवर्तन हुआ है। इसके विपरीत सामान्य वर्ग के 51.61% उत्तरदाताओं के अनुसार ग्रामीण शक्ति संरचना में बहुत कम, 29.03% उत्तरदाताओं के अनुसार सामान्य तथा 19.35% उत्तरदाताओं के अनुसार बहुत अधिक परिवर्तन हुआ है।

सारणी सं0 5 से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण शक्ति संरचना में बहुत अधिक परिवर्तन होना मानने वालों में सबसे अधिक उत्तरदाता अनु0 जाति (19.35%) से हैं। इसके विपरीत बहुत कम परिवर्तन होना मानने वाले उत्तरदाताओं में सबसे अधिक उत्तरदाता सामान्य वर्ग (51.61%) से तथा सबसे कम उत्तरदाता अनुसूचित जाति (19.05%) के हैं। इस अन्तर का आगणित काई-वर्ग मान 10.103 है, जो स्वतन्त्रता अंश 4 एवं सम्भाव्यता स्तर 0.05 पर सारिणी काई-वर्ग मान (9.488) से अधिक है। इससे स्पष्ट है कि ग्रामीण शक्ति संरचना में परिवर्तन की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं की राय में सामाजिक वर्गवार सार्थक अन्तर है।

**सारणी सं0 6 : ग्रामीण शक्ति संरचना में परिवर्तन के बारे में उत्तरदाताओं की आर्थिक वर्गवार राय**

परिवर्तन की स्थिति	आर्थिक वर्गवार उत्तरदाताओं का वितरण					
	निम्न		मध्यम		उच्च	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
बहुत कम	11	21.15	10	28.57	16	<b>48.48</b>
सामान्य	16	30.77	14	40.00	10	30.30
बहुत अधिक	25	48.08	11	31.43	7	21.21
<b>योग</b>	<b>52</b>	<b>100.00</b>	<b>35</b>	<b>100.00</b>	<b>33</b>	<b>100-00</b>

काई वर्ग का प्राप्त मान = 9.967\*

सारणी सं0 6 में दर्शित ग्रामीण शक्ति संरचना में परिवर्तन की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं की आर्थिक वर्गवार राय का विश्लेषण करने से स्पष्ट है कि निम्न आर्थिक स्थिति वाले 48.08% उत्तरदाताओं के अनुसार ग्रामीण शक्ति संरचना में बहुत अधिक परिवर्तन हुआ है, जबकि इस वर्ग के 30.77% उत्तरदाताओं के अनुसार ग्रामीण शक्ति संरचना में सामान्य तथा 21.15% उत्तरदाताओं के अनुसार बहुत कम परिवर्तन हुआ है। वहीं मध्यम आय वर्ग के 40% उत्तरदाताओं के अनुसार ग्रामीण शक्ति संरचना में सामान्य, 31.43% उत्तरदाताओं के अनुसार बहुत अधिक तथा 28.57% उत्तरदाताओं के अनुसार बहुत कम परिवर्तन हुआ है। इसके विपरीत उच्च आयवर्ग के 48.48% उत्तरदाताओं के अनुसार ग्रामीण शक्ति संरचना में बहुत कम, 30.3% उत्तरदाताओं के अनुसार सामान्य तथा 21.21% उत्तरदाताओं के अनुसार बहुत अधिक परिवर्तन हुआ है।

सारणी सं0 6 से यह भी स्पष्ट होता है कि ग्रामीण शक्ति संरचना में बहुत कम परिवर्तन होना मानने वालों में सबसे अधिक उत्तरदाता उच्च आयवर्ग (48.48%) से तथा सबसे कम उत्तरदाता निम्न आयवर्ग (21.15%) से हैं। इसके विपरीत बहुत अधिक परिवर्तन होना मानने वाले उत्तरदाताओं में सबसे अधिक उत्तरदाता निम्न आय वर्ग (48.08%) से तथा सबसे कम उत्तरदाता उच्च आय वर्ग (21.21%) के हैं। इस अन्तर का आगणित काई-वर्ग मान 9.967 है, जो स्वतन्त्रता अंश 4 एवं सम्भाव्यता स्तर 0.05 पर तालिका काई-वर्ग मान (9.488) से अधिक है। इससे स्पष्ट है कि ग्रामीण शक्ति संरचना में परिवर्तन की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं की राय में वर्गवार सार्थक अन्तर है।

**सारणी सं0 7 : ग्रामीण शक्ति संरचना में परिवर्तन के बारे में उत्तरदाताओं की शैक्षिक वर्गवार राय**

परिवर्तन की स्थिति	शैक्षिक स्थिति के अनुसार उत्तरदाताओं का वितरण					
	निम्न		मध्यम		उच्च	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
बहुत कम	8	22.22	13	26.53	16	45.71
सामान्य	12	33.33	19	38.78	9	25.71
बहुत अधिक	16	44.44	17	34.69	10	28.57
<b>योग</b>	<b>36</b>	<b>100.00</b>	<b>49</b>	<b>100.00</b>	<b>35</b>	<b>100-00</b>

काई वर्ग का प्राप्त मान = 5.996

सारणी सं0 7 में प्रदर्शित ग्रामीण शक्ति संरचना में परिवर्तन की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं की शैक्षिक वर्गवार राय का विश्लेषण करने से स्पष्ट है कि निम्न शैक्षिक स्थिति वाले 44.44% उत्तरदाताओं के अनुसार ग्रामीण शक्ति संरचना में बहुत अधिक परिवर्तन हुआ है, जबकि इस वर्ग के 33.33% उत्तरदाताओं के अनुसार ग्रामीण शक्ति संरचना में सामान्य तथा 22.22% उत्तरदाताओं के अनुसार बहुत कम परिवर्तन हुआ है। वहीं मध्यम शैक्षिक स्थिति के 38.78% उत्तरदाताओं के अनुसार ग्रामीण शक्ति संरचना में सामान्य, 34.69% उत्तरदाताओं के अनुसार बहुत अधिक तथा 26.53% उत्तरदाताओं के अनुसार बहुत कम परिवर्तन हुआ है। इसके विपरीत उच्च शैक्षिक स्थिति के 45.71% उत्तरदाताओं के अनुसार ग्रामीण शक्ति संरचना में बहुत कम, 28.57% उत्तरदाताओं के अनुसार बहुत अधिक तथा 25.71% उत्तरदाताओं के अनुसार सामान्य परिवर्तन हुआ है।

सारणी सं0 7 से यह भी स्पष्ट होता है कि ग्रामीण शक्ति संरचना में बहुत कम परिवर्तन होना मानने वालों में सबसे अधिक उत्तरदाता उच्च शैक्षिक स्थिति (45.71%) से तथा सबसे कम उत्तरदाता निम्न शैक्षिक स्थिति (22.22%) के हैं। इसके विपरीत बहुत अधिक परिवर्तन होना मानने वाले उत्तरदाताओं में सबसे अधिक उत्तरदाता निम्न शैक्षिक (44.44%) के तथा सबसे कम उत्तरदाता उच्च शैक्षिक स्थिति (28.57%) के हैं। इससे स्पष्ट है कि ग्रामीण शक्ति संरचना में परिवर्तन की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं की राय में शैक्षिक वर्गवार अन्तर है, परन्तु इस अन्तर का आगणित कार्ई-वर्ग मान 5.996 है, जो स्वतन्त्रता अंश 4 एवं सम्भाव्यता स्तर 0.05 पर तालिका कार्ई-वर्ग मान (9.488) से कम है। अतः यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण शक्ति संरचना में परिवर्तन की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं की शैक्षिक वर्गवार राय में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

#### निष्कर्ष :

उल्लिखित विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष निम्नवत् हैं :-

सामाजिक वर्गवार उत्तरदाताओं की राजनीतिक सहभागिता में परिवर्तन की प्रवृत्ति में सार्थक अन्तर है (सारणी संख्या 4 आगणित कार्ई-वर्ग मान 9.68)। इसका कारण यह है कि सामान्य जाति के लोगों में पूर्व में राजनीतिक सहभागिता की उच्च स्थिति थी, परन्तु नवीन पंचायती राज व्यवस्था के अन्तर्गत कमजोर सामाजिक वर्ग को मिल रहे अवसरों के कारण उनकी राजनीतिक सहभागिता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

ग्रामीण शक्ति संरचना में परिवर्तन की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं की राय में सामाजिक वर्गवार सार्थक अन्तर है (सारणी संख्या 5 आगणित कार्ई-वर्ग मान 10.103)। इससे स्पष्ट है कि ग्रामीण शक्ति संरचना में परिवर्तन तो हुआ है और इस परिवर्तन के फलस्वरूप अनुसूचित जाति तथा अन्य पिछड़ा वर्ग के नये नेतृत्व का उदय भी हुआ है, लेकिन प्रभुत्वशाली जातियाँ इसे स्वीकार करने पर हिचक रही हैं।

ग्रामीण शक्ति संरचना में परिवर्तन की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं की राय में आर्थिक वर्गवार सार्थक अन्तर भी है (सारणी संख्या 6 आगणित कार्ई-वर्ग मान 9.967)। आर्थिक वर्गवार उत्तरदाताओं की राय में सार्थक अन्तर होने का कारण यह हो सकता है कि नवीन पंचायती राज व्यवस्था के फलस्वरूप ग्रामीण शक्ति संरचना में जो परिवर्तन हुआ है, वह मुख्यतः राजनीतिक नेतृत्व में ही अधिक प्रभावी है। इसका ग्रामीण आर्थिक संरचना पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है। आर्थिक रूप से सम्पन्न ग्रामीण अभी भी एक शक्ति के रूप में जाने जाते हैं।

ग्रामीण शक्ति संरचना में परिवर्तन की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं की राय में शैक्षिक वर्गवार अन्तर तो है, परन्तु यह अन्तर सार्थक नहीं है (सारणी संख्या 7 आगणित कार्ई-वर्ग मान 5.996)।



अन्त में अत्यन्त संक्षेप में कहा जा सकता है कि स्थानीय स्वशासन के अंग पंचायती राज व्यवस्था ने ग्रामीण शक्ति संरचना को निश्चित रूप से परिवर्तित किया है, परन्तु यह परिवर्तन मुख्य रूप से राजनीतिक संरचना का ही हुआ है। सामाजिक एवं आर्थिक संरचना में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।

### संदर्भ सूची

1. अटल, योगेश (1971); लोकल कम्युनिटीज एण्ड नेशनल पॉलिटिक्स, दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
2. अवस्थी, ए० एवं ए० पी० अवस्थी (2008); भारतीय प्रशासन, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल।
3. आहुजा, राम (2011); भारतीय समाज, जयपुर, रावत पब्लिकेशंस।
4. काला, सुधा (2008); पंचायती राज ग्रामीण विकास का राज, कुरूक्षेत्र, वर्ष-54, अगस्त पृ० 17-20।
5. कोठारी, रजनी (1970); कास्ट इन इण्डियन पॉलिटिक्स, नई दिल्ली, ओरिएंट लाँगमैन।
6. टिकर ह्यूज (1967); दि फाउण्डेशन ऑफ लोकल सेल्फ-गवर्नमेंट इन इण्डिया, पाकिस्तान एण्ड बर्मा, बाम्बे, लालवानी पब्लिशर्स।
7. नारायण, इकबाल तथा माथुर, एस०डी० (1969); पंचायतीराज कंसेप्ट एण्ड इंसपाइरेशन, बाम्बे, एशिया पब्लिशिंग हाउस।
8. बेतेई, आन्द्रे (1966); कास्ट, क्लास एण्ड पॉवर: चेंजिंग पैटर्न्स ऑफ स्ट्रैटीफिकेशन इन ए तंजौर विलेज, दिल्ली, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस।
9. भारत सरकार (1978); अशोक मेहता समिति का प्रतिवेदन, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार।
10. भारत सरकार (1986); लक्ष्मीमल सिंघवी समिति का प्रतिवेदन, नई दिल्ली, पंचायतीराज प्रपत्र, ग्रामीण विकास विभाग, भारत सरकार।
11. भारत सरकार (1987); जी०वी०के० राव समिति का प्रतिवेदन, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, योजना आयोग, भारत सरकार।
12. मुकर्जी, आर० के० (2006); लोकल गवर्नमेंट इन एंशिअंट इण्डिया, सेवेन्थ एडीसन, फर्स्ट पब्लिशड इन 1958, नई दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।
13. मेरिल, एफ० ई० एण्ड एच०डब्ल्यू० एलरिज, (1949); कल्चर एण्ड सोसाइटी, न्युयार्क, प्रेंटिस हाल।
14. रेड्डी, जी० आर० (1970); पैटर्न्स ऑफ पंचायती राज इन इण्डिया, नई दिल्ली, मैकमिलन।
15. लवानियाँ, एम०एम० व जैन, शशि के० (1987); ग्रामीण समाजशास्त्र, जयपुर, रिसर्च पब्लिकेशन्स।
16. विद्यालंकार, सत्यकेतु (1965); प्राचीन भारत की शासन संस्थाएं और राजनीति विचार, दिल्ली, श्रीसरस्वती सदन।
17. शर्मा, अशोक (2002); भारत में स्थानीय प्रशासन, जयपुर, आर०बी०एस०ए० पब्लिशर्स।
18. सरकार, डी० सी० (1955); सेलेक्टेड इंस्क्रिप्शन्स, वियरिंग आन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, कलकत्ता।

# भारतीय लोकतंत्र में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता

प्रशांत कुमार ठाकुर

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, सी.एम.पी. डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

गोविन्द गौरव

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, सी.एम.पी. डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

ईमेल: prashantthakur.au@gmail.com

सारांश: लोकतंत्र में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता पारंपरिक रूप से विश्व के अधिकतर देशों में हाशिए पर रही है। भारतीय लोकतंत्र भी इसका अपवाद नहीं है, हालांकि संविधान निर्माण के साथ ही यहाँ महिलाओं को समान राजनीतिक और नागरिक अधिकार प्रदान कर दिए गए थे। लेकिन यदि भारत में चुनावों में महिलाओं की मतदान सहभागिता को देखें तो प्रथम लोकसभा चुनाव 1951-52 में स्थिति ऐसी थी कि लगभग 28 लाख महिलाएं मतदाता सूची में अपने नाम का उल्लेख किसी की पत्नी अथवा माँ के रूप में होने की वजह से मतदान से ही वंचित रह गई थीं। भारत में लोकतंत्र और शिक्षा के विकास के साथ इस प्रवृत्ति में व्यापक बदलाव देखने को मिले और चुनाव दर चुनाव महिलाओं की मतदान सहभागिता में वृद्धि देखी गई। पर इस दिशा में विशेष बदलाव 17वीं लोकसभा चुनाव 2019 में आया जब महिलाओं का मतदान प्रतिशत पुरुष मतदाताओं के समतुल्य पहुँच गया। महिला मतदाताओं की राजनीतिक सहभागिता में कुछ ऐसी ही सकारात्मक प्रवृत्ति वर्ष 2022 में पाँच राज्यों की विधानसभा के लिए हुए चुनावों में भी परिलक्षित होती है जहाँ महिलाओं की सहभागिता पुरुषों के समतुल्य या अधिक दर्ज हुई है। ऐसे में यह शोध आलेख भारत की लोकतान्त्रिक राजनीति में महिला मतदाताओं की उभरती राजनीतिक सहभागिता, विशेषकर मतदान सहभागिता में वृद्धि की प्रवृत्तियों और उसके कारकों को विश्लेषित करने का प्रयास है। प्रस्तुत शोधपत्र में शासन की सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक नीतियों का महिलाओं की मतदान सहभागिता पर पड़ने वाले प्रभावों का भी परीक्षण किया गया है तथा इसके भावी निहितार्थों को भी अन्वेषित किया गया है।

संकेत शब्द : भारतीय लोकतंत्र, चुनावी राजनीति, महिला, राजनीतिक सहभागिता, मतदान सहभागिता

## प्रस्तावना

लोकतंत्र को सशक्त एवं गतिशील बनाए रखने के लिए निश्चित अवधि पर चुनाव और चुनावों में जनता की सहभागिता आवश्यक है। मतदान राजनीतिक सहभागिता का एक औपचारिक और सामान्य तरीका है जो जनमत को अभिव्यक्त करता है। राजनीतिक सहभागिता की अवधारणा में इसके अतिरिक्त चुनाव में उम्मीदवारी, किसी दल अथवा उम्मीदवार के लिए चुनाव प्रचार, राजनीतिक पद ग्रहण, दल एवं दबाव समूह की सदस्यता, राजनीतिक आन्दोलनों में सहभागिता, जनप्रतिनिधियों तथा संस्थाओं से संवाद आदि तत्व भी सम्मिलित होते हैं (कुमार और मिश्रा, 2022; राय, 2017)। चूँकि चुनाव लोकतंत्र का मूल तत्व है, ऐसे में राजनीतिक विश्लेषकों का मानना है कि मतदान में सहभागिता ही राजनीतिक सहभागिता के अन्य उद्देश्यों की प्राप्ति का केन्द्रीय बिंदु है। मतदान की प्रक्रिया में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी निश्चित रूप से किसी भी देश की राजनीतिक प्रणाली को सुदृढ़ता प्रदान करने के साथ साथ उसकी सार्थकता को दर्शाती है। लेकिन पारम्परिक सामाजिक संरचना में प्रभावी रूप से विद्यमान पितृसत्ता के तत्व तथा उनसे उपजे अन्य

कारकों से वैश्विक स्तर पर राजनीति सहित सार्वजनिक जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी महिलाओं की सहभागिता हाशिए पर रही है (संयुक्त राष्ट्र, 2005)। राजनीतिक सहभागिता के स्तर पर तो वैश्विक स्थिति ऐसी थी कि बहुत से देशों में महिलाओं को आरम्भ में मताधिकार से ही वंचित रखा गया था।

भारतीय में संविधान द्वारा आरम्भ में ही सार्वभौमिक मताधिकार एवं अन्य संवैधानिक उपबंधों की व्यवस्था कर राजनीति में महिला सहभागिता के लिए अवसर की समानता का प्रावधान किया गया (राय, 2017)। लेकिन तत्कालीन भारतीय परिदृश्य के सामाजिक-सांस्कृतिक मानदंड, लैंगिक रूढ़िवादिता तथा शिक्षा एवं जागरूकता का अभाव और आर्थिक स्थिति जैसे कारकों से भी महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता गंभीर प्रभावित होती रही है (अत्री, 2022; राय, 2011)। ऐसी परिस्थिति में इन संवैधानिक प्रावधानों का समुचित उपभोग सरल नहीं था। फलतः स्वतंत्रता के आरंभिक दशकों में मतदान तथा विधायी सदन की सदस्यता के स्तर पर महिलाओं की सहभागिता पुरुषों की अपेक्षा काफी कम रही।

मतदान सहभागिता के स्तर पर वर्ष 1980 तक प्रत्येक लोकसभा चुनावों में पुरुष एवं महिला मतदाताओं के मध्य 10 प्रतिशत से अधिक का लैंगिक अंतर ऋणात्मक रूप से महिलाओं के पक्ष में निरंतर बना रहा। इस अवधि में विधायी सदन में भी महिलाओं की संख्या अधिकतम 6 प्रतिशत तक ही पहुँच सकी। हालांकि चुनाव आयोग तथा अन्य सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं के द्वारा इस दिशा में निरंतर किए प्रयासों तथा इस दौरान साक्षरता में हुई वृद्धि से महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति बेहतर हुई (कार्नेगी, 2018; राय, 2017; कुमार और गुप्ता, 2015)। इन सुधारों के फलस्वरूप चुनावी राजनीति के प्रति उनकी बढ़ती जागरूकता ने अंततः भारत की राजनीति में महिलाओं की सहभागिता को गति प्रदान की।

17वीं लोकसभा चुनाव 2019 में मतदान सहभागिता का लिंगानुपात महिलाओं के पक्ष में रहा तथा इसी चुनाव से विधायी सदन में भी अब तक की सबसे बड़ी संख्या के साथ महिला सांसदों ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। इस दौरान कई राज्यों के विधानसभा चुनावों में भी महिला मतदाताओं की सहभागिता पुरुषों की अपेक्षा अधिक रहीं है। भारत में महिलाओं की इस उभरती राजनीतिक सहभागिता को प्रवीण राय (2017) ने 'साइलेंट फेमिनिज्म' तथा मुदित कपूर और शामिका रवि (2014) ने 'साइलेंट रिवोल्यूशन' की संज्ञा दी है।

महिला मतदाताओं की राजनीतिक सहभागिता में अध्ययन से सम्बद्ध इस शोध पत्र में चुनावी राजनीति में 16वीं और 17वीं लोकसभा चुनाव के दौरान मतदान सहभागिता की उभरती प्रवृत्तियों और इस पर प्रभाव डालने वाले कारकों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। यहां विशेष रूप से शासन की सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक नीतियों, कल्याणकारी योजनाओं एवं सुधारात्मक कार्यों का महिलाओं की मतदान सहभागिता पर पड़ने वाले प्रभावों का भी परीक्षण करते हुए इसके भावी निहितार्थों को भी अन्वेषित करने का प्रयास किया गया है।

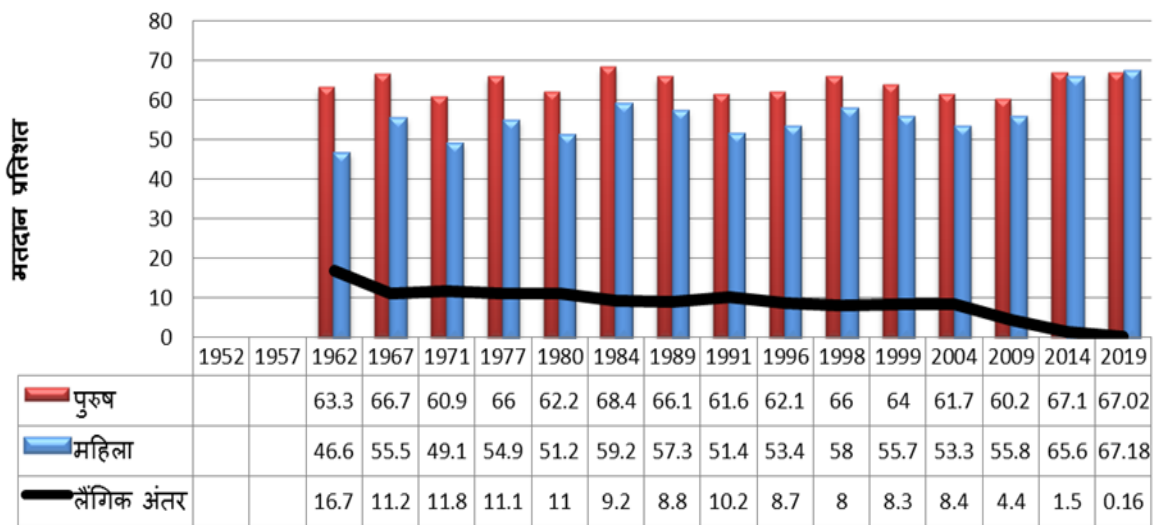
## भारत में लोकसभा चुनावों में महिला मतदाताओं की सहभागिता

भारत के आरंभिक लोकसभा चुनावों में महिला मतदाताओं की सहभागिता पुरुषों की अपेक्षा काफी कम रही है। चुनावी राजनीति में महिला मतदाताओं की सहभागिता का अध्ययन करते समय प्रथम लोकसभा चुनाव का वह परिदृश्य स्वतः रेखांकित हो उठता है, जिसमें बड़ी संख्या में महिलाओं ने मतदाता सूची में अपने नाम का उल्लेख किसी की पत्नी अथवा माँ ('अ' की पत्नी, 'ब' की माँ) के रूप में किया था, फलस्वरूप सुधार के बावजूद लगभग 28 लाख महिलाएँ इस कारण मतदान से वंचित रह गईं (भारत निर्वाचन आयोग, 1952)। प्रथम लोकसभा चुनाव में महिला मतदाताओं की इस स्थिति के लिए सामाजिक कारकों के साथ साथ न्यूनतम महिला साक्षरता दर (8.86%) को भी अहम कारक माना

जा सकता है। भारत निर्वाचन आयोग द्वारा लिंगजन्य वर्गीकरण के आधार पर मतदान के आंकड़ों को तीसरे लोकसभा चुनाव 1962 में पहली बार प्रस्तुत किया गया। इस चुनाव में पुरुषों का मतदान 63.3 प्रतिशत रहा, वहीं महिला मतदान 46.6 प्रतिशत ही दर्ज हुआ। पुरुष एवं महिला मतदाताओं के मध्य लिंगगत आधार पर 16.7 प्रतिशत का यह अंतर तीसरे लोकसभा चुनाव के मतदान सहभागिता में व्यापक लिंगगत विषमता को इंगित करता है। हालांकि चौथे लोकसभा चुनाव 1967 में 55.5 प्रतिशत मतदान के साथ महिलाओं के मत में लगभग नौ प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई जबकि इस दौरान पुरुष मतदान में केवल तीन प्रतिशत की वृद्धि हुई। महिलाओं के मतदान में हुई वृद्धि के बावजूद भी मतदान सहभागिता का लिंगगत अंतर 11.2 प्रतिशत बना रहा (आरेख 1.1)। पाँचवी लोकसभा के लिए 1971 में हुए चुनाव में पुरुष एवं महिला मतदान में लगभग छः प्रतिशत की गिरावट हुई तथा इस दौरान भी लिंगगत अंतर 11 प्रतिशत से अधिक ही रहा। पुरुष एवं महिला मतदाताओं के मध्य मतदान सहभागिता में इस तरह की विषमता कमोबेश 1991 के लोकसभा चुनाव तक निरंतर परिलक्षित होती रही। 1962 से 1991 के दौरान मतदान सहभागिता का लिंगगत अंतर महिलाओं के विरुद्ध औसतन 11 प्रतिशत से अधिक रहा (आरेख 1.1)। इस अवधि में न्यून साक्षरता, जागरूकता का अभाव, कम आयु में विवाह, महिला केन्द्रित योजनाओं का अभाव तथा महिलाओं के सन्मुख आजीविका का संकट आदि ऐसे कारक विद्यमान रहे, जिन्होंने राजनीति में महिलाओं की सहभागिता को नकारात्मक तरीके से प्रभावित किया। हालांकि 1991 के पश्चात हुए चुनावों में यह अंतर शनैः शनैः सिमटता गया (आरेख 1.1)।

आरेख 1.1

### मतदान सहभागिता 1962-2019



स्रोत: भारत निर्वाचन आयोग (2019 के आंकड़ों में पोस्टल बैलेट के आंकड़ों को सम्मिलित नहीं किया गया है।)

वर्ष 1996 से 2004 की अवधि में देश में व्याप्त राजनीतिक अस्थिरता के बीच हुए चार लोकसभा चुनावों में मतदान सहभागिता के लिंगगत अंतर में यथास्थिति बनी रही। इस दौरान हुए लोकसभा चुनावों में यह अंतर लगभग आठ प्रतिशत के आस-पास बना रहा। भारतीय चुनावी राजनीति में इस अवधि को महिलाओं की उभरती राजनीतिक सहभागिता का आरंभिक काल समझा जा सकता है। इस अवधि में महिलाओं की सहभागिता में हुई वृद्धि के लिए 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाओं के लिए किए गए आरक्षण के प्रावधान को एक महत्वपूर्ण कारक के तौर पर देखा जाता है, जिसने राजनीति में महिलाओं के सक्रिय प्रवेश का मार्ग प्रशस्त किया

(यूनाइटेड नेशन्स, 2012)। पंचायतीराज संस्थाओं की गतिविधियों में भागीदारी के लिए प्राप्त हुआ यह अवसर महिलाओं के लिए विधानसभा तथा लोकसभा चुनावों में भी अपनी प्रभावपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराने का साधन सिद्ध हुआ। पंचायतीराज संस्थाओं के अतिरिक्त 1990 के दशक की अन्य घटनाओं ने भी महिलाओं के सार्वजनिक जीवन में सहभागिता के अवसर को बढ़ाया है। इस दौरान महिला साक्षरता में हुई वृद्धि, वैश्वीकरण की प्रक्रिया, राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के द्वारा महिला सशक्तिकरण हेतु किए गए प्रयासों ने महिलाओं को राजनीतिक गतिविधियों के प्रति जागरूक कर चुनावी राजनीति में उनकी सहभागिता को सकारात्मक रुख प्रदान किया है।

चुनावी राजनीति में महिलाओं की यह उभरती सहभागिता पंद्रहवीं लोकसभा चुनाव 2009 में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इस चुनाव में जहाँ पुरुषों का मतदान प्रतिशत अबतक का सबसे न्यूनतम रहा वहीं महिलाओं के मत प्रतिशत में दो प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई तथा लिंगगत सहभागिता का अंतर भी 8.4 से घटकर 4.4 प्रतिशत रह गया (आरेख 1.1)। इस चुनाव में महिलाओं की मतदान के साथ साथ सदन की सहभागिता में भी वृद्धि हुई जिसके फलस्वरूप पहली बार सदन में महिलाओं की संख्या 10 प्रतिशत तक पहुँची। पंद्रहवीं लोकसभा चुनाव के दौरान महिला मतदान में हुई वृद्धि में सरकार की योजनाओं विशेषकर मनरेगा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मनरेगा के अंतर्गत ग्रामीण पृष्ठभूमि की महिलाओं को 'समान कार्य के लिए समान वेतन' के आधार पर उपलब्ध हुआ रोजगार उनके आर्थिक सशक्तिकरण के साथ साथ कार्य क्षेत्र में सहभागिता की दिशा में एक सकारात्मक प्रयास सिद्ध हुआ है।

महिला सशक्तिकरण की दिशा में हुए इन प्रयासों का प्रभाव पंद्रहवीं लोकसभा चुनाव में महिला मतदान सहभागिता में वृद्धि के रूप में परिलक्षित होता है, जिसका लाभ सत्तारूढ़ यूपीए- 2 के मुख्य घटक दल रहे कांग्रेस के पक्ष में महिला मतदान में हुई दो प्रतिशत की वृद्धि (देशपांडे, 2014) के तौर पर दिखाई देता है। लोकनीति संस्था के राष्ट्रीय चुनाव सर्वेक्षण 2009 के आंकड़ों के अनुसार कांग्रेस के पक्ष में रही महिला मतदाताओं का यह रुख भारत की चुनावी राजनीति में महिला वोट बैंक जैसी अवधारणा की उत्पत्ति का भी संकेत देती है जिसकी उपस्थिति दलीय दृष्टिकोण से परिवर्तित स्वरूप में 16वीं और 17वीं लोकसभा चुनाव तथा इस दौरान राज्यों के विधानसभा के लिए हुए चुनावों में भी स्वीकार्य रही।

## 16वीं और 17वीं लोकसभा चुनाव में महिलाओं की मतदान सहभागिता

16वीं और 17वीं लोकसभा का चुनाव भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में एक बड़े परिवर्तन का द्योतक रहा है। इन चुनावों ने भारत की राजनीति में विद्यमान कई पारम्परिक मानकों तथा समीकरणों को ध्वस्त कर चुनावी राजनीति के नवीन प्रतिमानों को गढ़ा है। महिला मतदाताओं की सहभागिता के दृष्टिकोण से भी यह चुनाव नए मानकों को स्थापित करने वाला सिद्ध हुआ। 16वीं लोकसभा के लिए वर्ष 2014 में हुए चुनाव में 66.4 प्रतिशत मतदान में जहाँ पुरुष मतदान 67.1 प्रतिशत रहा वहीं महिला मतदाताओं की सहभागिता भी 65.6 प्रतिशत रही। इस चुनाव में महिला मतदाताओं की सहभागिता में 2009 के लोकसभा चुनाव की तुलना में न केवल लगभग 10 प्रतिशत की वृद्धि हुई बल्कि लिंगगत सहभागिता का अंतर भी 2 प्रतिशत से कम रह गया (आरेख 1.1)।

महिला मतदान सहभागिता के इस उभरते स्वरूप की पुनरावृत्ति 17वीं लोकसभा चुनाव 2019 में भी प्रबलता से दिखाई देती है जहाँ लिंगगत अंतर पहली बार धनात्मक रूप से महिलाओं के पक्ष में रहा। इस चुनाव में महिला मतदान 67.18 प्रतिशत दर्ज हुआ वहीं पुरुषों का मतदान 67.02 प्रतिशत रहा (आरेख 1.1)। इस चुनाव में न केवल महिलाओं की मतदान सहभागिता में वृद्धि हुई बल्कि सदन में भी महिलाओं की संख्या 78 तक पहुँच गई। इस प्रकार महिलाओं की

राजनीतिक सहभागिता के दृष्टिकोण से 16वीं लोकसभा चुनाव ने जहाँ नवीन मानक स्थापित किया वहीं 17वीं लोकसभा चुनाव ने इन्हें पुष्टि एवं निरंतरता प्रदान की है।

चुनावों में निरंतर महिलाओं की उभरती मतदान सहभागिता तथा इसकी महिला वोट बैंक के रूप में होती हुई तब्दीली ने महिलाओं को नीति निर्माण तथा चुनावी राजनीति के केंद्र में स्थापित किया है। 16 वीं लोकसभा चुनाव 2014 से राजनीतिक परिदृश्य में निरंतर यह देखा जाने लगा है कि जहाँ केंद्र तथा राज्यों में सत्तारूढ़ दलों ने महिला केन्द्रित योजनाओं के निर्माण एवं क्रियान्वयन पर बल दिया है वहीं अन्य राजनीतिक दलों ने भी अपने चुनावी घोषणा पत्रों के माध्यम से महिला विकास से सम्बंधित मुद्दों को चुनाव पटल पर रखने का प्रयास किया है।

## महिलाओं की मतदान सहभागिता में वृद्धि के निहितार्थ

महिला साक्षरता में हुई वृद्धि (63.8 प्रतिशत) तथा सार्वजनिक जीवन में बढ़ती भागीदारी ने महिलाओं में राजनीतिक गतिविधियों के प्रति जागरूक किया है (राय 2017; कुमार और गुप्ता 2015)। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अबतक हाशिए पर रही महिलाओं ने चुनावी राजनीति एवं शासन-सत्ता में सहभागिता को महिला सुरक्षा एवं विकास के साधन के रूप में स्वीकार कर हाल के चुनावों में अपनी प्रभावशाली उपस्थिति दर्ज कराई है। महिलाओं की राजनीतिक गतिविधियों के प्रति बढ़ती रूचि के संकेत पंद्रहवीं लोकसभा चुनाव 2009 से ही मिलने लगे थे, इसके पश्चात भ्रष्टाचार एवं महंगाई के विरोध में हुए आंदोलनों में उनकी उपस्थिति तथा महिला सुरक्षा के मुद्दे पर एकजुटता से महिला सहभागिता को एक दिशा प्राप्त हुई जिसकी स्पष्ट परिणति 16वीं लोकसभा चुनाव में महिला मतदान में हुई 10 प्रतिशत की वृद्धि के रूप में परिलक्षित होती है। महिलाओं की प्रभावशाली सहभागिता के फलस्वरूप महिला सुरक्षा का मुद्दा एक प्रमुख चुनावी मुद्दे के तौर पर अस्तित्व में आया जिसे चुनाव पश्चात केंद्र तथा राज्य की सरकारों ने अपने नीति-निर्माण के केंद्र में रखा है।

16वीं लोकसभा में भाजपा के नेतृत्व में गठित एनडीए सरकार की महिला विकास से सम्बंधित नीतियों ने महिला सशक्तिकरण को एक सुनियोजित दिशा प्रदान की है। इस अवधि में क्रियान्वित हुई योजनाओं में जहाँ 'सुकन्या समृद्धि' एवं 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' योजना महिला साक्षरता तथा लिंगानुपात संतुलित करने की दिशा में एक सकारात्मक कदम रहा, वहीं स्वच्छ भारत मिशन योजना(शौचालय) 'महिला गरिमा' के दृष्टिकोण से एक क्रांतिकारी पहल सिद्ध हुआ। इस अवधि की अन्य योजनाएं यथा उज्ज्वला, प्रधानमंत्री आवास, जनधन तथा मुद्रा जैसी योजनाओं के क्रियान्वयन ने महिलाओं को सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में सबल एवं सक्षम बनाया है। भारत की पारम्परिक सामाजिक संरचना के अंतर्गत सामान्यतः महिलाएं सम्पत्ति से वंचित रहीं हैं। ऐसे में आवास योजना के अंतर्गत प्राप्त हुआ घर, उज्ज्वला योजना के अंतर्गत मिली रसोई गैस, कोरोना महामारी के दौरान महिलाओं के बैंक खाते में प्राप्त हुई सहायता राशि तथा मुद्रा योजना के तहत मिलने वाले ऋण में 70 प्रतिशत सहभागिता के प्रावधान ने महिलाओं के लिए न केवल आत्मनिर्भरता का मार्ग प्रशस्त किया बल्कि महिला सुरक्षा को भी व्यापक अर्थ प्रदान किया है।

शासन-सत्ता के द्वारा सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में किए गए इन सुधारात्मक प्रयासों के सकारात्मक परिणाम महिलाओं के दैनिक जीवन के साथ साथ 17वीं लोकसभा चुनाव 2019 के मतदान में उनकी अभूतपूर्व सहभागिता के रूप दिखाई पड़ता है। महिलाओं की मतदान सहभागिता में हुई इस वृद्धि के निहितार्थ चुनाव परिणाम में भी निहित मिलते हैं, जहाँ यह स्पष्ट होता है कि महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक जीवन में किए सकारात्मक प्रयास महिलाओं की मतदान सहभागिता को निर्धारित करने के साथ साथ उनके मतदान व्यवहार को भी प्रभावित करता है। इसकी पुष्टि 17वीं लोकसभा चुनाव के दौरान तथा उसके पश्चात हुए राज्यों के विधानसभा चुनावों में रही महिलाओं की मतदान सहभागिता से भी होती है जहाँ 19 में से 14 राज्यों में महिलाओं का मतदान प्रतिशत पुरुषों से अधिक रहा (आरेख 1.2)।



## आरेख 1.2

### विधानसभा चुनावों में महिला मतदाताओं की सहभागिता (2019-2022)

राज्य एवं केंद्रशासित प्रदेश	पुरुष मतदान प्रतिशत	महिला मतदान प्रतिशत
गोआ	78.15	80.96
मणिपुर	86.05	90.51
पंजाब	71.32	71.90
उत्तर प्रदेश	59.34	62.22
उत्तराखंड	61.27	67.16
असम	81.6	82.01
केरल	73.85	73.94
पुद्दुचेरी	81.06	82.2
तमिलनाडु	72.88	72.61
पश्चिम बंगाल	81.37	81.75
बिहार	54.45	59.69
दिल्ली	62.59	62.51
आंध्रप्रदेश	79.75	79.56
अरुणाचल प्रदेश	71.19	76.56
हरियाणा	68.65	67.09
झारखण्ड	63.58	66.92
महाराष्ट्र	62.77	59.26
ओडिशा	71.82	74.08
सिक्किम	78.22	78.38
सिक्किम	78.22	78.38

17 वीं लोकसभा चुनाव के दौरान तथा उसके बाद हुए राज्यों के विधानसभा चुनावों में मतदान सहभागिता को निरूपित करती हुई इस सारणी से स्पष्ट होता है कि इस अवधि में हुए 19 राज्यों के विधानसभा चुनाव में से 14 में महिलाओं की सहभागिता पुरुषों के तुलना में अधिक रही है। जिन पाँच राज्यों में महिलाओं की सहभागिता पुरुषों की अपेक्षाकृत कम दर्ज हुई है उनमें केवल महाराष्ट्र ही एकमात्र राज्य है जहाँ यह अंतर एक प्रतिशत से अधिक रहा। 16वीं और 17वीं लोकसभा चुनावों के साथ साथ राज्यों की विधानसभा चुनावों में भी उभरती हुई भूमिका महिलाओं की मतदान सहभागिता की उभरती प्रवृत्ति में निरंतरता को दर्शाती है जिसके मूल में केंद्र तथा राज्यों की सरकारों के द्वारा महिला विकास से सम्बंधित नीतियों का सफल क्रियान्वयन है।

### निष्कर्ष

भारत की चुनावी राजनीति में पारम्परिक रूप से हाशिए पर रही महिला मतदाताओं की मतदान सहभागिता में वृद्धि 16वीं और 17वीं लोकसभा चुनावों के दौरान स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। महिला मतदाताओं की मतदान सहभागिता में यह वृद्धि अन्य लोकसभा चुनावों की तुलना में न केवल व्यापक है बल्कि इस दौरान इसकी प्रवृत्ति में स्थायित्व भी देखने को मिलता है। 16वीं लोकसभा चुनाव में उभरी इस प्रवृत्ति की 17वीं लोकसभा चुनाव में निरंतरता



तथा इसके बाद हुए राज्यों के विधानसभा चुनावों में हुई इसकी पुनरावृत्ति में निहित रहे कारकों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि, शासन-सत्ता द्वारा महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन से सम्बंधित क्षेत्रों में किए जाने वाले सुधारात्मक प्रयासों और कल्याणकारी योजनाओं का प्रभाव उनकी मतदान सहभागिता पर सकारात्मक रूप से पड़ता है। इन चुनावों में महिलाओं की मतदान सहभागिता के प्रतिशत में स्थायित्व से यह भी प्रतीत होता है कि जिन कारकों ने महिलाओं की मतदान सहभागिता में वृद्धि की है, उन्होंने निश्चित रूप से उनके मतदान व्यवहार में भी बदलाव किया है और यह बदलाव क्रमशः दो लोकसभा चुनावों में एक राजनीतिक दल की लहर के रूप में भी देखा जा सकता है। इससे स्पष्ट है कि 16वीं और 17वीं लोकसभा चुनावों में चुनावी लहर के निर्माण में भी महिला मतदाताओं की राजनीतिक सहभागिता और विशेष रूप से मतदान सहभागिता का विशेष योगदान रहा है।

### संदर्भ- सूची

1. अत्री, विभा. “इंडिविजुअल एंड मोटिवेशनल फैक्टर्स अफेक्टिंग वीमेंस पोलिटिकल पार्टिसिपेशन.” विमेंस वोटर्स इन इंडियन इलेक्शन, सम्पादित संजय कुमार, 34-58. एबिंगडन: रॉउटलेज, 2022.
2. भारत निर्वाचन आयोग. स्टैटिस्टिकल रिपोर्ट ऑन जनरल इलेक्शन्स. नई दिल्ली.  
<https://eci.gov.in/statistical-report/statistical-reports/>
3. कार्नेगी इंडोवमेंट फॉर इंटरनेशनल पीस, “इंडियन वीमेन आर वोटिंग मोर देन एवर. विल दे चेंज इंडियन सोसाइटी.” 2018
4. <https://carnegieendowment.org/2018/11/08/indian-women-are-voting-more-than-ever.-will-they-change-indian-society-pub-77677>
5. देशपांडे, राजेश्वरी (अनुवाद नरेश गोस्वामी). “क्या चाहती हैं वोटर औरतें.” प्रतिमान समय समाज संस्कृति खंड 2, अंक 1 (जनवरी-जून 2014): 173- 182.
6. कपूर, एम एंड शामिका रवि. “वीमेन वोटर्स इन इंडियन डेमोक्रेसी: साइलेंट रेवोल्यूशन.” इकनोमिक एंड पोलिटिकल विकली खंड 49, अंक 12 (22 मार्च 2014): 63-67.
7. कुमार एंड गुप्ता. “चेंजिंग पैटर्न ऑफ विमेंस टर्नआउट इन इंडियन इलेक्शन.” स्टडीज इन इंडियन पॉलिटिक्स खंड 3, अंक 1 (मई 2015): 7-18
8. कुमार, संजय एंड ज्योति मिश्रा. “पार्टिसिपेशन इन पॉलिटिक्स.” विमेंस वोटर्स इन इंडियन इलेक्शन, सम्पादित संजय कुमार, 34-58. एबिंगडन: रॉउटलेज, 2022.
9. राय प्रवीण. “वीमेंस पार्टिसिपेशन इन इलेक्टोरल पॉलिटिक्स इन इंडिया: साइलेंट फेमिनेजेशन.” साउथ एशिया रिसर्च खंड 39, अंक 1 (फरवरी 2017): 58-77.
10. राय प्रवीण. “इलेक्टोरल पार्टिसिपेशन ऑफ वीमेन इन इंडिया: की डेटरमिनेंट्स एंड बरियर्स.” इकनोमिक एंड पोलिटिकल विकली खंड XLVI, अंक 3 (15 जनवरी 2011): 46-55.
11. यूनाइटेड नेशन्स. “वीमेन एंड इलेक्शन: गाइड टू प्रोमोटिंग द पार्टिसिपेशन ऑफ वीमेन इन इलेक्शन्स.” 2005.
12. <https://www.un.org/womenwatch/osagi/wps/publication/WomenAndElections.pdf>
13. यूनाइटेड नेशन्स एंड आई.सी.आर. डब्ल्यू. “ऑपरट्यूनीटिस एंड चैलेंजेज ऑफ वीमेन पोलिटिकल पार्टिसिपेशन इन इंडिया.” 2012.
14. <https://www.icrw.org/wp-content/uploads/2016/10/India-governance-report-synthesis-2013.pdf>
15. <https://doi.org/10.1177/2321023015575210>

# कृत्-शृङ्खला: एक सूचना प्रौद्योगिकी प्रणाली

सुमित शर्मा

पी.एच.डी. शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग  
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

ई-मेल: sumitpunjab96@gmail.com

सुभाष चन्द्र

सह-आचार्य, संस्कृत विभाग  
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

ई-मेल: schandra@sanskrit.du.ac.in

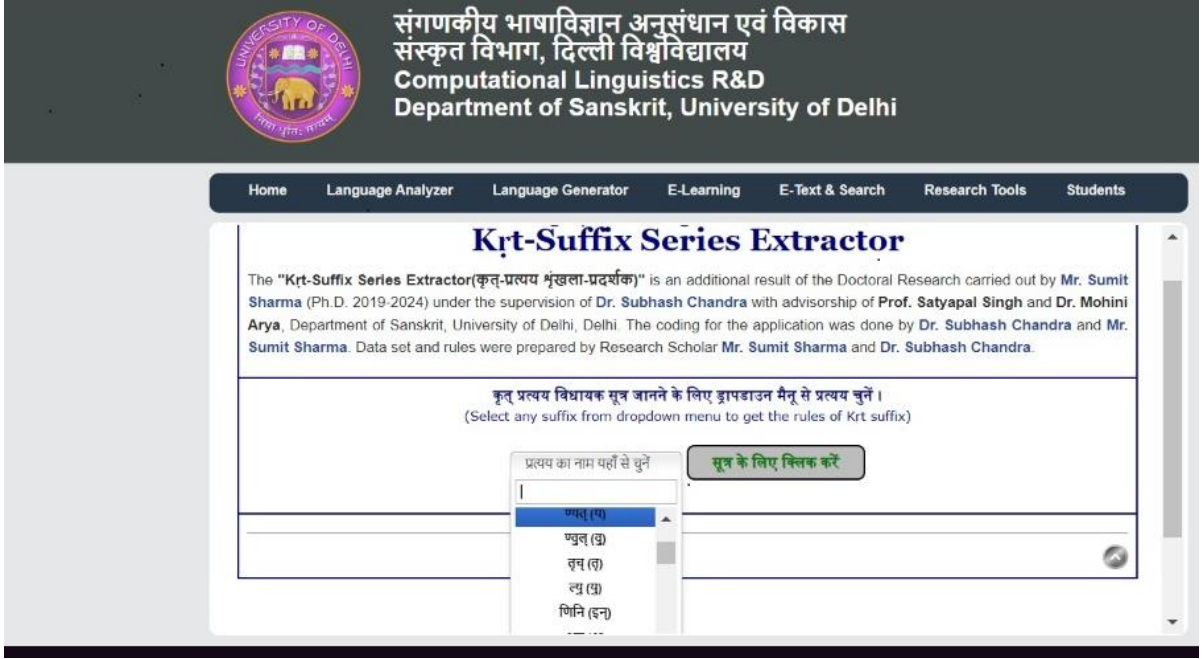
**सार-** संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में से एक है। भारतीय जनमानस में तो संस्कृत सर्वप्राचीन व पवित्रतम भाषा के रूप में मान्य है क्योंकि प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान की सभी परम्पराएं मूलरूप से संस्कृत भाषा में ही उपलब्ध हैं। अतः संस्कृत भाषा का वाङ्मय बहुमुखी एवं समृद्ध है। प्रथम भाषावैज्ञानिक के रूप में सुप्रसिद्ध महर्षि पाणिनि का व्याकरण भी संस्कृत भाषा पर ही क्रियान्वित किया गया है, जो कि सभी भाषाओं के लिए ग्राह्य व सार्वभौमिक नियमों से सम्पन्न है। इस व्याकरण की संरचना एक आधुनिक कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग भाषा के समान ही है, जिसे 4000 से भी कम सूत्रों में लिखे गया है। पाणिनीय व्याकरण में संस्कृत कृदन्तपदों के लिए अत्यधिक वैविध्यपूर्ण नियम प्राप्त होते हैं क्योंकि संस्कृत एक श्लिष्ट योगात्मक भाषा है अतः वर्तमान भाषाओं की कई प्रकार की व्याकरणिक संरचनाओं जैसे- सहायक क्रिया, सम्बन्धवाचक शब्द, क्रियाविशेषण, पूर्वसर्ग से ग्राह्य अर्थ संस्कृत भाषा में केवल कृत् प्रत्ययों द्वारा ही निष्पादित हो जाता है। सूचना तकनीक से आप्लावित वर्तमान युग में स्मार्ट फोन तथा कम्प्यूटर जैसे स्वचालित उपकरणों की निरन्तर बढ़ती कार्यक्षमता के कारण ज्ञान परम्पराओं के आदान-प्रदान के माध्यमों में भी आमूल-चूल परिवर्तन देखने को मिला है। शैक्षिक क्षेत्रों में भी ई-पुस्तकों एवं ऑनलाइन सामग्रियों ने पुस्तकों व ग्रन्थों की कागज़ी प्रति का स्थान ग्रहण कर लिया है। यद्यपि सभी विषयों से सम्बन्धित ऑनलाइन सामग्री उपलब्ध हैं परन्तु संस्कृत भाषा आज भी इस क्षेत्र में बहुत पीछे है। इसी दिशा में संस्कृत को ऑनलाइन प्लेटफॉर्म पर लाने की दिशा में यह एक प्रयास है। प्रस्तुत शोधपत्र का प्रमुख उद्देश्य एक ऑनलाइन तन्त्र का प्रदर्शन करना है जिसे सभी संस्कृत कृत्-प्रत्ययों से सम्बन्धित पाणिनि सूत्रों की पूर्ण सूचना एक स्थान पर प्राप्त करवाने के लिए विकसित किया गया है। यह प्रणाली दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग की वेबसाइट <http://cl.sanskrit.du.ac.in> पर उपलब्ध है। यह प्रणाली ऑनलाइन माध्यम द्वारा प्रभावी तरीके से शिक्षण और अनुसंधान के क्षेत्र में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहण कर सकती है। इसके साथ ही यह भविष्य के शोधकर्ताओं को उचित मार्गदर्शन के साथ-साथ अंतःविषय अनुसंधान कार्य करने के लिए प्रेरणा भी प्रदान करता है।

विषयबोधक शब्द: पाणिनि, अष्टाध्यायी, सिद्धान्तकौमुदी, कृत्-प्रत्यय, संस्कृत-कृदन्त, संस्कृत शब्दरूप, तकनीक विकास, ई-शिक्षण।

## प्रस्तावना

कई प्राचीन भारत विभिन्न विज्ञानों और तकनीकों की स्वदेशी ज्ञान परंपरा का एक भंडारगृह था। शास्त्रों के रूप में ज्ञात एक समृद्ध ज्ञान प्रणाली संस्कृत भाषा में प्रलेखित है। इनमें कला और विज्ञान दोनों का एक सर्वोत्कृष्ट सम्मेलन है। संस्कृत भारत की शास्त्रीय भाषा है। वास्तविकता यह है कि एक विषय क्षेत्र के रूप में संस्कृत बहुत प्राचीन है तथा दुनिया भर के विद्वान संस्कृत को एक प्राकृतिक तथा लोक भाषा मानते हैं। आधुनिक युग में एक भाषा के रूप में, इसका प्रयोग अत्यंत सीमित और बहुत विशिष्ट संदर्भ में किया जाता है फिर भी, आधुनिक भारतीय परिवेश में भाषा का अपना सामाजिक-सांस्कृतिक महत्व प्राचीन काल से ही स्थिर है। भारत ने प्रारम्भ से ही बौद्धिक परंपराओं के प्रत्येक पक्ष में सर्वोत्कृष्टता प्राप्त की है। मल्टीमीडिया के इस नवीन युग में, प्राचीन भारत की ज्ञान परंपराओं का निरंतर संचय और विस्तार हो रहा है। इनमें अध्ययन के विभिन्न क्षेत्रों के गहन रूप से एकत्रीकरण के रूप में प्राप्त वेद, ब्राह्मणों से लेकर प्राचीन भारतीय ग्रंथ, उपनिषद, षट् भारतीय दार्शनिक परंपरा और अन्य शास्त्र शामिल हैं। बिस्वास और बनर्जी (Biswas & Banerjee, 2016) संस्कृत ज्ञान परम्पराओं के महत्व पर प्रकाश डालते हैं जैसे चिकित्सा पर चरक और सुश्रुत के रचित शास्त्र, गणित पर आर्यभट्ट का कार्य, भास्कर का खगोल विज्ञान का अध्ययन, कौटिल्य जैसे उत्कृष्ट राजनीतिज्ञ और प्रशासक द्वारा लिखित ग्रन्थ और पाणिनि का व्याकरण उन्नत वैज्ञानिकता का चित्रण है। वे इन प्राचीन ग्रंथों को आधुनिक विज्ञान और तर्क के विकास के लिए मील के पत्थर के रूप में उद्धोषित करते हैं।

प्रत्येक उत्कृष्ट भाषा की तरह ही संस्कृत भाषा का एक पूर्ण व्याकरण है। “व्याकरण” शब्द ही संस्कृत भाषा का शब्द है जो वि और आङ् उपसर्गपूर्वक कृ धातु से ल्युट्(कृत) प्रत्यय लगने से बना है। शाब्दिक अर्थ के अनुसार जिसके द्वारा शब्दों को व्युत्पादित किया जाए उसे व्याकरण-शास्त्र कहा जाता है। इसी कारण महर्षि पतञ्जलि (महर्षि पतञ्जलि, 1968) ने इसे शब्दानुशासन की संज्ञा दी है। संस्कृत भाषा में व्याकरण-शास्त्र को सर्वोच्चस्थान प्राप्त है। संस्कृत में सर्वप्रथम व्याकरण पढ़ने पर जोर दिया जाता है क्योंकि इसे अन्य सभी शास्त्रों का उपकारक माना जाता है। सृष्टि के प्राचीनतम ग्रन्थ तथा प्रत्येक ज्ञान के उत्पत्तिस्थान के रूप में हमें वेद प्राप्त हैं। पाणिनि-शिक्षा (पाणिनि, 1993) में उन वेदों का मुख व्याकरण को कहा गया है। संस्कृत में व्याकरण के इस उत्कृष्ट स्थान का श्रेय महर्षि पाणिनि को जाता है, जिनका व्याकरण संस्कृत भाषा पर क्रियान्वित होते हुए भी एक सार्वभौमिक व्याकरण है। इसकी श्रेष्ठता के बावजूद, संस्कृत व्याकरण के लिए डिजिटलीकरण और ऑनलाइन तन्त्रों की कमी है। इंटरनेट के आगमन, उन्नत डिजिटल प्रौद्योगिकियों के विकास और सूचना तकनीक के उत्कर्ष के साथ, सूचनाओं का आदान-प्रदान और उपयोग डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से किया जाता है। प्रत्येक भाषा शिक्षण पद्धति को किसी न किसी रूप में व्याकरण का उपयोग करना पड़ता है क्योंकि व्याकरण भाषा का मूल है और भाषा शिक्षण में निहित है। (Vishwanatham, 2005) इसी कारण प्राचीन-काल में विद्वानों ने संस्कृत भाषा एवं वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण के अध्ययन का उपदेश किया है। उसी प्रकार डिजिटलीकरण के इस युग में भी संस्कृत भाषा की प्रासंगिकता को स्थिर रखने के लिए पाणिनीय-व्याकरण के डिजिटल अध्ययन को प्रोत्साहन मिलना आवश्यक है। जिसके लिए पाणिनीय-व्याकरण से सम्बन्धित विभिन्न ऑनलाइन तन्त्रों का निर्माण किया जाना चाहिए। उसी दिशा में “कृत्-शृङ्खला” नामक इस प्रणाली का निर्माण किया गया है। इसे आप चित्र संख्या १ में देख सकते हैं। इस सिस्टम के निर्माण का प्रमुख उद्देश्य एक ऑनलाइन नियम निष्कर्षण प्रणाली का विकास करना है जिसके द्वारा पाणिनीय-व्याकरण तक डिजिटल पहुंच को बढ़ाना है। इससे आज के इस डिजिटल युग में पाणिनीय-व्याकरण के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जा सके।



चित्र संख्या: 1

### डेटा संग्रहण एवं शोध-प्रविधि:

कम्प्यूटेशनल शब्दावली में, एक डेटाबेस इलेक्ट्रॉनिक रूप से संग्रहीत डेटा का एक संगठित संग्रह है जिसका उपयोग विशिष्ट उद्देश्यों के लिए कंप्यूटर प्रोग्राम के माध्यम से डिजिटल रूप से और सुलभ जानकारी को रिकॉर्ड और स्टोर करने के लिए किया जाता है। ये कंप्यूटर फ़ाइलों का संग्रह या किसी विशिष्ट विषय से संबंधित कंप्यूटर रिकॉर्ड होते हैं। इस प्रकार, पाणिनीय-व्याकरण के 108 कृत्-प्रत्ययों तथा 4000 से अधिक सूत्रों एवं वार्तिकों को देवनागरी लिपि में टेक्सट फ़ाइल में एकत्र और डिजिटलाइज किया गया है। जिनकी सहायता से यह सिस्टम किसी भी कृत्-प्रत्यय से सम्बन्धित सभी पाणिनीय सूत्र एवं उनसे सम्बन्धित पूर्ण सूचना प्रदान करता है। सूत्रों के हिंदी अर्थ एवं उनकी व्याख्या के लिए लघुसिद्धान्तकौमुदी पर लिखी गयी भैमी व्याख्या (वरदराज, लघुसिद्धान्तकौमुदी, 2004) तथा लघुसिद्धान्तकौमुदी पर ही प्रो. सत्यपाल सिंह जी द्वारा लिखी गयी प्रकाशिका नामक टीका (वरदराज, लघुसिद्धान्तकौमुदी, 2019), व्याकरणसिद्धान्तकौमुदी पर गोविन्दाचार्य जी द्वारा कृत् व्याख्या (भट्टोजिदीक्षित, 2011) का आश्रय लिया गया है। सूत्र, उनके अर्थ एवं व्याख्या का डेटा यूटीएफ -8 देवनागरी प्रारूप में अलग-अलग टेक्स्ट फाइलों में संरक्षित किया गया है। “कृत्-शृङ्खला” एक इनपुट-आउटपुट सिस्टम है। यह उपयोगकर्ता से इनपुट लेता है और संबंधित आउटपुट उत्पन्न करता है। डेटा निष्कर्षण के लिए मुख्य रूप से सूचना निष्कर्षण पद्धति, वेब प्रौद्योगिकी और वेब खोज विधियों का उपयोग किया गया है। एक बार इनपुट आने पर, आउटपुट देने के लिए कई बाहरी प्रोग्राम एक साथ काम करते हैं। प्रत्यय सूचकांक दिए गए प्रत्यय के साथ संबंधित सूत्रों के अंकण के अनुरूप कार्य करता, जिसका अर्थ है कि जनरेटर उससे सम्बन्धित सूत्र प्रस्तुत करता है, आउटपुट उत्पादक द्वारा उत्पन्न परिणाम को उपयोगकर्ता द्वारा इनपुट प्रत्यय के साथ स्वरूपित किया जाता है। इस प्रकार, यह प्रणाली विविध डिजिटल घटकों की मदद से काम करने वाला एक संयोजन तंत्र है। प्रमुख घटक यूजर इंटरफेस, प्रीप्रोसेसर, सूचना निष्कर्षक, सूचना उत्पादक और आउटपुट उत्पादक हैं।

उपयोगकर्ता के लिए एक यूजर-इंटरफेस भी विकसित किया गया है। सिस्टम में इनपुट के लिए एक 'ड्रॉपडाउन मेनू' सुविधा है जहां कोई व्यक्ति सभी कृत्-प्रत्ययों की सूची से किसी प्रत्यय का चयन कर सकता है और इससे संबंधित

पाणिनीय सूत्र और उनसे सम्बन्धित पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकता है। यूजर-इंटरफ़ेस उपयोगकर्ता द्वारा दिए गए इनपुट को स्वीकार करता है और उसी पृष्ठ पर संबंधित आउटपुट उत्पन्न करता है। कृत्-प्रत्ययों के लिए नियम निष्कर्षण एक वेब आधारित ऑनलाइन प्रणाली है। एक वेब-आधारित प्रणाली में दो प्रमुख भाग होते हैं: फ्रंट-एंड और बैक-एंड। फ्रंट-एंड को CSS (कैस्केडिंग स्टाइल शीट्स) और JS (जावा-स्क्रिप्ट) के साथ HTML (हाइपर टेक्स्ट मार्कअप लैंग्वेज) का उपयोग करके विकसित किया गया है। बैक-एंड में प्रोग्रामिंग लैंग्वेज, डेटाबेस और सर्वर होते हैं। इसके लिए प्रोग्रामिंग भाषा पायथन (python) का उपयोग किया गया है, डेटा को टेक्स्ट फाइलों में संग्रहीत किया जाता है और सर्वर के रूप में फ्लास्क (flask) का उपयोग किया गया है।

## सिस्टम के घटक:

इस वेब-आधारित प्रणाली को इस तरह से डिजाइन किया गया है कि इसमें एक परस्पर-संवादात्मक डेटा खोज संभव हो सके, जो सिस्टम को पूरी तरह उपयोगकर्ता के अनुकूल बनाती है और संचालन करने में भी सुलभता प्रदान करती है। यह ड्रॉपडाउन मेनू के माध्यम से उपयोगकर्ता की व्यवहार्यता के लिए प्रत्यय खोज के विकल्प भी प्रदान करता है। सूत्रों के हिंदी में अनुवाद, व्याख्या और उदाहरण भी प्रदान किए जाते हैं। सिस्टम यह भी स्पष्ट करता है कि उक्त सूत्र द्वारा होने वाला प्रत्यय किस-किस धातु से विधीयमान होगा। यह वेब-आधारित है, इसलिए व्यापक रूप से उपलब्ध है। प्रत्ययाधारित नियम निष्कर्षण इस प्रणाली की एक विशेषता है। इसलिए, यह तंत्र त्वरित और त्रुटि मुक्त है। यह शोधकर्ता को पाणिनीय-व्याकरण के सभी सूत्रों की सटीक संदर्भ संख्या भी प्रदान करता है।

## परिणाम:

यह प्रणाली दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के संगणकीय-भाषाविज्ञान अनुसंधान एवं विकास प्रकल्प द्वारा विकसित की गई है। यह इस तरह से डिजाइन किया गया है कि यह उपयोगकर्ता के अनुरूप आउटपुट उत्पन्न करने में सक्षम हो। सूचना निष्कर्षण, ऑनलाइन अनुक्रमण और अंकण तकनीकों का उपयोग करके कृत्-प्रत्ययों से सम्बन्धित अलग-अलग सूत्रों को आसानी से खोजा जा सकता है। इस प्रकार, सिस्टम द्वारा उत्पन्न परिणाम में खोजे गये प्रत्यय के संबंध में पूरी जानकारी शामिल होती है। इसमें इसके पूर्ण सटीक संदर्भ के साथ मूल सूत्र अथवा वार्तिक शामिल हैं। संदर्भ सूचकांक अध्याय एवं पाद के क्रमांक को प्रदर्शित करता है, उसके बाद उस विशेष सूत्र की संख्या को प्रदर्शित करता है। उसके साथ उस सूत्र-विशेष के कुछ उदाहरण देकर यह भी बताया जाता है कि उस सूत्र की विधीयमानता किन-किन धातुओं से है। प्रत्येक सूत्र के अर्थ और पूर्ण व्याख्या को निर्धारित करने के लिए हाइपरलिंक किया गया है। सूत्र के ऊपर कर्सर को ले जाने करने पर, उस सूत्र का अर्थ प्रकट होता है। सूत्र पर क्लिक करने से उस सूत्र की व्याख्या स्वतः प्राप्त हो जाएगी। सभी कृत्-प्रत्ययों से सम्बन्धित मूल सूत्र के साथ पूरी जानकारी प्राप्त करना, उसके अनुवाद, उदाहरण और व्याख्या विकसित प्रणाली की उपयोगिता साबित करते हैं।

## शोध की भावी संभावनाएं

यह प्रणाली विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में वैश्विक मंच पर संस्कृत और पाणिनीय-व्याकरण के अध्ययन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालेगी। पाणिनीय-व्याकरण का डिजिटलीकरण और इसकी उपलब्धता ऑनलाइन करना संस्कृत ग्रंथों में वर्णित ज्ञान परंपरा की रक्षा और पहुंच के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इस भाषा तक वैश्विक पहुंच की सीमा बढ़ाई जा सकती है और विषय का गंभीर रूप से सही ज्ञान सभी को उपलब्ध कराया जा सकता है। भविष्य में, पाणिनीय-व्याकरण के अन्य प्रमुख पक्षों जैसे तद्धित, गणपाठ, धातुपाठ और संज्ञा आदि को डिजिटलाइज करने की योजना है। इस प्रणाली की इनपुट-आउटपुट विधियों को भी बहु-लिपि बनाया जा सकता है जैसे; गुरुमुखी, रोमन

आदि । संस्कृतशास्त्रों में वर्णित वैज्ञानिक अवधारणाओं को अंकित करने की योजना है; पर्यावरण, सैन्य, प्रबंधन, चिकित्सा विज्ञान, वाणिज्य, अर्थशास्त्र आदि जैसा कि संस्कृतशास्त्रों में प्रतिपादित है । यह शिक्षकों, छात्रों और विशेष रूप से संस्कृत और ई-लर्निंग के क्षेत्र में कार्य कर रहे शोधकर्ताओं के लिए बहुत उपयोगी साबित होगा, क्योंकि वर्तमान में, भारतीय ज्ञान परंपरा तक डिजिटल पहुंच को बढ़ाने के लिए बहुत सारे कुशल ऑनलाइन उपकरण विकसित करने की आवश्यकता है ।

## संदर्भ

1. K Vishwanatham. (2005). The role of grammar in communicative language teaching. International Journal of Dravidian Linguistics, 203-210.
2. S. Biswas, & D. Banerjee. (2016). The Dead Language Sanskrit is not actually dead. Journal Of Education and Development, 6(12), 90-97.
3. पाणिनि. (1993). पाणिनि-शिक्षा. (बालकृष्ण शर्मा, & सन्तोष पण्ड्या, सं.) उज्जयिनी: श्रीनिवासरथ.
4. भट्टोजिदीक्षित. (2011). वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी श्रीधरमुखोल्लासिनी हिंदी व्याख्या समन्विता. (गोविन्दाचार्य , & लक्ष्मी शर्मा, सं.) वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन.
5. महर्षि पतञ्जलि. (1968). महाभाष्य (संस्क. १). (चारुदेव शास्त्री, सं.) दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.
6. वरदराज. (2004). लघुसिद्धान्तकौमुदी. (भीमसेन शास्त्री, सं.) दिल्ली: भैमी प्रकाशन.
7. वरदराज. (2019). लघुसिद्धान्तकौमुदी (6 सं.). (सत्यपाल सिंह, सं.) दिल्ली: शिवालिक प्रकाशन.



# प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा में गुरु का स्थान

डॉ. अमित कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर

शिक्षाशास्त्र विभाग, आर्य कन्या डिग्री कॉलेज

संघटक- इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

भारतीय जीवन प्रणाली में तो शिक्षक या गुरु का स्थान परमेश्वर के समकक्ष माना गया है। अनेक विचारकों ने तो गुरु को परमेश्वर से भी बड़ा माना है। शिक्षक या गुरु एक पांडित्यपूर्ण एवं भौतिक शरीरधारी व्यक्ति ही नहीं है अपितु वह एक आध्यात्मिक व्यक्तित्व है, जो अपनी आत्मा के प्रकाश से विद्यार्थी अर्थात् अपने शिष्य के अंतःकरण को उसी प्रकार आलोकित करता है, जैसे एक दीप से दूसरा दीप आलोकित होता है। अतः भारतीय शैक्षिक चिंतन में गुरु का स्थान समाज में प्रतिष्ठा की दृष्टि से श्रेष्ठ माना जाता है। भारतीय शिक्षा के इतिहास में गुरु के पद को गौरवान्वित करने वाले महान तपस्वी ऋषियों की परंपरा रही है, जिन के सम्मान में सम्राट भी अपना सिंहासन छोड़ कर खड़े हो जाते थे। वर्तमान काल में भी भारतीय संस्कृति एवं आदर्शों के अनुरूप शिक्षा के स्वरूप को यदि विकसित करना है तो गुरु के पद को हमें वही प्रतिष्ठा प्रदान करनी होगी। हमें यह दृष्टिकोण अपनाना होगा कि गुरु एक व्यक्ति नहीं बल्कि पद एवं संस्था है। शिक्षकों को भी अपना जीवन इस पद की गरिमा के अनुरूप ढालना होगा।

गुरु और शिक्षार्थी, शिक्षा के दो महत्वपूर्ण अंग हैं। वस्तुतः शिक्षा, गुरु और शिक्षार्थी के मध्य संपन्न होने वाली अंतर्क्रिया है। गुरु और शिक्षार्थी परस्पर व्यवहार द्वारा जिन अनुभवों का विकास करते हैं, वही शिक्षा है। स्पष्ट है शिक्षा में गुरु-शिष्य संबंधों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। वैदिक दर्शन के अनुसार भारतीय संदर्भ में गुरु-शिष्य संबंध आध्यात्मिक एवं धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रेत रहते थे, वहीं आधुनिक संदर्भ में अध्यापक व छात्र की संकल्पना तथा इन दोनों की भूमिका के विषय में पर्याप्त मतभेद है। कुछ विचारक नितांत भौतिकवादी दृष्टिकोण से गुरु तथा छात्र के संबंध को व्यापार विक्रेता तथा क्रेता अथवा उत्पादक तथा माल की संज्ञा देते हैं।

वैदिक दर्शन में शिक्षा का अभीष्ट, व्यक्ति या समाज के आभ्यंतर में विद्यमान स्वाभाविक मौलिक सत्ता का प्रस्तुतीकरण है। इसमें मानव में विद्यमान मानवता के तत्व को पूर्णता तक विकसित करने का भाव निहित है। मानव शब्द केवल भौतिक शरीर नहीं है बल्कि यह शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा इन चारों का द्योतक है। इन चारों का विकास उन्नति, संस्कार, निरोगता तथा पूर्णता ही शिक्षा का प्रयोजन है। ज्ञान चाहे लौकिक हो या अलौकिक जिससे, उसे प्राप्त करना है उसका सम्मान करना शिष्य का प्रथम कर्तव्य है। गुरु के कार्य को कर्णवेध संस्कार के समान माना गया है। कर्णवेध के समय पीड़ा के भय से बालक सिर इधर उधर ना घुमाए इसलिए मधुर बातों से उसका चित्त मोहित किया जाता है। वेधन से पीड़ा ना हो इसलिए सम्यक स्थान पर वेधन किया जाता है। इसी प्रकार गुरु मधुर व सत्य वचनों से शिष्य को विद्या दान करता है ताकि शिष्य को ऊब, नीरसता व कष्ट ना हो। गुरु कल्याणकारी सम्यक शिक्षा देता है। इससे शिष्य का जीवन आलोकित व फलीभूत हो जाता है। इस प्रकार गुरु को छात्र का पथ प्रदर्शक एवं मित्र ही नहीं बल्कि शिष्य की आत्मा माना गया है। गुरु शिष्य की प्रेरणा का स्रोत है।

वैदिक कालीन शिक्षण पद्धति में गुरु का स्थान असामान्य था। अज्ञान रूपी अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाले मार्गदर्शक को वेदों ने जन्म देने वाले माता पिता से भी श्रेष्ठ माना है। वैदिक धर्म की गुरु विषयक धारणा ने भारत में बाद में उत्पन्न हुए पंथ व उपपंथों पर भी अत्यंत गहरा प्रभाव डाला है। यह बौद्ध जैन आदि सम्प्रदायों के आचार विचारों में स्पष्ट दिखाई देता है। यही कारण है कि गुरु पूर्णिमा का पावन पर्व समस्त हिन्दुओं के लिए पवित्र है।

वैदिक राष्ट्र के गुरुओं की महत्वपूर्ण विशेषता थी उनकी बुद्धि व उनके मानस की प्रांजलता व प्रामाणिकता। विद्या दान व विद्या ग्रहण के संबंध में मान अपमान की गलत कल्पना तथा ज्ञान का झूठा दंभ उन आश्रमस्थ आचार्यों के व्यवहार में तिल मात्र भी नहीं था। गोपथ ब्राह्मण में इस संबंध में कथा का वर्णन है। मौदगल्य व मैत्रेय नाम के दो आचार्य थे। उनमें एक बार शास्त्रार्थ हुआ जिसमें मैत्रेय हार गए। तब उन्हें ज्ञात हुआ कि उन्हें गायत्री विद्या का रहस्य ज्ञात नहीं है। बस, फिर क्या था। उन्हें यह प्रतीत हुआ कि मेरा स्वतः ज्ञान अधूरा व मौके पर धोखा देने वाला है, तब तक मुझे दूसरों को शिक्षा देने का कोई अधिकार नहीं है और इसलिए उन्होंने पाठशाला बंद कर मौदगल्य का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। आजकल के महाविद्यालयों के अध्यापकों, प्राध्यापकों व आचार्यों आदि के लिए क्या यह बात मनन करने योग्य नहीं है। इतिहास बताता है कि वैदिक भारत की यह बौद्धिक प्रामाणिकता मुगलों के काल तक इस देश में विद्यमान रही। विद्या व बुद्धि के क्षेत्र में प्रामाणिकता की परंपरा जिस राष्ट्र में वेद काल से प्रवाहित होती चली आई हो, उसका राष्ट्र जीवन कितना समुज्ज्वल होगा यह बताने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रामाणिकता के साथ साथ विद्या दान करते समय गुरु शिष्य को सर्वस्व अर्पण किया करता था। उस काल में ऐसी परिस्थिति नहीं थी कि गुरु थोड़े हैं व विद्यार्थी असंख्य, और विद्यार्थियों को भी विद्या अध्ययन की समाप्ति तक गुरु गृह में ही रहना पड़ता था। इस कारण गुरु को प्रत्येक विद्यार्थी पर ध्यान दे सकना सुलभ होता था। उस समय की शिक्षण पद्धति में ही इस बात का समावेश होने के कारण विद्यार्थी अपने अध्ययन विषय में प्रवीणता प्राप्त करने के साथ चिंतन के माध्यम से भी प्रवीणता प्राप्त कर लेता था।

राजा आश्रमों की मदद अवश्य देते थे, परंतु सच पूछा जाए तो गुरु को मिलने वाला धन केवल इतना ही था जितना विद्यार्थी उन्हें विद्याध्ययन की समाप्ति के पश्चात गुरु दक्षिणा के रूप में देते थे। गुरु दक्षिणा का कोई सौदा नहीं किया जाता था। इस प्रकार का सौदा करने वाले व्यक्ति की धर्म ग्रंथों में निंदा की गई है। महाकवि कालिदास ने कहा है-

“यस्यागमः केवल जीविकाये तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति”

अर्थात् जो अपनी विद्या का उपयोग केवल पेट की ज्वाला को शांत करने के लिए करता है, वह व्यक्ति ब्राह्मण न होकर ज्ञान की दुकान लगाने वाला बनिया है।

प्राचीन भारतीय शैक्षिक चिंतन में गुरु का स्थान बहुत ही आदरणीय, पूज्य व श्रेष्ठ माना गया है। सभी प्रकार के सत्तावान, बलशाली, शौर्यवान, धनवान व्यक्तियों से भी गुरु का स्थान ऊंचा है। गुरु को आचार्य, अध्यापक, उपाध्याय, गुरु आदि नामों से संबोधित किया जाता था। उनके विद्यादान के प्रकार के अनुसार यह नाम दिए जाते थे। दैनंदिन जीवन में गुरु का आचार्य नाम स्थापित था।

जो शास्त्रों के अर्थ को अच्छी तरह से जानता है जो इन अर्थों को आचरण में स्थापित करता है, स्वयं भी आचरण में लाता है और छात्रों से भी आचरण करवाता है उसे "आचार्य" कहा जाता है। अपने आचरण से विद्यार्थी को जीवन निर्माण की प्रेरणा और मार्गदर्शन देता है वही आचार्य है। आचार्य का सबसे बड़ा गुण है उसकी विद्याप्रीति, जो जबरदस्ती पढ़ता है, जिसे पढ़ने में आलस्य आता है, जो पद, प्रतिष्ठा या पैसा अधिक मिले इसलिए पढ़ता है, कर्तव्य मानकर पढ़ता है। उसे आचार्य या गुरु नहीं कह सकते। पढ़ना, स्वाध्याय करना, ज्ञानचर्चा करना आदि का आनंद जिसे भौतिक वस्तुओं के आनंद से श्रेष्ठ लगता है जो उसी में रम जाता है। वही सही आचार्य है। आचार्य का दूसरा गुण है उसका ज्ञानवान होना, स्वाध्याय, अध्ययन और चिंतन होने से ही मनुष्य ज्ञानवान हो सकता है। आचार्य को विद्यार्थी के उसका चरित्र निर्माण,

उसके कल्याण की चिंता करने वाला होना चाहिए। छात्र को अनुशासन में रखना, संयम सिखाना भी आवश्यक है। आचार्य कभी विद्या का सौदा नहीं करता। पद, पैसा, मान, प्रतिष्ठा के लिए कभी कुपात्र को विद्यादान नहीं करते थे। योग्य विद्यार्थी को ही आगे बढ़ाते थे। आचार्य भय, लालच, खुशामद या निंदा से परे थे। आचार्य धर्म का आचरण करने वाला होते थे। आचार्य सभ्य, गौरवशील, सुसंस्कृत व्यवहार करने वाला होता था। उसके व्यवहार में हल्कापन व ओछापन नहीं होता था। आचार्य कभी संतुलन नहीं खोते थे। मन के आवेगों पर नियंत्रण रखने वाले होते थे। आचार्य विद्यार्थी के साथ साथ समाज का मार्गदर्शन करने को ही अपना कर्तव्य समझते थे। जो समाज आचार्य को सम्मान नहीं देता उसका पतन सुनिश्चित था। आज के समय में यह बातें तो हमने छोड़ दी हैं या बदल दी हैं। इसीलिए शिक्षा के क्षेत्र में गिरावट भी आई है।

इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा में गुरु की संकल्पना एक अनूठी संकल्पना है जिसके अनुरूप ही तत्कालीन शिष्यों व समग्र समाज का विकास होता था। अपने आचार विचार व ज्ञान के माध्यम से विवेकशील, ज्ञानवान व सच्चरित्र शिष्यों का निर्माण कर आदर्श समाज बनाना गुरु या गुरु का सर्वप्रधान लक्ष्य था। आधुनिक समय में भी इस महान परम्परा से बहुत कुछ अर्जित कर शिक्षा व्यवस्था में आमूल चूल परिवर्तन कर आदर्श समाज का निर्माण किया जा सकता है। इस महान भारतीय ज्ञान परंपरा का अनुसरण कर एक बार पुनः हम अपने ज्ञान की पताका वैश्विक स्तर पर फहरा सकते हैं।

#### संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. तोमर, लज्जाराम (2010), शिक्षा के मूल सिद्धान्त, नई दिल्ली: सुरुचि प्रकाशन।
2. तोमर, लज्जाराम (2012), प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति, नई दिल्ली: सुरुचि प्रकाशन।
3. काटदरे, इन्दुमति (2013), शिक्षा का समग्र विकास प्रतिमान, अहमदाबाद: पुनरुत्थान प्रकाशन सेवा ट्रस्ट।
4. लोढ़ा, डॉ. एम. (2013) नैतिक शिक्षा के विविध आयाम, जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी।
5. अल्लेकर, ए.एस. (1958), प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, वाराणसी: मनोहर प्रकाशन।
6. काटदरे, इन्दुमति (2013), भारतीय शिक्षा के व्यावहारिक आयाम, अहमदाबाद: पुनरुत्थान प्रकाशन सेवा ट्रस्ट।
7. काटदरे, इन्दुमति (2013), भारतीय शिक्षा : संकल्पना एवं स्वरूप, अहमदाबाद: पुनरुत्थान प्रकाशन सेवा ट्रस्ट।
8. हरदास, महामहोपाध्याय बाल शास्त्री (2015), वेदों में शिक्षा पद्धति, नई दिल्ली: सुरुचि प्रकाशन।
9. ज्ञान गरिमा सिन्धु (2020) नई दिल्ली: वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, भारत सरकार।
10. कूर्मपुराण (2006) गोरखपुर: गीता प्रेस।
11. त्रिवेदी, के.डी. (सं. 1993) गोपथ ब्राह्मण, वाराणसी: चौखम्भा।
12. महाभारत (1958) गोरखपुर: गीता प्रेस।

# राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय भाषाएं

डॉ. अश्वनी

सह-प्रोफेसर, शिक्षा एवं प्रशिक्षण विभाग,  
मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी,  
हैदराबाद, तेलंगाना

डॉ. अजीत कुमार बोहत

शिक्षक प्रशिक्षण और गैर-औपचारिक शिक्षा विभाग,  
जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली

## परिचय एवं पृष्ठभूमि

भारत एक बहुभाषी देश है। जिसका प्रभाव हमारी शिक्षा पर भी झलकता है। भाषायी विभिन्नता भी भारत को एक सामाजिक भाषिक तौर पर सांस्कृतिक रूप से एकता प्रदान करती है। हमें संवाद करने व अपनी बात दूसरों तक पहुंचाने के लिए एक भाषा से दूसरी भाषा के बीच संप्रेषण करना पड़ता है। भारतीय शिक्षा व्यवस्था ने भी बहुभाषी विभिन्नता को शैक्षिक प्रक्रिया का हिस्सा बनाया है। शिक्षा में विभिन्न भाषाओं से एक सकारात्मक रिश्ता भी पैदा होता है। बहुभाषावाद को आम तौर पर हम अपनी मूल भाषा की जानकारी रखते हुए अधिक भाषाओं के ज्ञान व जानकारी के रूप में समझते हैं। सरल शब्दों में दो से अधिक भाषाओं का ज्ञान व जानकारी जिसको की हम इस्तेमाल कर सकते हैं बहुभाषावाद के तौर पर परिभाषित कर सकते हैं।

करेन बोरडोनारो1 (2017) के अनुसार 'बहुभाषावाद को आम तौर पर मूल भाषा की तुलना में अधिक भाषाओं के ज्ञान के रूप में समझा जाता है। यह एक भाषा शब्द है जो एक भाषा जानने से एक भाषावाद, दो भाषाओं को जानने से द्विभाषावाद, कई भाषाओं को जानने के दायरे में बहुभाषावाद चलता है'।

यूनेस्को2 के अनुसार 'बहुभाषी शिक्षा यह शब्द कम से कम तीन भाषाओं के उपयोग को संदर्भित करता है, उदाहरण के लिए, मातृभाषा, एक क्षेत्रीय या राष्ट्रीय भाषा और शिक्षा में एक अंतर्राष्ट्रीय भाषा। यूनेस्को के आम सम्मेलन के 1999 के संकल्प ने इस दृष्टिकोण का समर्थन किया कि वैश्विक और राष्ट्रीय भागीदारी की आवश्यकताओं और सांस्कृतिक और भाषाई रूप से अलग समुदायों की विशिष्ट आवश्यकताओं को केवल बहुभाषी शिक्षा द्वारा ही संबोधित किया जा सकता है। यूनेस्को शिक्षा के सभी स्तरों पर द्विभाषी या बहुभाषी शिक्षा का समर्थन सामाजिक और लैंगिक समानता दोनों को बढ़ावा देने के साधन के रूप में और भाषाई रूप से विविध समाजों के एक प्रमुख तत्व के रूप में करता है (यूनेस्को, 2003)।

इस तरह बहुभाषावाद एक से अधिक भाषाओं का उपयोग है। ऐसा माना जाता है कि दुनिया में एक भाषा की तुलना में बहुभाषी लोगों की संख्या अधिक है। मातृभाषा के अलावा हम एक दूसरी भाषा को बोलने वालों को ज्यादातर देख सकते हैं। लेकिन बहुत से लोग एक भाषा में पढ़ते और लिखते हैं दूसरी में अपने दैनिक व घरेलू बोलचाल के भी काम करते हैं। बहुभाषावाद एक व्यक्ति या एक समुदाय के सदस्यों को दो से अधिक भाषाओं का प्रभावी रूप से इस्तेमाल करने की क्षमता है। मातृभाषा को हम ज्यादातर अनौपचारिक शिक्षा के तौर पर सीखते हैं। द्वितीय भाषा को हम औपचारिक तौर पर सीखते हैं जो कहीं ने कहीं शिक्षण व अधिगम का हिस्सा होती है। हम अपने आस पास के उदाहरणों के माध्यम से बहुभाषिकता को बहुत ही अच्छी तरह से समझ सकते हैं। जैसे किसी बच्चों के घर में तमिल बोली जाती है और स्कूल में वह अंग्रेजी व हिंदी में पढ़ता है तो इस तरह के वातावरण में बच्चा बहुत सी भाषाओं के अंदर संपर्क में आता है। इस तरह विद्यार्थी भाषायी कुशलता भी हासिल करता है।

आज उत्तर आधुनिकता के दौर में वैश्वीकरण ने ग्लोबल विलेज की संकल्पना को पृष्ठ ही नहीं किया है बल्कि उसकी नींव को मजबूत किया है। वैश्वीकरण ने बहुभाषावाद को बढ़ाया है जिससे सांस्कृतिक मेलमिलाप भी बढ़ा है। इंटरनेट क्रांति और सिसल मीडिया के दौर ने बहुभाषावाद को स्वाभाविक रूप दिया है। आज सूचना तकनीकी के दौर में विभिन्न भाषाओं के लिए व्यक्तियों का संपर्क आसान हो गया है। फेसबुक, ट्विटर, यूट्यूब व ऐप्स इत्यादि के द्वारा बहुभाषावाद बहुत ही तेज गति से हम सभी की जिंदगी का हिस्सा बन गया है। अनुवाद के क्षेत्र में कम्प्यूटर से जो क्रांति आई उससे बहुत ही आसानी से हम विभिन्न भाषाओं के अर्थ को समझ सकते हैं। गूगल ट्रांसलेशन व विभिन्न अनुवाद की ऐप्स व तरीकों को आज लोग जानते व इस्तेमाल करते हैं। आज हम विभिन्न भाषाओं के शब्दों को अपनी भाषा की लिपि में भी लिखने लगे हैं। बहुभाषावाद से अंतर्राष्ट्रीयकरण और स्थानीयकरण के बीच एक संबंधों की निरंतरता बन जाती है।

इस तरह आज के दौर में बहुभाषावाद को शिक्षण व अधिगम की प्रक्रिया के तौर पर समझ कर उसे एक संरचनात्मक रूप से हिस्सा बनाने की जरूरत है। एक देश की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं के ज्ञान को भी हम बहुभाषावाद मानते हैं। लेकिन साम्राज्यवादी व औपनिवेशिक विस्तार की नीतियों से भी बहुभाषावाद को जान बूझकर प्रशासनिक व अन्य वैचारिक लाभ व विस्तार के लिए इस्तेमाल किया जाता है। अंग्रेजी का ज्ञान विश्व में बहुभाषावाद के लिए एक तरह से आवश्यक हो गया है जिसके कारण हम भाषायी साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद की जड़ों में देख सकते हैं। लेकिन यह भी वास्तविकता है कि बहुभाषावाद से सामाजिक अंत क्रिया, चिंतन व संप्रेषण बढ़ता है। बहुभाषावाद को मनुष्य के सकारात्मक विकास की ओर कदम बढ़ाना भी कह सकते हैं। बहुभाषी शिक्षण में बच्चों की मातृभाषा को मजबूत आधार बनाकर हमें अन्य भाषाएं सीखानी चाहिए।

### बहुभाषिक कक्षा

यहां पर बहुभाषिक कक्षा से अभिप्राय है कि जब एक कक्षा में विभिन्न भाषाओं को बोलने वाले बच्चे पढ़ते हैं तो वह बहुभाषिक कक्षा कहलाती है। बहुभाषिक कक्षा में अलग-अलग भाषाओं वाले बच्चे एक साथ समान शिक्षा ग्रहण करते हैं। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाएं शामिल हैं जो कि बहुभाषावाद को संवैधानिक रूप प्रदान करता है। शहरीकरण के कारण आज हमारे छोटे-छोटे कस्बे व टाउन भी बहुभाषाविद् हो गए हैं। बढ़ते संपर्क व व्यापारिक रोजगार के कारण हमारे विद्यालयों में बहुभाषिक कक्षाएं बढ़ती जा रही हैं ज्यदातर शहरी क्षेत्रों में हमें बहुभाषिक कक्षाएं मिलती हैं। उदाहरण के तौर पर दिल्ली एक महानगर शहर है जिस कारण भारत के विभिन्न राज्यों के लोग व्यवसाय व नौकरी के कारण यहां पर रहते हैं। दिल्ली के विद्यालयों में हमें बहुभाषिक कक्षा देखने को मिल सकती है। यहां पर हिंदी, अंग्रेजी, पंजाबी और उर्दू मातृभाषा तथा अन्य भाषाएं व जानने वाले भी बहुत लोग रहते हैं। इस तरह के शहर में बहुभाषिक कक्षा का होना साधारण सी बात है। यह भी सभी शिक्षकों के लिए सोचने वाली बात है कि क्या हम कक्षा में प्रत्येक बच्चे के घर की बोली को सम्मान देते हैं।

भाषाशास्त्री रमाकांत अग्निहोत्री के अनुसार 'एक बहुभाषीय कक्षा, समाज का ही एक अभिन्न अंग एवं सामान्य परिघटना है। हमें अपने बच्चों के मानसिक विकास हेतु एकभाषीय सीमाओं से ऊपर उठकर बेहतर शिक्षा और सामाजिक बदलाव की ओर प्रयास करना चाहिए तदनु रूप, शिक्षण सामग्री, भाषा प्रशिक्षण के तरीके एवं शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में परिवर्तन अनिवार्य होंगे। यदि भाषा सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली का केंद्र बिंदु है तो बहुभाषी कक्षा की क्षमताओं एवं सम्भावनाओं को जितनी जल्दी हम समझें, उतना ही श्रेयस्कर होगा।

भाषा संबंधी बहुत से अध्ययनों से पता चला है कि बहुभाषी बच्चों की कार्यकुशलता विभिन्न भाषाओं के बच्चों के संपर्क से अच्छी होती है। बहुभाषिक कक्षा से बच्चों को एक दूसरों की संस्कृति को समझने का अवसर मिलता है जिससे सांस्कृतिक समझ का दायरा बढ़ता है। बहुभाषी कक्षा से भाषायी आधार पर समावेशी कक्षा बनती है। किसी एक भाषा पर निर्भरता नहीं रहती है। बहुभाषी ज्ञान अध्यापन अधिगम और शिक्षण का अद्भुत साधन है जिसके माध्यम से सामाजिक समझ, संज्ञानात्मक व बौद्धिक कौशलों में भी हम सक्षम होते हैं।

**राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का बहुभाषायी संदर्भ**

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 शिक्षा में भारतीय संस्कृति व सभ्यता को अंतर्निहित करने का संदेश लेकर आई हैं। यह नीति मुख्य तौर पर समावेशी शिक्षा, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान परंपरा, शिक्षा का स्थानीय व वैश्विक संदर्भ, शिक्षा में तकनीकी का यथासंभव प्रयोग, उत्कृष्ट स्तर का शोध व बहुभाषावाद पर जोर देती हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के मूल सिद्धांतों में भाषायी संबंधी मुख्य सिद्धांत है-बुनियादी साक्षरता और संख्याज्ञान को सर्वाधिक प्राथमिकता देना, बहु-विषयक और समग्र शिक्षा का विकास, बहु-भाषिकता और अध्ययन-अध्यापन के कार्य में भाषा की शक्ति को प्रोत्साहन और भाषा संबंधी बाधाओं को दूर करने में तकनीकी का उपयोग।

यह शिक्षा नीति बहुत ही चिंताजनक स्थिति पर भी बड़ी ही सच्चाई से लिखती है कि हम वर्तमान में सीखने की एक गंभीर समस्या से जूझ रहे हैं। वर्तमान में प्राथमिक विद्यालय में बड़ी संख्या में शिक्षार्थियों ने-जिसकी अनुमानित संख्या पांच करोड़ से भी अधिक है- बुनियादी साक्षरता और संख्या-ज्ञान भी नहीं सीखा है, अर्थात ऐसे बच्चों को सामान्य लेख को पढ़ने, समझने और अंकों के साथ बुनियादी जोड़ और घटाव करने की क्षमता भी नहीं है।<sup>4</sup> इस तरह बहुत ही ईमानदारी से यह शिक्षा नीति बच्चों के भाषायी ज्ञान व जानकारी पर देश को अवगत करा रही हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के मत में शिक्षा से न केवल साक्षरता और संख्याज्ञान जैसी बुनियादी क्षमताओं के साथ-साथ उच्चतर स्तर की तार्किक और समस्या-समाधान संबंधी संज्ञानात्मक क्षमताओं का विकास होना चाहिए बल्कि नैतिक, सामाजिक और भावनात्मक स्तर पर भी व्यक्ति का विकास होना आवश्यक है। इस तरह यह नीति भी शिक्षा के बहुमुखी विकास पर बल देती हैं। युवाओं के लिए भारत की विभिन्न भाषाओं को पढ़ने व जानने के महत्व पर भी यह नीति जोर देती है। बहुलतावादी समाज की सोच में विभिन्न भाषाओं की अहम भागीदारी को यह नीति पुष्ट करती है। इस संदर्भ में नीति की निम्न सिफारिशें उल्लेखनीय है-

- बच्चों की ड्रॉपआउट दर को कम करने के लिए स्थानीय भाषा में दक्ष अध्यापकों की नियुक्ति की जाएं।
- सभी भारतीय व स्थानीय भाषाओं में बच्चों की दिलचस्पी व रुचि का बाल साहित्य स्कूल व स्थानीय पुस्तकालयों में उपलब्ध कराया जाए। जिससे पढ़ने की संस्कृति का विकास हो सके। एक राष्ट्रीय पुस्तक संवर्धन नीति तैयार की जाएं।
- जिसमें सभी भाषाओं की पुस्तकें उपलब्ध हों जो डिजिटल पुस्तकालय से आसानी से उपलब्ध हो।
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में बहुभाषावाद संबंधी सुझाव व सिफारिशें (4.11 से 4.22)
- नीति में शिक्षा के माध्यम के लिए सुझाव दिया है कि छोटे बच्चे अपनी घर की भाषा/ मातृभाषा में सार्थक अवधारणाओं को अधिक तेजी से सीखते हैं और समझ लेते हैं। जहां तक संभव हो, कम से कम ग्रेड 5 तक लेकिन बेहतर यह होगा कि यह ग्रेड 8 और उससे आगे तक भी शिक्षा का माध्यम, घर की भाषा/ मातृभाषा/ स्थानीय भाषा/ क्षेत्रीय भाषा हो। इसके बाद घर पर जहां भी संभव हो स्थानीय भाषा के रूप में पढ़ाया जाता रहे। सार्वजनिक और निजी दोनों तरह के स्कूल इसकी अनुपालन हो।
- यदि भारतीय शिक्षा नीतियों के इतिहास पर नजर डाले तो यह नीति बहुत ही स्पष्ट तौर पर मातृभाषा के अध्ययन की पुरजोर सिफारिश करती है और घर की भाषा व मातृभाषा की स्पष्टता भी प्रदान करती हैं। यह नीति बच्चों के लिए घर की भाषा में अध्ययन पर जोर देती है यदि घर की भाषा में पाठ्यपुस्तकें उपलब्ध नहीं है तो नीति बहुत ही अच्छा सुझाव यह देती है कि स्थानीय अध्यापकों की नियुक्ति की जाएं जिससे बच्चों के द्वारा बोली जाने वाली भाषा और शिक्षण के बीच में किसी भी तरह का अंतराल उपस्थित ना हों।
- शिक्षकों को द्विभाषी शिक्षण अधिगम सामग्री सहित द्विभाषी तौर पर पढ़ाने में दक्ष होना चाहिए। चाहें कोई भी भाषा हो उसे उच्च गुणवत्ता के साथ पढ़ाया जाएं जिससे बच्चे भाषायी रूप से दक्ष हों।
- नीति बहुभाषावाद के संदर्भ में कहती है कि बच्चे 2 और 8 वर्ष की आयु के बीच बहुत जल्दी भाषा सीखते हैं और बहुभाषिकता से इस उम्र के विद्यार्थियों को बहुत अधिक संज्ञानात्मक लाभ होता है, फाउंडेशनल स्टेज की शुरुआत और इसके बाद से ही बच्चों को विभिन्न भाषाओं में (लेकिन मातृभाषा पर विशेष जोर देने के साथ) एक्सपोजर दिए जाएंगे। सभी भाषाओं को एक मनोरंजक और संवादात्मक शैली में पढ़ाया जाएगा।



- बहुभाषी शिक्षण के लिए आपस में द्विपक्षीय समझौते किया जा सकता है। आधुनिक तकनीकी के प्रयोग से हम बहुभाषी तौर पर शिक्षण कर सकते हैं जिससे अधिगम भी आसान हो जाएगा।
- विद्यालय स्तर पर त्रि-भाषा फार्मूले को लचीलेपन के साथ अपनाया जाए। तीनों भाषाओं को अध्ययन के लिए चुनने का अधिकार बच्चे व राज्य का होगा। बहुभाषिकता के लिए मातृभाषा व स्थानीय भाषा में शिक्षण को अनुभव आधारित बनाने के लिए स्थानीय कलाकारों, लेखकों व विशेषज्ञों को स्कूल के साथ जोड़ना चाहिए। इस तरह सामुदायिक सहभागिता के सहयोग से विद्यालय में बहुभाषिकता अध्ययन को प्रोत्साहित कर सकते हैं।
- विशेष तौर पर गणित व विज्ञान के शिक्षण को द्वि-भाषी पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से किया जाए जिसमें विद्यार्थी मातृभाषा व अंग्रेजी में भी इन विषयों की सोच समझ बना सकें।
- त्रि-भाषा फार्मूले में संस्कृत के शिक्षण को महत्व दिया जाएगा। संस्कृत की शिक्षा से हम भारतीय संस्कृति व साहित्य के साथ-साथ गणित, दर्शन, व्याकरण, संगीत, राजनीति व अन्य विधाओं से भी परिचित हो सकते हैं। शिक्षा एवं संस्कृत विषयों में भी चार वर्षीय बहु विषयक डिग्री के द्वारा संस्कृत के अच्छे अध्यापक बनाये जाएंगे।
- शिक्षा नीति केवल भारतीय भाषाओं को ही नहीं बल्कि विश्व की अन्य भाषाओं जैसे कोरियाई, जापानी, थाई, फ्रेंच व जर्मन इत्यादि विदेशी भाषाओं के अध्ययन को भी प्रोत्साहित करने के सुझाव देती है जिससे विद्यार्थी विश्व की अन्य संस्कृतियों का भी ज्ञान समावेशी तौर पर प्राप्त कर सकें।
- भाषाओं के शिक्षण को रूचिकर व अनुभवात्मक-अधिगम शिक्षणशास्त्र की बुनियाद पर बनाया जाएगा। तकनीकी गतिविधि आधारित सरल माध्यमों से जैसे ऐप्स इत्यादि के द्वारा सरलीकृत पद्धतियों से पढ़ाया जाना चाहिए। फिल्म, थियेटर, वीडियो व समाजी मीडिया के माध्यम से हम अपने देश के अनुभवों को संजोते हुए बहुभाषायी अध्ययन को बढ़ावा दे सकते हैं।
- बधिर विद्यार्थियों के लिए भारतीय साइन लैंग्वेज को पूरे देश में लागू किया जाएगा। इसके साथ ही हमें अपनी स्थानीय व क्षेत्रीय भाषाओं का भी ध्यान रखना है।
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के अध्याय 22 में भारतीय भाषाओं, कला और संस्कृति का संवर्धन में भी भाषाओं संबंधी उल्लेखनीय सुझाव व सिफारिशें दी है।
- विद्यार्थियों में भारतीय संस्कृति के साथ ही अपनी भाषाओं के लिए भी सकारात्मक भावना व आत्म सम्मान पैदा करना चाहिए जिससे हम अपनी संस्कृति की पहचान को सदियों तक जिंदा रख सकें।
- शिक्षा नीति में बहुत ही विशेष तौर पर कहा है कि 'संस्कृति हमारी भाषाओं में समाहित है' इस तरह भाषा को कला एवं संस्कृति से संबंधित माना है। यदि हम अपनी भाषाओं की पहचान व संरक्षण व संवर्धन रखते हैं तो हमारी संस्कृति स्वयं ही सुरक्षित हो जाएगी। भाषा का व्यक्ति के भावनात्मक व मानसिक विकास से गहरा अटूट रिश्ता है जो कि संस्कृति के विकास में स्वाभाविक रूप से शामिल रहती है। हमें अपनी संस्कृति व भाषाओं की अभिव्यक्ति के लिए कोशिश करनी चाहिए जिससे लुप्त होती भारतीय भाषाओं को बचाया जा सकें।
- उच्च शिक्षा में भी विभिन्न भाषाओं के अध्ययन अध्यापन के लिए दोहरी डिग्री वाले चार वर्षीय कोर्स विकसित किए जाए जिससे अच्छे भाषा शिक्षकों को विकसित करने में मदद मिले। बहुभाषा शिक्षण को लेकर उच्च स्तर का शिक्षण भी होना चाहिए। उच्च शिक्षा में मातृभाषा व स्थानीय भाषा को शिक्षा के माध्यम के तौर पर उपलब्ध होना चाहिए।
- नीति में कहा गया है कि इंस्टिट्यूट ऑफ ट्रांसलेशन एंड इंटरप्रिटेशन की स्थापना की जायेगी। यह संस्थान बहुभाषी भाषा और जानकारों के द्वारा अनुवाद व व्याख्या को प्रसारित करेंगे जिससे विभिन्न भाषाओं में पढ़ना आसान हो जाएगा। अनुवाद और व्याख्या के लिए आईसीटी का अच्छे तौर पर प्रयोग करना चाहिए। इस तरह के अनुसंधानों को बाद में अन्य राज्यों में भी खोला जा सकता है।

- आदिवासी भाषाएं और जो भाषाएं लुप्त हो गईं या जिनके लुप्त होने का खतरा है ऐसी भाषाओं को प्रौद्योगिकी के माध्यम से लोगों की सहायता से संरक्षित किया जाएगा।
- भारतीय भाषाओं एवं उनसे संबंधित कला एवं संस्कृति के संरक्षण के लिए आधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग करते हुए वेब आधारित प्लेटफार्म/ पोर्टल/ विकीपीडिया के माध्यम से इनसे संबंधित सामग्री उपलब्ध कराई जाएगी जो कि आम जनता के प्रयोग व योगदान के लिए भी हमेशा उपलब्ध रहेगी। आम लोगों के माध्यम से भाषाओं के स्वाभाविक रूप को बचाया जा सकता है जैसे बोलने के तरीके, कहानियां व कविता को सुनाने के ढंगों को हम प्रौद्योगिकी के माध्यम से सहेज कर रख सकते हैं।
- विभिन्न भाषाओं में रोजगार उपलब्ध करवाया जाना चाहिए जिससे समाज में स्वयं ही प्रेरणा पैदा होगी कि हम भाषाओं में अध्ययन अध्यापन करें।

### अध्ययन से प्राप्त सुझाव

आज वैश्वीकरण व आधुनिकीकरण के दौर में बहुभाषिकता एक स्वाभाविक जरूरत बन गई है। इसलिए यह आवश्यक है कि सभी बच्चों को प्राथमिक स्तर की शिक्षा से ही बहुभाषी शिक्षण को प्रोत्साहित किया जाए। बहुभाषी शिक्षण के लिए संस्थानों में शैक्षिक सामग्री व संसाधनों का अभाव नहीं होना चाहिए तभी हम विद्यार्थियों को एक प्रेरक माहौल दे सकते हैं। हमारे देश में भाषायी विभिन्नता बहुत है इसलिए विभिन्न भाषाओं में पढ़ाने के लिए दक्ष व प्रशिक्षित अध्यापकों को तैयार करना चाहिए जिससे विद्यार्थियों को रोचक तरीके से पढ़ाया जा सके। बहुभाषी शिक्षण पर शोध व अध्ययन भी जरूरी है जिससे हम योजनापूर्वक तरीके से बच्चों तक पहुंच सके। सभी विषयों के शिक्षण के लिए बहुभाषी शिक्षण पद्धति को अपनाने के लिए सुनियोजित तैयारी बहुत ही जरूरी है। विभिन्न भाषाओं की विषयसामग्री को भी हमें पाठ्यक्रम में शामिल करना चाहिए। भारत सहित पूरे विश्व में बहुभाषी विद्यार्थियों को आदर्श व सकारात्मक रूप से प्रोत्साहित किया जाता है। हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि बहुभाषावाद हमारी संस्कृति सोच-समझ व समाज के अनुसार होना चाहिए।

कोठारी आयोग ने त्रिभाषा फॉर्मूला को स्वतंत्र भारत की शिक्षा व्यवस्था के लिए उचित माना था और जिसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 व राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 ने भी बरकरार रखा है। इसलिए त्रिभाषा फॉर्मूला को मूल भाव व इमानदारी के साथ लागू करने की जरूरत है, जिससे हमारे बहुभाषी देश में हम विभिन्न भाषाओं के आधार पर बातचीत व संवाद कायम कर सके।

अध्ययन अध्यापन के तौर पर एकभाषावाद या कहीं माध्यम के तौर पर एक भाषा को ज्यादा महत्व दिया जाता है। शिक्षक प्रशिक्षण में भी हमें बहुभाषावाद को शामिल करके और उसकी शिक्षण अधिगम के तरीके को अंतर्निहित करके विभिन्न विषयों की समझ देनी होगी। इस तरह बहुभाषावाद को एक सीखने के संसाधन के तौर पर इस्तेमाल करके उससे अधिगम को रूचिकर बनाना।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने इस बात पर जोर दिया है कि बच्चे अपनी मातृभाषा के माध्यम से बहुत ही अच्छी तरह से सीखते हैं। प्राथमिक स्तर तक तो बच्चों को उनकी मातृभाषा में ही पढ़ाना चाहिए। मातृभाषा व स्थानीय भाषाओं में बहुत ही गुणवत्तापूर्ण, उपयोगी व सहज रूप से शिक्षण व अधिगम सामग्री उपलब्ध करवानी चाहिए। बहुभाषी शिक्षण में हमें घर की भाषा व स्कूल की भाषा को ध्यान में रखना होगा। आज लेकिन बहुत से बच्चों की शुरूआती पढ़ाई ऐसी भाषा में होती है जिससे वे परिचित नहीं होते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने बुनियादी साक्षरता को विशेष तौर पर एक मिशन के रूप में लिया है। बच्चों को भाषा सिखाने पर विशेष ध्यान देकर उनमें भाषायी कौशल पैदा करना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने बुनियादी साक्षरता के संदर्भ व लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए बहुभाषी शिक्षण पर विशेष जोर दिया है। घर की भाषा से बच्चों की सक्रिय भागीदारी बढ़ती है। घर की भाषा की अच्छी बुनियाद से दूसरी भाषाओं को सीखाना भी आसान हो जाता है। एक शिक्षक सभी बच्चों को अपनी भाषा में सीखने-सिखाने के लिए जगह दें और बहुभाषावाद के प्रति अपनी रचनात्मकता को बढ़ाये।

## संदर्भ

1. Karen Bordonaro (2017) International Librarianship at home and abroad, <https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/B9780081018965000119>
2. <http://www.ibe.unesco.org/en/glossary-curriculum-terminology/m/multilingual-education>
3. बहुभाषिता: एक कक्षा स्रोत रमाकांत अग्निहोत्री, अनुवाद निशी तिवारी <https://www.eklavya.in/magazine-activity/sandarbh-magazines/200-sandarbh-from-issue-81-to-90/sandarbh-issue-85/584-multilingualism-a-classroom-resource-by-rama-kant-agnihotri>
4. मानव संसाधन विकास मंत्रालय (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, नई दिल्ली: भारत सरकार, पृष्ठ संख्या-11
5. मानव संसाधन विकास मंत्रालय (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, नई दिल्ली: भारत सरकार, पृष्ठ संख्या-12
6. मानव संसाधन विकास मंत्रालय (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, नई दिल्ली: भारत सरकार, पृष्ठ संख्या-13
7. मानव संसाधन विकास मंत्रालय (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, नई दिल्ली: भारत सरकार, पृष्ठ संख्या-19-22
8. मानव संसाधन विकास मंत्रालय (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, नई दिल्ली: भारत सरकार, पृष्ठ संख्या-86-92

# शैक्षिक उपलब्धि के क्रम में छात्रों का अध्ययन स्वभाव

चित्ररेखा, एम. एम. रॉय एवं मीणा सहरावत

सहायक आचार्य

मंडलीय शिक्षा एवं संस्थान, घुम्नहेड़ा, नई दिल्ली

**सार:** प्रस्तुत शोध में दक्षिण-पश्चिम दिल्ली के दसवीं कक्षा के विद्यार्थियों की अध्ययन की आदतों का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। इस शोध के मुख्य उद्देश्य (1) कक्षा 10 के छात्रों की अध्ययन की आदतों का अध्ययन करना और (2) छात्रों को उनकी वर्तमान वास्तविक अध्ययन आदतों से जागरूक कराना था ताकि अध्ययन आदतों के महत्व को समझते हुए उसमें सुधार किया जा सके और भविष्य में बेहतर परिणाम प्राप्त किए जा सकें। शोध के लिए दिल्ली शिक्षा निदेशालय के स्कूलों से 10 वीं कक्षा के 100 छात्रों को यादृच्छिक प्रतिदर्शन विधि द्वारा चयनित किया गया। एम.एन. पलसाने और अनुराधा शर्मा द्वारा विकसित अध्ययन आदत सूची का उपयोग छात्रों के अध्ययन की आदतों को मापने के लिए किया गया। प्रदत्तों का विश्लेषण करने के लिए सांख्यिकीय तकनीक प्रतिशत का उपयोग किया गया। शोध परिणामों से पता चला कि अधिकतर छात्र इस बात से अप्रत्यक्ष रूप से अनभिज्ञ हैं कि अच्छी अध्ययन आदतों को किस प्रकार से अपने अंदर विकसित किया जा सकता है।

**मुख्य शब्द:** अध्ययन आदतें, शैक्षिक उपलब्धि

## परिचय

शिक्षा, परिवर्तन और विकास की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। शिक्षा और हमारी अध्ययन की आदतें एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। हमारी शिक्षा, अच्छी अध्ययन आदतों के विकास में मदद करती है। अध्ययन की आदतें भविष्य में शैक्षिक उपलब्धि और सफलता की ओर ले जाती हैं।

अध्ययन की आदत का अर्थ शिक्षार्थी द्वारा अपनी आवश्यकता और रुचि के अनुसार अपने अध्ययन का समय निर्धारित करने की क्षमता और समय का प्रबंधन करने की योग्यता से है। अध्ययन की आदतें, छात्रों, शिक्षकों, भावी शिक्षकों आदि सभी के लिए बहुत ही अधिक महत्वपूर्ण हैं। अध्ययन की आदत शैक्षिक उपलब्धि के साथ-साथ हमारे जीवन की सीखने की प्रक्रिया में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अच्छी अध्ययन आदतें ज्ञान और समझ का प्रवेश द्वार हैं। शिक्षा और अध्ययन की आदतें सकारात्मक रूप से परस्पर जुड़ी हुई हैं।



## अध्ययन का उद्देश्य

- 10वीं कक्षा के छात्रों की अध्ययन आदतों का अध्ययन करना।
- छात्रों को उनकी वर्तमान वास्तविक अध्ययन आदतों से जागरूक कराना था ताकि अध्ययन आदतों के महत्व को समझते हुए उसमें सुधार किया जा सके और भविष्य में बेहतर परिणाम प्राप्त किए जा सकें।

## शोध प्रविधि

प्रदत्तों को एकत्रित करने के लिए सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। शोध के लिए दिल्ली शिक्षा निदेशालय के स्कूलों से 10 वीं कक्षा के 100 छात्रों (50 बालिकाओं और 50 बालकों) को यादृच्छिक प्रतिदर्शन विधि द्वारा चयनित किया गया। इस अध्ययन में एन. पलसाने और अनुराधा शर्मा द्वारा विकसित मानकीकृत उपकरण अध्ययन आदत सूची का उपयोग छात्रों की अध्ययन आदतों को मापने के लिए किया गया। इसके आठ आयाम हैं, बजट समय, शारीरिक स्थिति, पढ़ने की क्षमता, नोट बनाना, सीखने की प्रेरणा, मेमोरी, परीक्षा लेना, स्वास्थ्य आदि।

## अध्ययन का परिसीमन

- वर्तमान अध्ययन दिल्ली के दक्षिण पश्चिम जिले के 10वीं कक्षा के 100 छात्रों तक ही सीमित था।
- यह अध्ययन एम.एन. पलसाने और अनुराधा शर्मा की अध्ययन आदत सूची के 8 क्षेत्रों तक सीमित था।

## प्रदत्तों का विश्लेषण

अध्ययन आदत सूची (एम.एन. पलसाने और अनुराधा शर्मा) के मानकीकृत उपकरणों का उपयोग किया गया था। प्रदत्तों का विश्लेषण करने के उपरान्त परिणामों की व्याख्या के लिए प्रतिशत (%) का उपयोग किया गया।

## तालिका 1

### कक्षा 10वीं के छात्र और छात्राओं की अध्ययन की आदतें

क्रम	क्षेत्र	अधिकतर		कभी कभी		दुर्लभ	
		छात्र	छात्राएं	छात्र	छात्राएं	छात्र	छात्राएं
1	बजट समय	34	52	46	30	20	18
2	शारीरिक व भौतिक स्थितियां	52	58	22	28	26	14
3	पढ़ने के क्षमता	48	56	32	34	20	10
4	नोट बनाना	30	52	34	38	36	10
5	अधिगम प्रोत्साहन	58	56	18	24	24	20
6	मेमोरी	66	64	22	24	12	12
7	परीक्षा देना	40	54	34	26	26	20
8	स्वास्थ्य	38	42	46	42	18	14

### छात्रों की संख्या=100

- बजट समय:** यह पाया गया कि 34% छात्र और 52% छात्राएं हमेशा समय के अध्ययन की योजना बनाते हैं। 46% छात्र और 30% छात्राएं कभी-कभी योजना बनाते हैं जबकि 20% छात्र और 18% छात्राएं शायद ही कभी अध्ययन के समय की योजना बनाते हैं।
- शारीरिक व भौतिक स्थिति:** 52% छात्र और 58% छात्राएं इस बात से सहमत हैं कि घर पर अध्ययन के लिए उनकी शारीरिक स्थिति हमेशा बेहतर होती है। 22% छात्र और 28% छात्राओं की शारीरिक व भौतिक स्थिति कभी-कभी बेहतर होती है जबकि 26% छात्र और 14% छात्राओं की भौतिक स्थितियां शायद ही कभी अच्छी थीं।

3. **पढ़ने की क्षमता:** विश्लेषण में यह पाया गया कि 48% छात्र और 56% छात्राएं लगातार कठिनाइयों के बावजूद लगातार पढ़ने की क्षमता का विकास करते हैं जबकि 32% छात्र और 34% छात्राएं कभी-कभी पढ़ने की क्षमता का विकास करते हैं।
4. **नोट लेना:** 30% छात्र और 52% छात्राएं हमेशा नोट बनाते हैं, 34% छात्र और 38 छात्राएं कभी-कभी नोट करते हैं जबकि 36% छात्र और 10% छात्राएं शायद ही कभी नोट बनाते हैं।
5. **अधिगम प्रोत्साहन:** 58% छात्र और 56% छात्राएं हमेशा अध्ययन के लिए स्वयं और दूसरों से प्रेरित होते हैं, 18% छात्र और 24% छात्राएं कभी-कभी प्रेरित होते हैं जबकि 24% छात्र और 20% छात्राएं शायद ही कभी दूसरों से प्रेरित होते हैं।
6. **मेमोरी:** मेमोरी के मामले में 66% छात्र और 64% छात्राओं ने सहमति व्यक्त की कि उनके पास अध्ययन की आदतों को विकसित करने और सुधारने के लिए हमेशा अच्छी याददाश्त है जबकि 22% छात्र और 24% छात्राएं इससे आंशिक रूप से सहमत थे।
7. **परीक्षा देना:** 40% छात्र और 54% छात्राएं हमेशा परीक्षा के लिए लगातार और नियमित रूप से अध्ययन करते हैं, 34% छात्र और 26% छात्राएं कभी-कभी परीक्षा देते हैं और 26% छात्र और 20% छात्राएं शायद ही कभी परीक्षा देते हैं।
8. **स्वास्थ्य:** 38% छात्र और 42% छात्राएं के छात्र नियमित रूप से स्वस्थ भोजन करते हैं और नियमित रूप से व्यायाम करते हैं। 46% छात्र और 42% छात्राएं कभी-कभी स्वस्थ भोजन करते हैं।

#### तालिका 1.2

#### कक्षा 10वीं के सभी छात्रों की अध्ययन आदतें प्रतिशत

क्रम सं	क्षेत्र	हमेशा	कभी कभी	दुर्लभ
1	बजट समय	43	38	19
2	शारीरिक स्थितियां	55	25	20
3	पढ़ने की योग्यता	52	33	15
4	नोट बनाना	41	36	23
5	अधिगम प्रोत्साहन	57	21	22
6	मेमोरी	65	23	12
7	परीक्षा देना	47	30	23
8	स्वास्थ्य	40	44	16

छात्रों की संख्या=100

1. **बजट समय:** 43% छात्र हमेशा अध्ययन के लिए समय की योजना बनाते हैं। 38% छात्र कभी-कभी समय योजना बनाते हैं जबकि 19% शायद ही कभी अध्ययन के समय की योजना बनाते हैं।
2. **शारीरिक व भौतिक स्थितियां:** उपरोक्त तालिका से, यह पाया गया कि 55% छात्र सहमत थे कि उनके पास अध्ययन के लिए हमेशा बेहतर शारीरिक स्थिति होती है।
3. **पढ़ने की क्षमता:** 52% छात्र लगातार कठिनाइयों के बावजूद लगातार पढ़ने के कौशल का विकास करते हैं।



**4. नोट लेना:** यह पाया गया कि 41% छात्र हमेशा नोट बनाते हैं, 36% छात्र कभी-कभी नोट करते हैं जबकि 23 शायद ही कभी नोट बनाते हैं।

**5. अधिगम प्रोत्साहन:** अध्ययन आदत सूची के सीखने की प्रेरणा क्षेत्र के मामले में, यह पाया गया कि 57% छात्र हमेशा खुद से और दूसरों से प्रेरित होते थे, 21% छात्र कभी-कभी प्रेरित होते थे और 22% छात्र शायद ही कभी दूसरों से प्रेरित होते थे।

**6. मेमोरी:** 65% छात्रों ने सहमति व्यक्त की कि अध्ययन की आदतों को विकसित करने और सुधारने के लिए उनके पास हमेशा अच्छी याददाश्त होती है।

**7. परीक्षा देना:** यह पाया गया कि 47% छात्र हमेशा परीक्षा के लिए लगातार और नियमित रूप से अध्ययन करते रहते हैं।

**8. स्वास्थ्य:** स्वस्थ भोजन खाने के साथ-साथ 40% छात्र रोजाना व्यायाम करते थे। 44% छात्र कभी-कभी स्वस्थ भोजन खाने के साथ-साथ रोजाना व्यायाम करते थे और 16% छात्र शायद ही कभी स्वस्थ भोजन खाने के साथ-साथ रोजाना व्यायाम करते थे।

### परिणाम और चर्चा

**1. समय बजट:** अध्ययन के लिए समय का प्रबंधन बहुत महत्वपूर्ण होता है और समय प्रबंधन से उसकी योजना बनाना अत्यंत आवश्यक है। कहा जाता है कि एक सफल योजना बनाने मात्र से ही आधी सफलता के द्वार खुल जाते हैं और उसके सही नियमित प्रयोग से पूर्ण सफलता के द्वार खुल जाते हैं। यदि बिना समय प्रबंधन के अध्ययन किया जाता है तो वह लक्ष्य विहीन होता है। एक विद्यार्थी के जीवन में उसकी अध्ययन आदतों का विशेष महत्व होता है जो उसकी शैक्षिक उपलब्धि के मार्ग को सुनिश्चित करता है शोध के दौरान यह पाया गया कि केवल 43% छात्र ही हमेशा अध्ययन के लिए समय की योजना बनाते हैं। 38% छात्र कभी-कभी समय योजना बनाते हैं जबकि 19% शायद ही कभी अध्ययन के समय की योजना बनाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि 57% छात्र अपनी अध्ययन की आदतों को लेकर गंभीर नहीं है। उन्हें इस क्षेत्र में विशेष मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

**2. शारीरिक/ भौतिक स्थितियां:** एक छात्र की अनुकूल शारीरिक व भौतिक स्थितियां अध्ययन की आदतों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। अध्ययन के लिए शांत, साफ और अनुकूल दशाएँ अच्छी अध्ययन आदत विकसित करने के लिए वांछनीय स्थितियां हैं। उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि केवल 55% छात्र ही इस बात से सहमत थे कि उनके पास अध्ययन के लिए हमेशा बेहतर भौतिक स्थिति होती है। 45% छात्र शायद ही कभी सहमत होते हैं जिससे स्पष्ट होता है कि हमारे 45% छात्र छात्राओं के पास अध्ययन के लिए अनुकूलित स्थितियाँ नहीं है।

**3. पढ़ने की क्षमता:** शैक्षिक उपलब्धि में अध्ययन आदतों का बहुत महत्वपूर्ण योगदान होता है। अध्ययन आदतों और पढ़ने की योग्यता में प्रत्यक्ष संबंध होता है। अध्ययन आदतों की योजना तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक कि छात्रों के अंदर पढ़ने की योग्यता विकसित न हो अर्थात् किसी भी तरह के अध्ययन के लिए पढ़ने की क्षमता बहुत महत्वपूर्ण है। शोध में यह पाया गया कि 52% छात्र लगातार कठिनाइयों के बावजूद लगातार पढ़ने के कौशल का विकास करते हैं जो कि एक अच्छा संकेत है जबकि दूसरी तरफ 48% अभी भी इस समस्या का सामना कर रहे हैं।

**4. नोट बनाना:** नोट बनाना / लिखना अच्छी अध्ययन आदत का एक भाग है। पढ़ने के साथ-साथ और पढ़ने के बाद नोट्स बनाना अच्छी अध्ययन की आदतों को बढ़ावा देता है इस प्रकार नोट लिखना एक ऐसी गतिविधि है जो न केवल अध्ययन में मदद करता है बल्कि रटने के आदत को भी कम कर अध्ययन को एक दिशा देता है। शोध में यह पाया गया कि 41% छात्र हमेशा नोट बनाते हैं, 59% छात्र कभी-कभी नोट बनाते हैं या फिर न के बराबर नोट बनाते हैं जिससे पता चलता है छात्र सीधे किताबों से चीजों को रटने का प्रयास करते हैं जो कि उनकी सर्जनात्मकता का पोषण नहीं करके रटने की आदत को बढ़ाता है।

**5. अधिगम प्रोत्साहन:** अधिगम प्रोत्साहन/प्रेरणा से तात्पर्य है कि अध्ययन के लिए शारीरिक और मानसिक रूप से तैयार होना। अध्ययन के लिए सकारात्मक और नकारात्मक प्रेरणा अध्ययन की आदतों को प्रभावित करता है। अध्ययन

आदत सूची के सीखने की प्रेरणा क्षेत्र के मामले में, यह पाया गया कि 57% छात्र हमेशा खुद से और दूसरों से प्रेरित होते थे, 21% छात्र कभी-कभी प्रेरित होते थे और 22% छात्र शायद ही कभी दूसरों से प्रेरित होते थे।

**6. मेमोरी:** मेमोरी/स्मरण शक्ति से अभिप्राय है कि समय आने पर चीजों व विषयवस्तु को पुनः स्मरण करना। हमारी अध्ययन आदतें हमारी मेमोरी को बढ़ाती हैं। 65% छात्रों ने सहमति व्यक्त की कि अध्ययन की आदतों को विकसित करने और सुधारने के लिए उनके पास हमेशा अच्छी याददाश्त होती है।

**7. परीक्षा देना:** परीक्षा से तात्पर्य है कि सीखे गए जानकारी का आकलन या जांच करना। हमारे अंदर परीक्षा भय पैदा करता है जैसे ही परीक्षा का नाम आता है वैसे ही हम मानसिक तनाव महसूस करने लगते हैं। यह तनाव उस स्थिति में और भी अधिक होता है जब हम नियमित रूप से अध्ययन नहीं करते। नियमित रूप से अध्ययन की आदतें हमें परीक्षा के लिए तैयार करती हैं। शोध में पाया गया कि 47% छात्र हमेशा परीक्षा के लिए लगातार और नियमित रूप से अध्ययन करते रहते हैं, 30% छात्र कभी-कभी परीक्षा देते हैं और 23% छात्र परीक्षा की तैयारी के लिए शायद ही कभी अध्ययन करते हैं।

**8. स्वास्थ्य:** नियमित और संतुलित भोजन, व्यायाम, मनोरंजन और नींद, अच्छे स्वास्थ्य और स्वस्थ शारीरिक व मानसिक स्थिति को बनाए रखने में मदद करते हैं जो परीक्षा में सफलता प्राप्त करने और नियमित अध्ययन की आदतों को विकसित करने के लिए आवश्यक है। संतुलित और पौष्टिक भोजन खाने के साथ-साथ 40% छात्र रोजाना व्यायाम करते हैं। 60% छात्र कभी-कभी और शायद ही कभी से सहमत होते हैं।

### निष्कर्ष:

छात्रों में अध्ययन करने और बेहतर उपलब्धि हासिल करने की ललक होती है लेकिन वे प्रभावी ढंग से अध्ययन करने की रणनीतियों या तकनीकों से अच्छी तरह परिचित नहीं होते हैं। अध्ययन के निष्कर्ष छात्रों, शिक्षकों और अभिभावकों के लिए अध्ययन की आदतों में सुधार के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करने और छात्रों की नियमित अध्ययन आदत विकसित करने में सहायक होने के साथ साथ शिक्षकों और माता-पिता को यह सोचने को मजबूर करते हैं कि वे किस प्रकार से छात्रों के किन किन अध्ययन आदतों में सुधार कर उनकी कार्यक्षमता को बढ़ाने में सहायक हो सकते हैं। यह शोध कक्षा 10वीं के छात्रों की शिक्षा में सुधार के लिए एक नई दिशा और तरीकों के बारे में गहराई से सोचने का सुझाव देता है। इसकी उपयोगिता को हमारे शिक्षक साथी, अभिभावक सभा और विद्यालय प्रबंधन समिति के माध्यम से अभिभावकों और छात्रों तक पहुंचाने का प्रयास कर सकते हैं। इस प्रकार वर्तमान अध्ययन छात्रों को उचित अध्ययन आदतों को विकसित करने, उनकी क्षमताओं और क्षमताओं को साकार करने में न केवल मदद करेगा बल्कि अच्छी अध्ययन की आदतों में गृह-वातावरण और विद्यालय वातावरण के द्वारा बच्चों के सीखने और विकास के लिए प्रारंभिक आधार भी प्रदान करेगा। घर और विद्यालय का वातावरण बच्चों के संज्ञानात्मक, भावात्मक, मनोप्रेरणा और सामाजिक और बौद्धिक पहलुओं की गुणवत्ता में सुधार करने में सहायक होगा।

### संदर्भ:

1. चंद, सुरेश. 2013. स्कूल और परिवार के प्रकार के संबंध में माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की अध्ययन की आदतें, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल साइंस एंड इंटरडिसिप्लिनरी रिसर्च वॉल्यूम, 2 (7), पीपी.90-96।

2. पलसाने एनएम, शर्मा अनुराधा 1971. स्टडी-हैबिट्स इन्वेंटरी (PSSHI), पुणे विश्वविद्यालय और आगरा विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय मनोवैज्ञानिक निगम, कचहरी घाट आगरा, भारत।
3. राजकुमार, और सुंदरराजन.2012. तिरुनेलवेली जिले में उच्च माध्यमिक छात्रों के अध्ययन की आदतों पर एक अध्ययन। इंडियन जे. इनोवेशन देव.वॉल्यूम. 1(4)
4. सिंह परविंदर 2016. अध्ययन की आदतों और घर के वातावरण के संबंध में गणित में अकादमिक उपलब्धि का अध्ययन, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इनोवेटिव साइंस, इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी, वॉल्यूम 3 अंक 1, जनवरी 2016
5. <http://shodhganga.inflibnet.ac.in>
6. [www.researchgate.net](http://www.researchgate.net).

# भारतीय लोकनाट्य परंपरा में भारतीयता

डॉ. नवनीत कुमार

फ्लैट 8, पहली लाइन

शिवाजी नगर, रायजा टाउन

पिपरी, निकट : म.गां.अं.हि.वि., वर्धा

वर्धा 442001(महाराष्ट्र) भारत

मो. 9013201191, ईमेल- [navneetkumar727@gmail.com](mailto:navneetkumar727@gmail.com)

## बीज शब्द :

लोकनाट्य, लोकनाटक, परंपराशील नाट्य, ड्रामा, कला, फोक प्ले, नाटक, रंगमंच, भारतीयता, संस्कृति, रामलीला, रासलीला, यक्षगान, जात्रा, नौटंकी, अंकिया नाट, स्वांग, ख्याल, तमाशा, जट-जटिन, बिदेसिया, पांडवानी, थेरुकुथु, कूचिपूडी, दशावतार, छऊ।

## प्रस्तावना :

किसी भी राष्ट्र के विकास में उस राष्ट्र की संस्कृति और उसके मूल्यों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उस राष्ट्र की संस्कृति वहाँ की प्रवृत्तियों, मूल्यों, आचार-विचार तथा वहाँ के लोगों की आस्था और विश्वास का प्रतिनिधित्व करती है। समस्त आर्थिक, सामाजिक व अन्य गतिविधियों का आयोजन और उसका संचालन राष्ट्र की संस्कृति और उनके मूल्यों के अनुरूप होता है। भारत बहुभाषाभाषी देश है। भाषा संस्कृति को संधारित करती है। भाषायी विविधता के कारण भारत बहुसांस्कृतिक देश भी है। विविध सांस्कृतिक विरासत का सबसे बड़ा संग्रह है, जिसमें गीत, संगीत, नृत्य, नाटक, लोक परंपराएँ, प्रदर्शनकारी कलाएँ, अनुष्ठान, कर्मकांड, चित्रकला और लेखन सम्मिलित हैं। 'विविधता में एकता' भारतीय सांस्कृतिक मूल्य का एक सशक्त स्तंभ है। प्राचीन काल से लेकर ब्रिटिश शासन तक भारतवर्ष अपनी सांस्कृतिक विरासत के लिए जाना जाता रहा है, जिसका आधार कला है। यहाँ की जीवन शैली में कला एक बहुमूल्य विरासत है। कला और संस्कृति की कहानी उतनी ही पुरानी है जितनी सभ्यता और संस्कृति की कहानी। समूचे भारतवर्ष में धार्मिक एवं सांस्कृतिक अवसरों पर बृहत् रूप में लोक नाटक खेले जाते हैं, जिसे 'पारंपरिक नाट्य' भी कहा जाता है। ये पारंपरिक लोक नाट्य समाज की सांस्कृतिक अवधारणा को अभिव्यक्त करते हैं। लोकनाटक अपने आरंभिक काल से ही लोगों के मनोरंजन का साधन रहा है। मनोरंजन का यह साधन कभी किसी के साथ भेद नहीं किया। वस्तुतः यह लोकनाट्य परंपरा लोगों के सुख-दुःख की अभिव्यक्तियों से जुड़ी थी इसलिए यह आज भी भारत की संस्कृति में रची बसी हुई है। समाज के सभी लोगों के साथ मिलकर उनकी अभिव्यक्ति का साधन बनी और बाद में उस क्षेत्र की विशिष्ट पहचान बनी। परिणामस्वरूप सुदूर गाँव क्षेत्र के लोग उत्साह पूर्वक लोकनाटकों के प्रदर्शन में हिस्सा लेते थे और अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करते थे।

## लोकनाट्य का आविर्भाव, परंपरा तथा नामकरण :

'लोकनाट्य' शब्द 'लोक' और 'नाट्य' दो शब्दों के मिलकर बना है। 'लोक' शब्द का प्रयोग आमतौर पर समाज के लिए किया जाता है। समाज के तथाकथित सभ्य, सुसंस्कृत से अलग यह 'लोक' किसी गाँव या विशिष्ट आंचलिक प्रदेश में रहने वाले लोगों को संबोधित है। 'नाट्य' शब्द में नृत्य, गीत, संगीत, अभिनय, वेशभूषा आदि का समावेश होता है। वस्तुतः नाट्य शब्द में मंचीय कला का बोध समाहित होता है। तात्पर्य है - किसी अंचल विशेष का नाट्य, जो लोगों के मनोरंजन का साधन है। जगदीशचंद्र माथुर लिखते हैं " ...इन क्षेत्रीय और जनप्रिय नाटक-शैलियों को प्रायः लोकनाटक के नाम से आजकल संबोधित किया जाता है। किंतु लोकनाटक शब्द अंग्रेजी के 'फोक ड्रामा' से उधार लिया गया है। 'आक्सफोर्ड कंपेनियन ऑव ड्रामा' के अनुसार 'फोक प्ले' यानी लोकनाटक ऐसा नाट्य-मनोरंजन है जो ग्रामीण उत्सवों पर ग्रामवासियों द्वारा स्वयं प्रस्तुत किया जाता है और प्रायः अशिष्ट और देहाती होता है। योरोप के लोक-नाटक आदिम जीवन में लोकोत्सवों में प्रारंभ हुए थे। उनमें मृत्यु, पुनर्जन्म तथा स्थानीय महापुरुषों के विवरण, नटों के खेल इत्यादि होते थे। इंग्लैंड में 'ममर्स प्ले' को लोकनाटक कहा जाता है।<sup>1</sup> 'लोकनाट्य को लोकनाटक कहने की बजाय जगदीशचंद्र माथुर ने इसे 'परंपराशील नाट्य' कहना ज्यादा सटीक मानते हैं। इसके बारे में वे लिखते हैं, " भारत की क्षेत्रीय नाट्यशैलियाँ प्रायः इस प्रकार के लोक-नाटक से कहीं ऊँचे स्तर के प्रदर्शन और साहित्य से संपन्न हैं। अतः उन्हें लोकनाटक की संज्ञा देना समीचीन नहीं जान पड़ता। उनमें कई शैलियाँ कला की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। मेरे विचार में इन शैलियों को 'परंपराशील नाट्य' कहना अधिक उपयुक्त होगा।"<sup>2</sup>

लोकनाट्य भारतीय जन के अंदर शुरू से ही प्रवाहमान रही है। मनुष्य जिस भू-भाग में रहता है वहाँ अपनी सुविधानुसार मनोरंजन का साधन खोज ही लेता है। हम जानते हैं कि भरत ने नाट्यशास्त्र में नाटक की दो परंपराओं का उल्लेख किया है - पहली लोकधर्मी, जिसमें लोक अथवा लोगों द्वारा सहज रूप से किया जाने वाला अभिनय तथा दूसरी नाट्यधर्मी, जिसमें मंच-सज्जा, वेशभूषा, अलंकरण, स्वगत, आकाशभाषित आदि का प्रयोग होता है। लोकनाट्य की यह परंपरा लोकधर्मी के अंतर्गत मानी जाती है। भारत की यह परंपरा संस्कृत नाटकों के साथ-साथ चलती रही जो बाद में हिंदी नाटकों का आधार भी बनी। लोकनाटक समाज और समुदाय की वस्तु है। यह नाटक लोकधर्मी परंपराओं की पीठिका पर आधारित होते हैं। धार्मिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक मान्यताएँ इन के लिए प्रेरणा का कार्य करती हैं। भोजपुरी के लोकनाटकों के संदर्भ में यह उक्ति सटीक है कि वस्तुतः "लोकनाट्य परंपरा का जन्म तो मानव जाति के ज्ञात इतिहास से पूर्व अज्ञात सुदूर के गहन अतीत में हुआ होगा, तब उसके काल का निर्धारण, कोरे सिद्धांतों और अटकलों का विषय ही हो सकता है, किसी निश्चित और सटीक प्रमाण के अभाव में विद्वानों के निष्कर्षों को अपने-अपने अनुमान मानना चाहिए।"<sup>3</sup> बाह्य आक्रमण और आंतरिक उथल-पुथल के परिणामस्वरूप भारत के प्राचीन शास्त्रीय रंगमंच का क्षरण होना शुरू हो गया। परिणामस्वरूप नाट्य, गीत और संगीत केवल धार्मिक उत्सवों और मंदिरों तक ही सीमित होने लगे। भरतनाट्यम, ओडिसी, कुटिअट्टम, कथक, अंकिया आदि इन्हीं लोकनाट्यों के उदाहरण हैं। राज्यों के विघटन के फलस्वरूप हिंदी रंगमंच काफी प्रभावित हुआ। संक्रमणकाल के दौर में भारत की लोक कलाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में सीमित हो गयीं। जयशंकर प्रसाद इस संदर्भ में लिखते हैं "मध्यकालीन भारत में जिस आतंक और अस्थिरता का साम्राज्य था, उसने यहाँ की सर्व-साधारण प्राचीन रंगशालाओं को तोड़-फोड़ दिया। धर्मांध आक्रमणों ने जब भारतीय रंगमंच के शिल्प का

संदर्भ :

<sup>1</sup> माथुर, जगदीशचंद्र.(2010). परंपराशील नाट्य. नयी दिल्ली : रा.ना.वि. प्रकाशन, पृ.17

<sup>2</sup> वही, पृ.17

<sup>3</sup> द्विवेदी, डॉ. आद्याप्रसाद, सं. मिश्र, अशोक, रंग लोक : भोजपुरी का लोकधर्मी नाट्य, पृ. 47

विनाश कर दिया तो देवालियों से संलग्न मंडपों में छोटे-मोटे अभिनय सर्वाधारण के लिए सुलभ रह गए।<sup>4</sup> अर्थात् पारंपरिक रंगमंच ही बचे रह गये जो बाद में चलकर हिंदी रंगमंच की नींव बने।

### लोकनाट्य की विशेषताएँ :

लोकनाटकों की सबसे बड़ी विशेषता उनका लोकधर्मी होना ही है। यह बड़े स्तर पर जनसंचार का प्राचीन और सशक्त माध्यम है। लोकनाट्य को मुख्यतः चार श्रेणियों में रखा जा सकता है- 1. नृत्य प्रधान (असम- कीर्तनिया, ब्रज- रासलीला, छत्तीसगढ़- नाचा आदि) 2. संगीत प्रधान (उत्तर प्रदेश- रामलीला, बंगाल- जात्रा, छत्तीसगढ़- पंडवानी) 3. हास्य या स्वांग प्रधान लोक-नाट्य (महाराष्ट्र- तमाशा, गुजरात- भवाई इत्यादि) 4. वार्ता-प्रधान लोक-नाट्य (उत्तर प्रदेश- नौटंकी, मालवा- माच इत्यादि)। इन्हें विषयवस्तु के आधार पर भी दो स्पष्ट धाराओं में विभाजित किया जा सकता है – 1. धार्मिक-पौराणिक विषयवस्तु से संबंधित लोक-नाटक एवं 2. सामाजिक एवं राजनैतिक संदेशों से युक्त लोक-नाटक। लोकनाट्य मुख्य रूप से समाज की अनुभूतियों, भावनाओं और प्रवृत्तियों पर आधारित होते हैं। भाषागत वैशिष्ट्य की बात करें तो लोकनाटकों की भाषा मुख्य रूप से अधिकांशतः पद्यात्मक होती है। कभी-कभी गद्यात्मक भी होती है वह भी तुकांत गद्य। लोकनाटकों के मंच चारों तरफ से खुले रहते हैं, पर्दे या तो होते ही नहीं हैं अथवा एक दो पर्दे से ही काम चल जाता है। दृश्यों को प्रदर्शित करने के बजाय कल्पना मात्र का सहारा ले लिया जाता है। पात्र अपने वर्ग विशेष या समूह के द्योतक होते हैं। एक विदूषक होता है, जो हास्य/मनोरंजन का कार्य करता है। लोकनाटकों की सबसे बड़ी ताकत 'संगीत' होती है। पूरी प्रस्तुति के दौरान आंचलिक वाद्य यंत्र बजते रहते हैं। कथात्मक एवं वर्णनात्मक शैली लोकनाटकों की सामान्य विशेषता है। लोकनाटकों के दर्शक बौद्धिकता की अपेक्षा केवल और केवल विशुद्ध मनोरंजन पर बल देते हैं।

### प्रमुख भारतीय लोक नाट्य के विविध रूप :

भारत में लोक-नाटकों की जो प्रमुख शैलियाँ प्रचलित हैं, उनमें 24 प्रकार के लोक-नाट्य शैलियों की चर्चा प्रमुख रूप से की जाती है। इन 24 शैलियों में प्रमुख हैं- रामलीला, रासलीला, जात्रा, अंकिया नाट, कीर्तनियां, बिदेसिया, भवाई, माच, ख्याल, रम्मत, तमाशा, नौटंकी, स्वांग, भाण्डजशन, करियाला, कुडियाअट्टम, चविट्ट, भागवतमेल, यक्षगान तथा कुचिपुड़ी आदि हैं। जिनमें से कुछ लोकनाट्य रूपों का परिचय इस प्रकार है-

#### रामलीला :

यह समूचे उत्तर भारत में खेला जाने वाला मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के चरित्र पर आधारित नाटक है। अधिकांशतः यह दशहरे या विजयदशमी के अवसर पर खेला जाता है। किंतु त्यौहार पर बढ जाने वाली भीड़ और अपनी सुविधानुसार लोग इसे अलग-अलग समय पर अलग-अलग कालखंडों में खेलते हैं। उत्तर भारत का उत्तर प्रदेश इस परंपराशील नाट्य का अहम केंद्र माना जाता है। इसके अलावा आस-पास के क्षेत्रों में भी रामलीला को लेकर काफी उत्साह दिखायी देता है। उत्तर प्रदेश में लखनऊ, रायबरेली, सीतापुर, सुल्तानपुर, कानपुर, वाराणसी, अयोध्या (पूर्व फैजाबाद), चित्रकूट, प्रयागराज (पूर्व इलाहाबाद) आदि शहरों में वर्तमान में करीब पाँच सौ से अधिक रामलीला कमेटियाँ सक्रिय हैं। इसके अलावा उत्तर प्रदेश के आसपास दिल्ली, पंजाब, हिमाचल, हरियाणा, उत्तराखंड में भी रामलीला की

<sup>4</sup> प्रसाद, जयशंकर, काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ. 101



कंपनियाँ सक्रिय रूप से रामलीला का मंचन कर रही हैं। रामलीला तुलसीदास के रामचरितमानस के कुछ-कुछ कथा-प्रसंगों पर आधारित है। इसे मंचित करने का पूरा दारोमदार सूत्रधार पर होता है। सूत्रधार ही कथा प्रसंग को आगे बढ़ाता है। कथा संवाद की गति सूत्रधार के निर्देशों पर ही निर्भर होती है। राम-जन्म, गुरु वशिष्ठ के आश्रम गमन, राम विवाह, वन-गमन, दशरथ-मरण, भरत-मिलाप, सीता-हरण, सुग्रीव-मित्रता, बालि-वध, लंका-चढ़ाई, अक्षय कुमार-वध, मेघनाद-वध, कुंभकरण-वध, रावण-वध, विभीषण का राज्याभिषेक, अयोध्या-आगमन, सीता-परित्याग आदि प्रसंग इसके प्रमुख आकर्षण हैं, जो दर्शकों में रोमांच एवं उत्साह भर देता है। लोकनाट्य का यह रूप हिंदू आस्था का गहरा परिचायक है।

### रासलीला :

इसे कृष्णलीला भी कहते हैं। इसका आरंभ सोलहवीं शती में वल्लभाचार्य तथा हितहरिवंश आदि महात्माओं ने लोक प्रचलित जिस श्रृंगार प्रधान रास में धर्म के साथ नृत्य, संगीत की पुनः स्थापना की और उसका नेतृत्व रसिक शिरोमणि श्रीकृष्ण को दिया था, वही राधा तथा गोपियों के साथ कृष्ण की श्रृंगार पूर्ण क्रीड़ाओं से युक्त होकर 'रासलीला' के नाम से अभिहित हुआ। आमतौर पर यह स्वतंत्र रूप से खेला जाता है। किंतु, कभी-कभी इसे रामलीला की समाप्ति पर अगले दिन कथा विस्तार करते हुए श्रीकृष्ण के बाल रूप का मंचन करते हुए भी खेला जाता है। वस्तुतः इसमें श्रीकृष्ण की बाल और युवा रूप का मंचन होता है। श्री कृष्ण-जन्म, बाललीला, गोवर्धन-लीला, रासलीला, अक्रूर की यात्रा, मथुरा-आगमन, कंस-वध, कृष्ण-जरासंध युद्ध, द्वारका-निर्माण, शिशुपाल-वध, द्वारका जीवन, कृष्ण-नारद संवाद, यदुवंश का नाश, अंतिम समय आदि प्रसंग हैं। अधिकांशतः यह श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के आस-पास खेला जाता है। आज श्री कृष्ण भारत के ही नहीं बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लोगों के पूज्य हैं। यह लोकनाट्य भी हिंदू की गहरी आस्था का प्रतीक है। रासलीला का यह आनंद केवल मथुरा-वृंदावन तक सीमित नहीं रहता अपितु समूचे देश में वैश्विक स्तर पर जगह-जगह इसका मंचन होता है। उत्तर प्रदेश में एटा, मथुरा, आगरा, अलीगढ़, इटावा, कानपुर, वाराणसी, अयोध्या (पूर्व फैजाबाद), चित्रकूट, प्रयागराज (पूर्व इलाहाबाद) आदि शहरों की रासलीला कमेटियाँ सक्रिय हैं। इसके अलावा उत्तर प्रदेश के आसपास दिल्ली, पंजाब, हिमाचल, हरियाणा, उत्तराखंड में भी रासलीला की कंपनियाँ सक्रिय रूप से रासलीला का मंचन कर रही हैं।

### नौटंकी :

अधिकांश लोगों का यह मानना है कि नौटंकी स्वांग का ही विकसित रूप है। नौटंकी की कथाएँ अधिकांश किसी व्यक्ति पर अथवा किसी महत्वपूर्ण विषय पर आधारित होती हैं। भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भी काफी नौटंकी का प्रदर्शन होने का उल्लेख मिलता है। "वस्तुतः नौटंकी एक नाटक-विशेष का नाम है, जिसकी शैली संगीत की है। इसकी लोकप्रियता के कारण सांगीत शैली का दूसरा नाम 'नौटंकी' प्रचलित हो गया।"<sup>55</sup> नौटंकी में अक्सर चौबोलों का प्रयोग होता है। यह काव्य परंपरा में प्रयोग होने वाली चार पंक्तियों की एक छंद शैली जिसके प्रत्येक चरण में 8 और 7 के विश्राम से 15 मात्राएँ होती हैं। अंत में लघु गुरु होता है। जैसे- "रघुबर तुम सों विनती करौं। कीजै सोई जाते तरौ।" जबकि भिखारीदास ने इसके दुगने का चौबोला मानकर 16 और 14 मात्राओं पर यति मानी है। गाने में सारंगी, ढोलक, तबले, हारमोनियम और नगाड़े जैसे वाद्य इस्तेमाल होते हैं। नौटंकी में अक्सर हिंदी-उर्दू के पारंपरिक शब्दों का प्रयोग होता है। भारत रंग महोत्सव 2016 में मैंने अमर सिंह राठौर के नौटंकी की बहुत जबरदस्त प्रस्तुति देखी थी। एक अन्य दूसरी

<sup>55</sup> माथुर, जगदीशचंद्र, (2010). परंपराशील नाट्य. नयी दिल्ली : रा.ना.वि. प्रकाशन, पृ 130

प्रस्तुति मैंने पंडित रामदयाल शर्मा की देखी थी। अपनी नौटकी कला से दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर नयी पहचान बनाने वाले लोक कलाकार रामदयाल शर्मा के उत्कृष्ट कार्यों को देखते हुए भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मश्री' से सम्मानित किया है।

### जात्रा :

जात्रा भारत के पूर्वी क्षेत्र बंगाल का लोक कलामंच का एक लोकप्रिय रूप है। यह कई व्यक्तियों द्वारा किया जाने वाला एक नाट्य अभिनय है, जिसमें संगीत, अभिनय, गायन और नाटकीय वाद विवाद होता है। पहले जात्रा के सशक्त माध्यम से जनसमूह को धार्मिक मान्यताओं की जानकारी दी जाती थी।<sup>6</sup> जात्रा के नाटक केवल धार्मिक, ऐतिहासिक या काल्पनिक विषयों पर सीमित नहीं हैं। उनमें आधुनिक रुचि के लिए उपयुक्त सामाजिक विषयवस्तु भी जोड़े गये हैं। जात्रा एक सादे मंच पर की जाती है, जिसके चारों ओर दर्शक होते हैं। सामूहिक गीत गायक और संगीतकार मंच पर अपने स्थान पर बैठ जाते हैं। इस पर मंच संबंधी कोई आडम्बर नहीं होता, यहाँ केवल बैठने का एक स्थान होता है, जो विभिन्न कार्यक्रमों में एक सिंहासन, एक बिस्तर या किनारे रखी बेंच के तौर पर कार्य करता है। मंच पर अभिनेता अत्यंत सैद्धांतिक रूप में गीतशील होते हैं। वे अपनी ऊँची आवाज़ में भाषण देते हैं और उन्हें इतनी तेज़ी से बोलना होता है कि चारों ओर बैठे दर्शक उनकी आवाज़ सुन सकें। परिणाम स्वरूप वे एक अत्यंत उत्तेजित शैली में बोलते हैं और उनके हाव-भाव भी उसके अनुसार होते हैं। उनकी वेशभूषा चमकदार और उनकी तलवारों चकाचौंध पैदा करती हैं और जल्दी ही उनके शब्दों के साथ संघर्ष शुरू हो जाता है। ये अभिनेता भावनात्मक मनः स्थिति को भी दर्शाते हैं जैसे- प्रेम, दुख, करुणा, किंतु इन सभी में उत्तेजना का तत्त्व हमेशा मौजूद होता है। क्योंकि उन्हें अपने आप को जीवन से बड़े आकार में प्रस्तुत करना होता है।

### अंकीया नट :

सामान्यतया अंकीया नट के नाम से जाने जानी वाली, असम की वैष्णव नाट्यकला, शंकरदेव द्वारा, जाति, संप्रदाय और सामाजिक ओहदे की परवाह किए बिना लोगों में भक्ति के सिद्धांत के प्रचार के माध्यम के रूप में प्रारंभ की गयी थी। यह परंपरा धार्मिक उपदेशों और विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक प्रथाओं के सामंजस्यपूर्ण संयोजन के परिणामस्वरूप उभर कर आयी थी। इसमें धार्मिक दर्शनों का देशज लोक मनोरंजन और प्रदर्शन तकनीकों का मेल है और साथ ही इसमें शास्त्रीय संस्कृत की नाटकीय परंपरा के कई तत्त्वों को भी समाहित किया गया है। अंकीया नट का आज भी लगभग अपना प्रारंभिक रूप अस्तित्व में बना हुआ है। शंकरदेव ने पत्निपसाद, परिजथारण, केलिगोपाल, रुक्मिणीहरण और रामबिजोय नामक लोकप्रिय नाटकों की रचना की थी। इस परंपरा को उनकी मृत्यु के बाद उनके अनुयायियों ने जारी रखा और इस प्रकार नाट्यकला की एक सशक्त और जिवंत परंपरा उभर कर आयी। भारत की कई अन्य नाट्यकला परम्पराओं के समान, अंकीया नट का दृश्य आकर्षण उसकी रंगीन पोशाकों, मुखौटों, पुतलों और मंच-सामग्री में निहित है।

### स्वांग :

इसे 'सांग' भी कहते हैं। यह हरियाणा राज्य का लोकनाट्य है। एक ऐसा लोकनाट्य जिसमें किसी रूप को स्वयं में आरोपित कर उसे प्रस्तुत किया जाता है। स्वांग में किसी प्रसिद्ध रूप की नकल रहती है। स्वांग का अर्थ किसी विशेष,

<sup>6</sup> <https://bharatdiscovery.org>

ऐतिहासिक या पौराणिक चरित्र, लोकसमाज में प्रसिद्ध चरित्र या देवी, देवता की नकल में स्वयं का शृंगार करना, उसी के अनुसार वेशभूषा धारण करना एवं उसी के चरित्र विशेष के अनुरूप अभिनय करना है। स्वांग व्यक्तित्व विशेष की नकल पर आधारित होते हुए भी जीवंत होते हैं। कभी-कभी इनमें असली चरित्र होने का भ्रम भी उत्पन्न हो जाता है। यह हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भी खेला जाता है।

### ख्याल :

इसका शाब्दिक अर्थ है - खेल। यह राजस्थान का लोकनाट्य है। धार्मिक/ऐतिहासिक अथवा पौराणिक आख्यान पर कथा को पद्य रूप में अलग-अलग पात्रों द्वारा गा-कर प्रस्तुत किया है। इसमें संगीत प्रधान होता है। इसमें अभिनय करने वाले को खिलाड़ी कहते हैं। दल के मुखिया को उस्ताद कहा जाता है। ख्याल की प्रतियोगिता को दंगल कहते हैं। हारमोनियम तथा नगाड़ा इसके प्रमुख वाद्य-यंत्र हैं। प्रमुख रूप से जयपुरी (जयपुर), शेखावटी/चिड़ावा (चिड़ावा), कूचामनी (कूचामनी सिटी), अली बक्शी (मुंडावा, अलवर), हेला (सवाई माधोपुर, दौसा), कन्हैया (करौली, सवाई माधोपुर, भरतपुर एवं धौलपुर), किशनगढ़ी (अजमेर), ढप्पाली (अलवर) आदि प्रसिद्ध ख्याल हैं।

### तमाशा :

तमाशा नाटक का ही एक रूप है। इसकी शुरुआत महाराष्ट्र में 16वीं सदी में हुई थी। यह लोक कला यहाँ की अन्य कलाओं से थोड़ी अलग है। 'तमाशा' शब्द का अर्थ है- "मनोरंजन"। तमाशा भारत के लोक नाटक का श्रृंगारिक रूप है। अन्य सभी भारतीय लोक नाटकों में प्रमुख भूमिका में प्रायः पुरुष होते हैं, लेकिन तमाशा में मुख्य भूमिका महिलाएँ निभाती हैं। 20वीं सदी में तमाशा व्यावसायिक रूप से बहुत सफल हुआ। तमाशा महाराष्ट्र में प्रचलित नृत्यों, लोक कलाओं इत्यादि को नया आयाम देता है। यह अपने आप में एक विशिष्ट कला है। तमाशा मुख्य रूप से महाराष्ट्र के 'कोल्हाटी' समुदाय द्वारा किया जाता है। नृत्य श्रृंखलाओं के अलावा तमाशा में नटुकनी, सौंगद्या और अन्य चरित्रों द्वारा अनेक प्रकार के शब्दिक कटाक्षों और कूट प्रश्नों द्वारा वाद-प्रतिवाद भी किया जाता है। नटुकनी का चरित्र महिलाएँ निभाती हैं। इस लोक कला में यमन, भैरवी और पिलु हिंदुस्तानी राग मुख्य रूप से प्रयोग किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य लोक गीतों का भी प्रयोग किया जाता है। इसके अंत में सदैव बुराई पर अच्छाई और असत्य पर सत्य की विजय का संदेश दिया जाता है।

### जट-जटिन :

यह बिहार का लोकनाट्य है। इसका आरंभ मिथिलांचल के समस्तीपुर जिले की पटोरी नामक गाँव से माना जाता है। इस संबंध में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। जट-जटिन का संबंध गाँवों में वर्षा ऋतु से जोड़कर देखा जाता है। जब पानी के बिना धरती तप रही होती है और खेतों में लगे फसल पर बारिश के बिना सूखने के कगार पर आ पहुँचता है। तब इंद्रदेव को रिझाने के लिए ग्रामीण औरतें जट-जटिन नृत्य खेलती हैं, गीत गाती हैं। ऐसा माना जाता है कि इसके बाद इंद्रदेव प्रसन्न होकर बारिश कराते हैं और खेत-खलिहान पानी से लबालब हो जाता है।<sup>7</sup> इस प्रस्तुति के केंद्र में महिलाएँ होती हैं। सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि दोनों तरफ से महिलाएँ या कुंवारी लड़कियों की टोली प्रस्तुत करती है और

<sup>7</sup> <https://sablog.in/jat-jatin-dance-natural-love-and-a-distinctive-tradition-of-folk-natya-style/14164/>

अपने मधुर संवादों से लोक गीत गाती हुई मनमोह लेती है। इसके अलावा 'सामा-चकेवा', 'भकुली बंका', 'डोककक्ष' और 'किरतनिया' बिहार के प्रमुख लोकनाट्य हैं।

### बिदेसिया :

यह बिहार का लोकनाट्य है। "पश्चिमी बिहार का 'बिदेसिया' भोजपुरी-क्षेत्र की विलक्षण अभिव्यंजना है। इसके प्रणेता एक प्रतिभाशाली ग्रामीण श्री भिखारी ठाकुर अर्द्धशिक्षित होते हुए भी भोजपुर क्षेत्र की लयताल-झंकृत भूमि में अनुप्राणित हुए। लोक प्रचलित गीतों को उन्होंने एक ऐसे कथानक में गूँथा, जिसमें पश्चिमी बिहार के ग्रामीण जीवन के यथार्थ और 'मेघदूत' से आधुनिक युग तक प्रवाहित विरहिणी नायिका और प्रेमियों के संदेशवाहक दूतों की परंपरा का अद्भुत मिश्रण है। ठेठ देहातीपन और कहीं-कहीं अश्लीलता के साथ उत्कृष्ट मार्मिकता का संयोग है। कथा में विरहिणी नायिका के पास एक बटोही के आने और उसके द्वारा अपने पति के पास संदेश भेजने का प्रसंग है। उसका पति नगर में एक वेश्या के फेर में पड़ा है। 'बिदेसिया' शब्द पति के लिए प्रयुक्त हुआ है।"<sup>8</sup>

### छऊ :

पूर्वी भारत की एक प्रमुख नृत्य परंपरा, जो पश्चिम बंगाल, उड़ीसा और झारखंड के आदिवासी क्षेत्रों में प्रचलित है। '...'छिपकर शिकार खेलना' या 'आक्रमण करना' ही छऊ शब्द का सबसे अधिक उपयुक्त अर्थ है, यद्यपि 'छच्च' का अर्थ भी इसमें निहित है क्योंकि कम से कम दो छऊ रूपों में मुखौटे का उपयोग किया जाता है।"<sup>9</sup>। छऊ के तीन रूप हैं- 1. झारखंड का सैरेकेल्ला छऊ 2. उड़ीसा का मयूरभंज छऊ और 3. पश्चिम बंगाल का पुरुलिया छऊ मुखौटे सैरेकेल्ला और पुरुलिया का अभिन्न अंग है। इसका आयोजन वसंत पर्व में होता है। यह लोगों की एक ऐसी कला है जो समूचे समुदाय को सम्मिलित करती है। परिवार के पुरुष नर्तकों, गुरु या प्रशिक्षित कलाकारों द्वारा इसका प्रदर्शन किया जाता है। इसकी उत्पत्ति नृत्य की देशज शैलियों और युद्ध प्रथाओं से हुई थी। खेल (दिखावटी संग्राम तकनीकियाँ), चालिस और टोपकस (पक्षियों और जानवरों की शैली के अनुरूप चाल) और उप्लिस (एक गाँव की गृहिणी के दैनिक कार्यों पर आधारित भंगिमाएँ) छऊ नृत्य की मौलिक शब्दावली गठित करते हैं। नृत्य, संगीत और मुखौटा बनाने का ज्ञान मौखिक रूप से प्रसारित किया जाता है।

### थेरुकुथु :

यह तमिलनाडु का लोकनाट्य रूप है, जिसे एक तरह का नुक्कड़ नाटक कह सकते हैं, कथाकारी की एक प्राचीन शैली है, जिसे कई पीढ़ियों से अदा किया जा रहा है। कलाकारों को भारी वस्त्रों और गहनों से सजाया जाता है, जिसके पश्चात वे संवाद, गाना और नृत्य प्रस्तुत करते हैं। थेरुकुथु की उत्पत्ति और पुरावशेष ज्ञात नहीं हैं। थेरुकुथु दो शब्दों के मेल से बना है- थेरु मतलब सड़क, और कुथु मतलब नाटक या कला प्रदर्शन। थेरुकुथु अकेला ऐसा नाटक है जिसमें अभिनेता को गाना, नृत्य, कथन और रीति सभी का प्रदर्शन करना पड़ता है। थेरुकुथु तमिल नाडु के उत्तरी जिलों में ज्यादा लोकप्रिय है, जहाँ इसे मंदिरों में उत्सवों के दौरान गाँवों में आयोजित किया जाता है। थेरुकुथु प्रमुख रूप से महाभारत, रामायण, पेरिया-पुराणम, और संगम काल की अन्य तमिल साहित्यिक रचनाओं की विषय-वस्तुओं पर प्रस्तुत किया जाता है। ये कलाएँ अपने गीतों, विस्तृत विवेचना और हास्य के माध्यम से दर्शकों के सामने स्थानीय इतिहास और संस्कृति प्रस्तुत

<sup>8</sup> माथुर, जगदीशचंद्र.(2010). परंपराशील नाट्य. नयी दिल्ली: रा.ना.वि. प्रकाशन, पृ 143

<sup>9</sup> वात्स्यायन, कपिला.(1955). पारंपरिक भारतीय रंगमंच: अनंत धाराएँ पृ.56-57

करती हैं। ये विशेष प्रदर्शन ऐसे खुले क्षेत्र में आयोजित किया जाता है जहाँ अक्सर दो से अधिक रास्तों का मिलन होता है। थेरुकुथु प्रदर्शन में कलाकार कहानी सुनकर, संवाद प्रस्तुत करके, गाना गाकर और नृत्य करके दर्शकों का ध्यान आकर्षित करते हैं। संवादों से ज्यादा महत्त्व संगीत और गीतों को दिया जाता है। पारंपरिक रूप से केवल पुरुष कलाकार ही प्रदर्शन में भाग लिया करते थे, और परिणामस्वरूप वे महिला पात्रों की भूमिका भी निभाया करते थे। आजकल इन प्रदर्शनों में महिलाएँ भी भाग लेती हैं। एक थेरुकुथु प्रदर्शन की वेश-भूषा में एक लंबा वस्त्र, चमचमाती स्कंध पट्ट, घेरेदार रंगीन घागरा और शृंगार शामिल हैं। प्रदर्शन के दौरान कलाकार कट्टियाकरन (मंच प्रबंधक या सूत्रधार) के साथ संवाद में अपना परिचय देते हैं। जब कोई पात्र कहानी में प्रवेश करता है, तब वह उससे उसकी पहचान और उसके पात्र के विषय में सवाल करता है। कोमाली (विदूषक) एक और ऐसा कलाकार है जो प्रदर्शन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह अपने मसखरेपन से दर्शकों का मनोरंजन करता है। वादक समूह एक ओर एक तख्त पर बैठता है, जिसमें मुखवीना, हारमोनियम, मिरुधंगम और कंजीरा जैसे वाद्ययंत्रों के साथ एक प्रमुख गायक और अन्य कलाकार होते हैं।<sup>1</sup>

### पांडवानी :

छत्तीसगढ़ का वह एकल नाट्य है, जिसके बारे में दूसरे देश के लोग भी जानकारी रखते हैं। तीजन बाई ने पांडवानी को आज के संदर्भ में ख्याति दिलायी, न सिर्फ हमारे देश में, बल्कि विदेशों में। पांडवानी का अर्थ है पांडववाणी - अर्थात् पांडवकथा, महाभारत की कथा। ये कथा "परधान" तथा "देवार" जातियों की गायन परंपरा है। परधान है गोडों की एक उपजाति और देवार है घुमंतू जाति। इन दोनों जातियों की बोली, वाद्यों में अन्तर है। परधान जाति के कथा वाचक या वाचिका के हाथ में होता है "किंकनी" और देवारों के हाथों में "रूझू"। परधानों ने और देवारों ने पांडवानी लोक महाकाव्य को पूरे छत्तीसगढ़ में फैलाया। परधान पांडवानी महाभारत पर आधारित होने के साथ-साथ गोंड मिथकों का सम्मिश्रण है।

अगर महाभारत का नायक अर्जुन है तो पांडवानी का नायक है भीमा भीम ही है जो पांडवों की सभी विपत्तियों से रक्षा करता है। पांडवानी की दो शैलियाँ हैं - एक है कापालिक शैली जो गायक गायिका के स्मृति में या "कपाल"में विद्यमान है। दूसरी है वेदमती शैली जिसका आधार है शास्त्र, कापालिक शैली है वाचक परम्परा पर आधारित और वेदमती शैली का आधार है खड़ी भाषा में सबलसिंह चौहान के महाभारत, जो पद्यरूप में हैं।

### कूचिपुड़ी :

यह आंध्र प्रदेश की एक स्वदेशी नृत्य शैली है, जिसने इसी नाम के गाँव में जन्म लिया और पनपी, इसका मूल नाम कुचेलापुरी या कुचेलापुरम था, जो कृष्णा जिले का एक कस्बा है। अपने मूल से ही यह तीसरी शताब्दी बीसी में अपने धुंधले अवशेष छोड़ आयी है, यह इस क्षेत्र की एक निरंतर और जीवित नृत्य परंपरा है। कुचीपुड़ी कला का जन्म अधिकांश भारतीय शास्त्रीय नृत्यों के समान धर्मों के साथ जुड़ा हुआ है। एक लंबे समय से यह कला केवल मंदिरों में और वह भी आंध्र प्रदेश के कुछ मंदिरों में वार्षिक उत्सव के अवसर पर प्रदर्शित की जाती थी। कुचीपुड़ी कला एक ऐसे नृत्य नाटिका के रूप में आशयित की गयी थी, जिसके लिए चरित्र का एक सैट आवश्यक था, जो केवल एक नर्तक द्वारा किया जाने वाला नृत्य नहीं था जो आज के समय में प्रचलित है। इस नृत्य नाटिका को कभी कभी अट्टा भागवतम कहते हैं। इसके नाटक तेलुगु भाषा में लिखे जाते हैं और पारंपरिक रूप से सभी भूमिकाएँ केवल पुरुषों द्वारा निभायी जाती है। इस कला की साज सज्जा और वेशभूषा इसकी विशेषता हैं। इसकी वेशभूषा और साज-सज्जा में बहुत अधिक कुछ नहीं होता है। इसकी एक महत्त्वपूर्ण विशेषता इसके अलग अलग प्रकार की सज्जा में है और इसके महिला चरित्र कई आभूषण

पहनते हैं जैसे कि रकुडी, चंद्र वानिकी, अडाभासा और कसिनासारा तथा फूलों और आभूषणों से सज्जित लंबी वेणी। कुचीपुडी का संगीत शास्त्रीय कर्नाटक संगीत होता है। मृदंग, वायलिन और एक क्लेरीनेट इसमें बजाए जाने वाले सामान्य संगीत वाद्य हैं।

### यक्षगान :

कर्नाटक राज्य का लोक नृत्य है। यक्षगान कर्नाटक का पारंपरिक नृत्य नाट्य रूप है जो एक प्रशंसनीय शास्त्रीय पृष्ठभूमि के साथ किया जाने वाला एक अनोखा नृत्य रूप है। लगभग 5 शताब्दियों की सशक्त नींव के साथ यक्षगान लोक कला के एक रूप के तौर पर मजबूत स्थिति रखता है, जो केरल के कथकली के समान है। जन समूह के लिए एक नाट्य मंच होने के नाते यक्षगान संस्कृत नाटकों के कलात्मक तत्त्वों के मिले जुले परिवेश में मंदिरों और गाँवों के चौराहों पर बजाये जाने वाले पारंपरिक संगीत तथा रामायण और महाभारत जैसे महान् ग्रंथों से ली गयी युद्ध संबंधी विषय वस्तुओं के साथ प्रदर्शित किया जाता है, जिसे आम तौर पर रात के समय धान के खेत में निभाया जाता है। एक प्रारूपिक यक्षगान प्रदर्शन भगवान गणेश की वंदना से शुरू होता है, जिसके बाद एक हास्य अभिनय किया जाता है तथा इसमें पृष्ठभूमि संगीत चेंड और मेडल के साथ तीन व्यक्तियों के दल द्वारा ताल (घंटियाँ) बजायी जाती हैं। कथावाचक, जो भागवत नामक दल का एक हिस्सा भी है और वह इस पूरे प्रदर्शन का निर्माता, निर्देशक और कार्यक्रम का प्रमुख होता है। उसके प्रारंभिक कार्य में गीतों के माध्यम से कथा का वाचन, चरित्रों का परिचय और कभी कभार उनके साथ वार्तालाप शामिल है। एक सशक्त संगीत ज्ञान और मजबूत क्रद काठी एक कलाकार की पहली आवश्यकताएँ हैं और इसके साथ उसे हिंदू धर्म का गहरा ज्ञान होना आवश्यक है। इन नाटकों को सहज रूप से कलाकारों द्वारा निभायी गयी अनेक पौराणिक चरित्रों की भूमिकाओं में विशाल जनसमूह द्वारा देखा जाता है। यक्षगान की एक अन्य अनोखी विशेषता यह है कि इसमें पहले से कोई अभ्यास या आपसी संवाद का लिखित रूप उपयोग नहीं किया जाता है, जिससे यह अत्यंत विशेष रूप माना जाता है।

## दशावतार :

आठ सौ वर्षों के इतिहास सहित एक लोकप्रिय नाट्य शैली है। दशावतार शब्द का संबंध हिंदुओं के संरक्षण देवता, भगवान विष्णु, के दस अवातारों से है। ये दस अवतार हैं: मत्स्य (मछली), कुर्म (कछुवा), वराह (जंगली सूअर), नरसिंह (मनुष्य-सिंह), वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि। यह आधी रात के बाद ग्राम देवता के मंदिर परिसर में वार्षिक उत्सव के दौरान, किसी भी तकनीकी रंगमंच की सामग्री के बिना, प्रदर्शित किया जाता है। प्रत्येक किरदार दो व्यक्तियों द्वारा पकड़े हुए पर्दे के पीछे से मंच पर आता है। दशावतार प्रदर्शन में दो सत्र शामिल हैं: पूर्व-रंग (प्रारंभिक सत्र) और उत्तर-रंग (बाद वाला सत्र)। पूर्व-रंग प्रारंभिक प्रस्तुति है जो मुख्य प्रदर्शन के पहले की जाती है। पूर्व-रंग असुर शंखासुर के वध की कहानी है। इस प्रदर्शन में भगवान गणेश, ऋद्धि, सिद्धि, एक ब्राह्मण, शारदा (विद्या की देवी), ब्रह्मदेव और भगवान विष्णु के किरदार भी शामिल हैं। हिंदू-पौराणिक कथाओं पर आधारित, आख्यान के रूप में जाना जाने वाला उत्तर-रंग मुख्य प्रदर्शन माना जाता है जो भगवान विष्णु के दस अवतारों में से एक को चिह्नित करता है। कलाकार सुंदर शृंगार और वेशभूषा का उपयोग करते हैं। इसमें तीन संगीत वाद्ययंत्र संलग्न होते हैं: एक पैडल हारमोनियम, तबला और झांझ। दशावतार महाराष्ट्र के दक्षिण कोंकण क्षेत्र के सिंधुदुर्ग जिले के प्रमुख इलाकों जैसे सावंतवाड़ी, कुडाल, मालवन, वेंगुरला, कंकावली आदि में लोकप्रिय है। देवगढ़ और डोडामार्ग के गाँवों में दशावतार के वार्षिक प्रदर्शन भी होते हैं। वेंगुरला तालुका के अधिकांश गाँव जैसे कि वेलावल, चेंदवन, पाट, पारुले, महपन में दशावतार की समृद्ध परंपरा है। दशावतार गोवा राज्य में उत्तरी गोवा जिले में भी लोकप्रिय है। यह मुख्य रूप से पेरनेम, बर्देज़, बिचोलिम और सत्तारी जैसे तालुकों में प्रदर्शित किया जाता है। यह महाराष्ट्र के दक्षिण कोंकण क्षेत्र के सिंधुदुर्ग जिले और गोवा के उत्तरी गोवा जिले में कृषकों या किसानों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। दशावतार ग्रामीण क्षेत्रों में नाटक का एक लोकप्रिय रूप है। यह आरंभ में सिंधुदुर्ग जिले में कावठे क्षेत्र के गोरे नामक एक ब्राह्मण द्वारा कोंकण क्षेत्र में लोकप्रिय हुआ था। आज, यह उच्च वर्गीयों की कला के रूप में देखा जाने लगा है।

इसके अलावा बस्तर बैड (छत्तीसगढ़), करियाला (हिमाचल प्रदेश), ओट्टन थुलाल (केरल), भाम कलापम (आंध्र प्रदेश), गुल्लू कुनिथा (कर्नाटक) आदि भारत के प्रचलित लोकनाट्य अथवा परंपराशील नाट्य रूप हैं। भारत के समस्त परंपराशील नाट्य रूपों पर एकसाथ विचार करना किसी ग्रंथ तैयार करने जैसे उद्यम से कम नहीं है। इसलिए ऊपर इनकी परिचयात्मक चर्चा और नामोल्लेख मात्र किया गया है।

निष्कर्ष के रूप में कहा सकते हैं कि यह पारंपरिक भारतीय रंगमंच भारतीय कला का ही एक रूप है। कला का यह रूप जिसमें समूचे भारत की विविध भाषाएँ और संस्कृति हैं; ये सब एकसाथ मिलकर समूचे भारतवर्ष को मूर्त रूप प्रदान करते हैं। जो भारत की सांस्कृतिक विरासत को सहेजे हुए हैं और वैविध्यता में एकता का बोध कराते हैं। इसका बोध हमें अपने धर्म में, अपनी परंपरा में, अपनी भाषा में, अपने व्यवहार में सदैव दिखायी देता है। सांस्कृतिक संतुलन लोक-जीवन की एकता का संवर्धन करता है। अपनी भारत की परंपराशील नाट्य आज आधुनिक संदर्भों में इसलिए प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हैं क्योंकि परंपराशील नाट्य भारत के विभिन्न क्षेत्रों को एक सूत्र में बांधने का कार्य करते हैं और इनके आंचलिक होते हुए भी हमें इसके सूत्र में राष्ट्रीय एकता का बोध होता है।



---

<sup>i</sup> <https://indianculture.gov.in/hi/snippets/taeraukauthau>

**वेबसाइट्स :**

1. <http://ignca.nic.in/coilnet/chgr0031.htm>
2. <https://bharatdiscovery.org>
3. <https://sablog.in>
4. <https://indianculture.gov.in>

---

डॉ. नवनीत कुमार

पूर्व शोधार्थी

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

ईमेल- [navneetkumar727@gmail.com](mailto:navneetkumar727@gmail.com)

मोबाइल : 9013201191

पत्रिकाएँ (त्रैमासिक) / Journals (Quarterly)

- 1- विज्ञान गरिमा सिंधु / Vigyan Garima Sindhu – Sciences, Applied Sciences and Technology
- 2- ज्ञान गरिमा सिंधु / gyan Garima Sindhu – Humanities and Social Sciences

सदस्यता शुल्क (उपर्युक्त दोनों के लिए) / Persons / Institutions:

प्रति अंक व्यक्तियों/ संस्थानों के लिए <b>Per Issue- For Individual / Institutions</b>	₹. 14.00 Rs. 14.00	पौंड 1.64 £ 1.64	डालर 4.84 \$ 04.48
वार्षिक चंदा <b>Annual Subscription</b>	₹. 50.00 Rs. 50.00	पौंड 5.83 £ 5.83	डालर 18.00 \$ 18.00
प्रति अंक विद्यार्थियों के लिए <b>Per Issue – For Students</b>	₹. 8.00 Rs. 08.00	पौंड 0.93 £ 0.93	डालर 10.80 \$ 10.80
वार्षिक चंदा <b>Annual Subscription</b>	₹. 30.00 Rs. 30.00	पौंड 3.50 £ 3.50	डालर 2.88 \$ 2.88

बिक्री संबंधी नियम / Rules Regarding Sales

- 1- आयोग के प्रकाशन, आयोग के बिक्री पटल तथा भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के विभिन्न बिक्री पटलों पर उपलब्ध होंगे।

The Publications of the Commission are available at the sale counter of the Commission and at the sale counters of Department of Publication, Government of India.

- 2- सभी प्रकाशनों की खरीद पर 25% की छूट दी जाती है। कुछ पुराने प्रकाशनों पर 75% तक भी छूट जाती है।

A rebate of 25% available on the purchase of all the publications of the Commission. Rebate upto 75% is given on a few old publications.

- 3- सभी तरह के आदेशों की प्राप्ति पर आयोग द्वारा इनवाइस जारी की जाती है। अपेक्षित धनराशि का बैंक ड्राफ्ट या मनीआर्डर अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली (Chairman, CSTT, New Delhi) के नाम देय होना चाहिए। चेक स्वीकार्य नहीं हैं। अपेक्षित धनराशि प्राप्त होने के पश्चात् ही पुस्तकें भेजी जाती हैं। लेकिन सरकारी संस्थानों, केन्द्रीय उपक्रमों और विश्वविद्यालयों को आदेश प्राप्त होने पर शीघ्र ही भेज दी जाएंगी, परन्तु इनका भुगतान एक माह के अंदर करना होगा।

An invoice is issued by the Commission on the receipt of all types of purchase orders, Bank draft or money order for the requisite amount should be drawn in favour of the Chairman, CSTT, New Delhi. Cheques are not acceptable. The books are sent only after the receipt of requisite amount but in case of Universities, Government institutions and

Government of India Undertaking, the books will be dispatched immediately after receiving the demand of books, for which the payment will have to make within a month.

- 4- चार किलोग्राम वजन तक सभी पुस्तकें सामान्य डाक / अपंजीकृत पार्सल से भेजी जाती हैं। पुस्तकें भेजने पर पैकिंग तथा फॉरवर्डिंग चार्ज नहीं लिया जाता है।

All books weighing upto 4Kg. are sent by ordinary dak/unregistered parcel. No packing and for warding charge is levied on sending these books.

- 5- चार किलोग्राम से अधिक की सभी पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जा सकती है तथा इन पर आने वाले सभी परिवहन- व्ययों का भुगतान मांगकर्ता द्वारा ही वहन किया जाएगा।

All books weighing more than 4 Kgs. are sent by road transport and the payment of transport charges on it are to be met by the indenter.

- 6- पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजने के बाद आयोग द्वारा मूल बिल्टी तत्काल पंजीकृत डाक से मांगकर्ता को भेज दी जाती है। यदि निर्धारित अवधि में पुस्तकों को ट्रांसपोर्ट कार्यालय से प्राप्त न किया गया तो उस स्थिति में लगने वाले सभी तरह के अतिरिक्त प्रभारों का भुगतान मांगकर्ता को ही करना होगा।

After sending the books by the road, transport, the original receipt (Bill T) is immediately sent by the Commission to the indenter by registered Post. However, if the books are not got released from the transport office within the stipulated period, all the extra-charges to be levied on it are to be met by the indenter.

- 7- रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाने वाली पुस्तकों पर न्यूनतम वजन का प्रभार अवश्य लगता है जो प्रत्येक दूरी के लिए अलग-अलग होता है। यदि संबंधित संस्था चाहे तो आयोग में सीधे ही भुगतान करके पुस्तकें ले जा सकते हैं।

Minimum weighing charge is levied for books sent by road transport that varies based on distance. The concerned institution may also directly Purchase books by making necessary payment to the Sales Unit of the Commission.

- 8- दिल्ली तथा उसके नजदीक के क्षेत्रों के आदेशों की पूर्ति डाक द्वारा संभव नहीं है। संबंधित संस्था को आयोग के बिक्री एकक में आवश्यक भुगतान करके पुस्तकें प्राप्त करनी होंगी।

It will not be possible to supply books by post against the orders received from Delhi and its nearby area. The concerned institution will have to get the books from the Sales Unit of the Commission by making necessary payment.

- 9- पुस्तकों की पैकिंग करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मांगकर्ता को सभी पुस्तकें अच्छी स्थिति में प्राप्त हों। पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल/रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती हैं। परिवहन में पुस्तकों को किसी भी तरह के नुकसान का दायित्व आयोग पर नहीं होगा।

All care is taken to ensure that the books are properly packed and sent to the indenter in a good condition. The books are sent by ordinary dak/un-registered parcel/road transport. The Commission will not be held responsible for any damage/loss in the transit.

- 10- सामान्यतः बिल कटने के बाद आदेश में बदलाव या पुस्तकें वापस नहीं होंगी। यदि क्रय राशि का समायोजन-आवश्यक होगा तो राशि वापस नहीं की जाएगी। इस स्थिति में पुस्तकें ही दी जाएंगी।

Generally, after issuance of the bill, neither change is allowed in the purchase order nor books are taken back. If need arises to adjust the amount, money will not be returned. However Only books will be supplied against the said amount.

#### ग्राहक फार्म

सेवा में :

अध्यक्ष,

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,

पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली-110066

महोदय,

कृपया मुझे "ज्ञान गरिमा सिंधु" (त्रैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष /पाँच वर्ष के लिए ..... से ग्राहक बना लीजिए। मैं पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क ..... रुपये, अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के पक्ष में, नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. .... दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएं।

नाम.....

पूरा .....

.....

भवदीय  
(हस्ताक्षर)

	सामान्य ग्राहकों / संस्थाओं के लिए	विद्यार्थियों के लिए
प्रति अंक	रु. 14-00	रु. 8-00
वार्षिक चंदा	रु. 50-00	रु. 30-00
पाँच व	रु. 250-00	रु. 150-00
दस वर्ष	रु. 500-00	रु. 300-00
बीस वर्ष	रु. 1000-00	रु. 600-00

डिमांड ड्राफ्ट "अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम पूरा पता भी लिखें। ड्राफ्ट 'एकाउंट पेई' होना चाहिए। यदि ग्राहक विद्यार्थी है तो कृपया निम्न प्रमाणपत्र- भी संलग्न करे :

कृपया डिमांड ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम और पता लिखें

#### विद्यार्थी-ग्राहक प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कुमारीश्रीमती/श्री/ ..... इस विद्यालय/  
महाविद्यालयविश्व/विद्यालय के ..... विभाग का छात्रकी/ छात्रा है।

(हस्ताक्षर)

(प्राचार्य/विभागाध्यक्ष)

(मोहर)

प्रकाशन विभाग के बिक्री केंद्र  
Sales Counters of Department of Publication

1	किताब महल प्रकाशन विभाग, बाबा खड़ग सिंह मार्ग, स्टेट एम्पोरियम बिल्डिंग, यूनिट नं. 21, नई दिल्ली-110001	<b>Kitab Mahal</b> Department of Publication, Baba Kharag Sigh Marg, State Emporia Building, Unit No.-21, New Delhi-110001
2	बिक्री पटल प्रकाशन विभाग, उद्योग भवन, गेट नं.-3, नई दिल्ली-110001	<b>Sale Counter</b> Department of Publication, Udyog Bhawan, Gate No.-3, New Delhi-110001
3	बिक्री पटल प्रकाशन विभाग, लॉयर्स चैंबर, दिल्ली उच्च न्यायालय, गेट नं.- 3, नई दिल्ली-110001	<b>Sale Counter</b> Department of Publication, Lawyers Chambers, Delhi Highcourt, New Delhi-110001
4	बिक्री पटल प्रकाशन विभाग, संघ लोक सेवा आयोग, धौलपुर हाउस, नई दिल्ली-110001	<b>Sale Counter</b> Department of Publication, Union Public Service Commissions, Dholpur House, New Delhi-110001
5	बिक्री पटल प्रकाशन विभाग, सी.जी.ओ. काम्पलेक्स, न्यू मेरीन लाइन्स, मुंबई-400020	<b>Sale Counter</b> Department of Publication, C.G.O. Complex, New Marine Lines, Mumbai-400020
6	पुस्तक डिपो प्रकाशन विभाग, के.एस.राय मार्ग, कोलकाता-700001	<b>Pustak Depot,</b> Department of Publication, K. S. Roy Marg, Kolkata-700001

आयोग का बिक्री केंद्र  
Sales Counter of CSTT

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग शिक्षा मंत्रालय पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066.	<b>Commission for Scientific and Technical Terminology</b> Ministry of Education West Block-VII, R. K. Puram, New Delhi-110066
---	---

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें :

For detailed information please contact:

**प्रभारी अधिकारी (विक्री)**

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग  
शिक्षा मंत्रालय  
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम,  
नई दिल्ली-110066  
फोन नं.-011-20867172/विस्तार-246

**The Officer-in-Charge (Sales)**

Commission for Scientific and  
Technical Terminology  
Ministry of Education  
West Block-VII, R. K. Puram,  
New Delhi-110066  
Ph. No.-011-20867172/ Extn.-246



© भारत सरकार

Government of India

ISSN : 2321-0443

75  
आज़ादी का  
अमृत महोत्सव



**वैज्ञानिक शब्दावली आयोग**

**शिक्षा मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)**

**पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, सेक्टर-1**

**नई दिल्ली-110066**

**दूरभाष: +91-11- 20867172**

**वेबसाइट : [www.cstt.education.gov.in](http://www.cstt.education.gov.in)**

**COMMISSION FOR SCIENTIFIC AND TECHNICAL TERMINOLOGY**

**MINISTRY OF EDUCATION**

**(DEPARTMENT OF HIGHER EDUCATION)**

**West Block-7, Ramakrishnapuram, Sector-1**

**New Delhi-110066**

**Telephone : +91-11- 20867172**

**Website : [www.cstt.education.gov.in](http://www.cstt.education.gov.in)**